कृषि चेतना

2019

अंक - 2

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
लुधियाना-141004

भामअनुसं
IIMR

वार्षिक पत्रिका

अंकः 2 वर्षः 2019

कृषि चेतना

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
लुधियाना 141004

संपादक मण्डलः
भारत भूषण
मनेश चन्द्र डागला
प्रदीप कुमार
बहादुर सिंह जाट

प्रकाशकः
निदेशक
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
पी.ए.यू. परिसर, लुधियाना-141004
दूरभाषः 0161-2440047
फैक्सः 0161-2430038
ई-मेलः pdmaize@gmail.com
वैबसाइटः iimr.icar.gov.in

नोटः इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, रचनायें तथा उनमें व्यक्त विचार एवं चित्र लेखकों के निज़ी हैं, संपादक अथवा प्रकाशक इसमें प्रकाशित किसी भी विचार अथवा चित्र के लिए उत्तदरायी नहीं हैं।

आवरण पृष्ठ पर दिए गए चित्रों का योगदान :
डॉ एस.बी. सिंह, डॉ चिकप्पा कर्जगी एवं डॉ प्रदीप कुमार

मुद्रकः
प्रिटिंग सर्विस कंपनी
मॉडल टाऊन, लुधियाना- 141001
दूरभाषः 0161-2410896, 09888021624
ई-मेलः decentpublish@gmail.com

निदेशक की कलम से ...

प्रिय पाठकगण,

कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है जो न केवल कृषि और संबद्ध क्षेत्रों के वृद्धि और विकास को सीधे संचालित करता है बल्कि ग्रामीण लोगों के कल्याण, उनकी समृद्धि और रोजगार को भी प्रभावित करता है। तथा कृषि-आधारित-उद्योगों और कृषि-सेवाओं के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन का आधार भी बनाता है। हालाँकि, रणनीतिक योजना और मिशन मोड योजनाओं द्वारा विभिन्न योजना-अवधियों के माध्यम से लगातार खाद्य सुरक्षा को बड़े पैमाने पर हासिल किया गया है, लेकिन फिर भी किसानों और उनके आर्थिक कल्याण के मुद्रीकरण का आधार अभी भी एक चुनौती बना हुआ है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, खाद्य सुरक्षा से लेकर निरंतर आय और पोषण सुरक्षा के साथ जलवायु परिवर्तन और लैंगिक समानता हेतु नीति आधारित बहुत बदलाव किये गए है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2022 तक ''किसानों की दोगुनी आय'' के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कृषि में नई तकनीकियों का विकास जिनकी आर्थिक-व्यवहार्यता एवं तकनीकी-संभवता हो, अति आवश्यक है। किसान की दोगुनी आय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नई तकनीकियों को किसानों तक पहुंचाना, कृषि में क्रांतिक एवं अचूक सकारात्मक परिवर्तन हेतु एक महत्तवपूर्ण भूमिका निभाएगा।

यह संस्थान मक्का विज्ञान एवं तकनीकी में अनुसंधान एवं विकास के प्रति समर्पित है। अब तक इस संस्थान ने अपने कार्यक्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाई है एवं मक्का के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान रहा है एवं जारी है। इसमें कोई दोराय नहीं कि खाद्यान्न फसलों में चावल एवं गेहूं के बाद मक्का का महत्तवपूर्ण स्थान है तथा इस फसल में खाद्य व पोषण सुरक्षा को और मजबूत करने की अपार क्षमताएं एवं संभावनाएं है। भारत में इन्हीं संभावनाओं व क्षमताओं को परिलक्षित कर धरातल पर उकेरने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि मक्का से सम्बंधित सभी किसानों, वैज्ञानिकों, मक्का उद्योगों, मुर्गी पलकों, निति निर्धारकों, विभिन्न मक्का सम्बंधित संस्थानों, तथा विपणन कर्ताओं के बीच में एक सुचारू संचार व्यवस्था स्थापित हो, जिससे मक्का से सम्बंधित सभी गतिविधियों का प्रभावी ढंग से एकींत सामंजस्य स्थापित किया जा सके और आमजन के सामाजिक-आर्थिक स्तर में समग्र सुधार हो सकेद्य अतः इसी संचार के तहत हमें चाहिए कि सन्देश सरल भाषा में हो, जिसके लिए भारत में हिंदी भाषा जो कि एक लोकप्रिय विकल्प है, का प्रयोग आवश्यक है। संस्थान में ''मक्का की खेती'' के सम्बन्ध में विभिन्न माध्यमों जैसे किसान मेला, किसान संगोष्ठी, खेत दिवस, विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों पर वार्ताएं, आदि से किसानों तक जानकारी हिंदी भाषा में ही या उनकी स्थानीय भाषा में ही दी जाती है। मक्का विज्ञान हेतु इसी प्रचार-प्रसार की श्रंखला में, संस्थान द्वारा इस पत्रिका का प्रकाशन हिंदी को और अधिक प्रासंगिक ही नहीं बल्कि विज्ञान को और व्यावहारिक बनाने की दिशा में एक सराहनीय कदम है।

संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिका ''कृषि चेतना'' का द्वितीय सोपान आपके हाथों में प्रस्तूत करते हुए हमें बहुत ही हर्ष एवं

प्रसन्नता हो रही है। 'कृषि चेतना' के इस अंक में मक्का में अनुवांशिक सुधार, मक्का की वैज्ञानिक खेती, फसल के जैविक व अजैविक तनाव एवं उनका प्रबंधन, रबी मक्का की तकनीकी खेती, कुछेक राज्यों में मक्का की विशेष खेती, तथा विशिष्ट मक्का जैसे स्वीट कॉर्न, बेबी कॉर्न व पॉप कॉर्न, के बारे में विभिन्न विस्तृत आलेख लेखकों ने बहुत ही सरल भाषा में प्रस्तुत किये है। "फॉल आर्मीवर्म" भारत में मक्का का एक उभरता कीट है, जिस पर लेखकों ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी से परिपूर्ण विशेष आलेख दिए है, जिससे किसानों को आगामी मक्का की सुरक्षित खेती के लिए फसल प्रबंधन में निःसंदेह सहायता मिलेगी। पत्रिका में मक्का के अलावा अन्य फसलों के बारे में भी विस्तृत आलेख प्रकाशित किये जा रहे है, तथा इनके अलावा अन्य कृषि सम्बंधित महत्तवपूर्ण आलेखों को भी इस पत्रिका में स्थान दिया गया है, जिससे पाठकों को मक्का के साथ-साथ कृषि के अन्य आयामों की भी विस्तृत जानकारी उपलब्ध हो सके, और कृषि के विभिन्न पहलुओं एवं कृषि सम्बंधित विभिन्न समसामयिक ज्वलंत विषयों का भी कुछ समावेश पत्रिका के माध्यम से उपलब्ध हो सके। इसके साथ-साथ पत्रिका को पाठकों के लिए रोचक बनाने हेतु विभिन्न रचनाएँ भी दी गयी है। इन सभी रचनाओं के योगदान लिए मैं इस संस्थान की तरफ से सभी लेखकों का आभार व्यक्त करता हूँ, और आशा है कि इसी तरह आप इस पत्रिका के भावी संस्करणों के लिए अपना अमूल्य योगदान देते रहेंगे। मैं संपादकों का भी आभारी हूँ जिन्होंने पत्रिका को बड़े ही अच्छे ढंग से सम्पादित किया एवं पत्रिका को एक मानक सम्पूर्ण स्तर प्रदान किया। मुझे पूर्ण विश्वाश और आशा है कि पत्रिका के माध्यम से विभिन्न लेखक एवं यह संस्थान आप तक पहुंचते रहेंगे एवं विज्ञानवर्धन करते रहेंगे। कृषि विज्ञान को सरल हिंदी भाषा के माध्यम से आमजन में प्रचार-प्रसार करके आप और हम मिलकर राष्ट्र के समृद्धि निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

आपका

सुजय रक्षित

सम्पादकीय

सर्वप्रथम संपादक-मण्डल प्रथम अंक के सभी लेखकों का धन्यवाद करता है जिनके सहयोग से प्रथम अंक मक्का विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसी से प्रोत्साहित हो कर द्वितय अंक के लिए आलेखकों ने संस्थान की पत्रिका ''कृषि चेतना'' के लिए आलेख प्रकाशन हेतु भेजे हैं। इस दूसरे अंक के लिए हम सभी पाठकों एवं लेखकगण के बहुत आभारी है जिनके अतुल्य योगदान एवं रुचि से ये संभव हो पाया। पत्रिका के इस अंक में लेखकों ने मक्का के अलावा, कृषि सम्बन्धित विभिन्न आयामो पर लेख प्रस्तुत किए है। हमे आशा है कि ये पत्रिका मक्का से जुड़ी जानकारियाँ एवं आधुनिक तकनीकियाँ हिन्दी भाषा के माध्यम से किसानों, वैज्ञानिको एवं छात्रों तक पहुंचाएगी तथा वें इनसे लाभांन्वित होंगे । पत्रिका के इस अंक में आधुनिक तकनीकियों द्वारा मक्का उत्पादन में वृद्धि, रोगो एवं कीटों से बचाव, मक्का बीज का रख-रखाव लेख प्रकाशित हैद्य इनके अलावा वर्मीकम्पोस्ट, मृदा सरंक्षण, भूमि स्वास्थ्य कार्ड एवं अन्य फसलों से सम्बन्धित लेख भी सम्मिलित किए गए है जिससे पाठको को एक ही पत्रिका में सभी कृषि सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध कराई जा सके।

हमे पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण एवं किसान भाई ''कृषि चेतना'' के इस अंक में प्रकाशित लेखकों को पढ़कर अवश्य ही लाभान्वित होंगे तथा अपनी खेती सम्बन्धित समस्याओ का निदान एवं आय में वृद्धि कर पाएंगे। इसके अलावा हम पाठकों से आशा करते हैं कि आप सभी सामान्य अभिरुचि के लेखन, कवितायें, कहानियाँ आदि भी हिन्दी भाषा में लिख कर कृषि चेतना पत्रिका में अगले वर्ष अवश्य भेजे, जो कि पत्रिका को ज्ञानवर्धक के साथ साथ रोचक एवं मनोरंजक बनाएगी। अपने आलेखों को लिखने से पहले कृषि चेतना पत्रिका के दिशा-निर्देशों को अवश्य पढ़ लें। आपके आलेख और रचनाएँ आपके द्वारा ही सृजित होनी चाहिए। आप पत्रिका के बारें में अपने सुझाव एवं प्रतिक्रियाएं अवश्य लिखे और इसे इंगित ईमेल पर भेजें जिससे कि हम पत्रिका की गुणवत्ता में और सुधार ला सकें।

संपादक मण्डल सभी लेखकों का आभारी है जिनके सहयोग से ''कृषि चेतना'' का द्वितय अंक समय पर प्रकाशित हो सका। पत्रिका के द्वितय अंक प्रकाशित होने पर हम संस्थान के निदेशक व लेखकों के आभारी है जिनके अथक प्रयास से पत्रिका का द्वितय अंक प्रकाशन के रूप में संभव हो सका ।

संपादकगण

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
	निदेशक की कलम से	i
	सम्पादकीय	iii
	इकाई 1-मक्का फसल आधारित आलेख	
1.	भारत में मक्का सुधार : स्थिति और संभावनाएं -सुजय रक्षित, चिकप्पा कर्जगी, शंकर लाल जाट एवं भारत भूषण	1-6
2.	बिहार में विशेष प्रकार के मक्के की संभावनाएं एवं अवरोध -संतोष कुमार, नितीश रंजन प्रकाश, प्रीति सिंह, सुमित कुमार अग्रवाल, शांति देवी बम्बोरिया	7-10
3.	पंजाब में मक्का की संभावनाएं -अभिजीत कुमार दास, बहादुर सिंह जाट, मुकेश चौधरी, रमेश कुमार, चिक्कप्पा करजगी, धर्मपाल चौधरी, भारत भूषण, यतीश के. आर. एवं विशाल सिंह	11-12
4.	छत्तीसगढ़ में मधु मक्का की व्यवसायिक खेती की सम्भावनाये -दिनेश कुमार ठाकुर, अखिलेश लकड़ा, अमित सिन्हा एवं संतोष सिन्हा	13-17
5.	मक्का : खाद्य एवम् पोषण सुरक्षा -भारत भूषण, मनेश चंद्र डागला, अभिजीत कुमार दास, हरमनजोत कौर एवं धर्मपाल चौधरी	18-21
6.	मक्का उत्पादन की आधुनिक तकनीकें एवं उपकरण -शांति देवी बम्बोरिया, संतोष कुमार, सुमित कुमार अग्रवाल, सुमित्रा देवी बम्बोरिया एवं जितेंद्र सिंह बम्बोरिया	22-25
7.	बिहार प्रदेश में रबी में मक्का की फसल पर शीत-प्रकोप से बचाव -श्यामबीर सिंह एवं रविन्द्र कुमार कसाना	26-27
8.	रबी मक्काः प्रमुख रोग एवं प्रबंधन -सुमित कुमार अग्रवाल, प्रवीण कुमार बगड़िया, ममता गुप्ता, संतोष कुमार, शांति देवी बम्बोरिया एवं कर्मबीर सिंह हुड्डा	28-30
9.	भारत में मक्का का जीवाणु तना सड़न रोग : परिचय और प्रबंधन के उपाय -प्रवीण कुमार बगड़िया, सुमित अग्रवाल, कर्मबीर सिंह हुड्डा, विशाल सिंह एवं हरलीन कौर	31-32
10.	मक्का में कीट समस्याओं की वर्तमान स्थिति का अवलोकन -जे.सी. शेखर, पी. लक्ष्मी सौजन्या, एस.बी. सूबी, ज्वाला जिंदल, महासिंह जागलान, एम.एल.के. रैडी एवं सुजय रक्षित	33-38
11.	रबी मक्का की फसल में माजर निकलने के उपरांत तना गलन फ्युसारियम वर्टिसिलोइड्स का प्रकोपः दक्षिणी राजस्थान के परिदृश्य से -प्रशांत पी. जाम्भूलकर, प्रमोद रोकडिया, रमेश बाबु, हरगिलास एवं आर. के. कल्याण	39-41

12. फॉल आर्मीवर्म की खेत में पहचान और किसानों के लिए तत्काल प्रबंधन की उचित विधि 42-46
-एस.बी. सूबी, पी. लक्ष्मी सौजन्या, महासिंह जागलान, ज्वाला जिंदल, एम.एल.के. रैडी, शुशांत माहदीक, पुत्तरम नाईक, रवि केसवन, सुजय रक्षित एवं जे.सी. शेखर

इकाई 2- अन्य विषयों पर आधारित कृषि आलेख

13. भविष्य में संरक्षण कृषि चुनौतियाँ एवं संभावनाएं 47-50
-सीमा भारद्वाज, आर.एस.चौधरी, जे. सोमसुंदरम, एम. मोहंती, प्रभात त्रिपाठी, आर.के. सिंह एवं एन.के सिन्हा

14. पीड़कनाशी रसायन : फसल उत्पादन में भूमिका, उपयोग एवं सावधानियाँ 51-54
मनेश चन्द्र डागला, भारत भूषण, प्रदीप कुमार, विशाल सिंह एवं प्रवीण कुमार बगड़िया

15. खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्प्रे तकनीक प्रबंधन 55-58
नरेन्द्र सिंह, मेहर चन्द, समर सिंह, धर्मबीर यादव एंव मेहर चन्द कम्बोज

16. लक्षित उपज हेतु फसल के उत्पादन में उर्वरक अनुशंसा 59-62
प्रदीप डे

17. फसल अवशेष प्रबंधन 63-67
नरेन्द्र सिंह, मेहर चन्द, धर्मबीर यादव, मेहर चन्द कम्बोज एंव प्रीति शर्मा

18. बदलते जलवायु परिवेश में एकाधिक वातावरण परीक्षण का महत्त्व 68-69
मुकेश चौधरी, जीतराम चौधरी, बहादुर सिंह जाट, अभिजीत कुमार दास, प्रदीप कुमार, दीप मोहन महला एवं विशाल सिंह

19. भण्डारण फंफूद का बीजों पर प्रभाव व उनका प्रबंधन 70-71
सतबीर सिंह जाखड़, प्रीति, सौरभ एवं निर्मल सिंह

20. बीजोपचार का महत्त्व व उपयुक्त रसायन 72-73
प्रीति, सौरभ एवं निर्मल सिंह

21. वर्मीकम्पोस्ट : मृदा उर्वरता के लिए उपयोगी 74-75
पूनम यादव, दिनेश यादव, बृजेश यादव, अनिल कुमार वर्मा, नीलम यादव एवं दीप मोहन महला

22. मृदा स्वास्थ्य कार्ड का किसान हित में महत्त्व 76-77
पूनम यादव, दिनेश कुमार यादव एवं बृजेश यादव

23. नील हरित शैवाल का उत्पादन एवं प्रयोग 78
दिनेश यादव, बृजेश यादव, पूनम यादव, अनिल कुमार वर्मा एवं दीप मोहन महला

24. वर्षा सम्बन्धित कहावतें 79-80
कृपाशंकर सिंह एवं हेम राज भण्डारी

इकाई 3- अन्य फसलों पर आधारित आलेख

25. सोयाबीन एक सुनहरी बीनः उत्पादन एवं उपयोग 81-83
आर. के. वर्मा, एन. खांडेकर, एस. डी. बिल्लौरे, ए. रमेश, एस. नागर, शिवाकुमार एम., राघवेन्द्र एम. एवं सुभाष चंद्रा

26. गेहूं में प्रतिरोधी मंडूसी के प्रबंधन हेतु उचित छिड़काव विधि 84-85
नरेन्द्र सिंह, मेहरचन्द, धर्मबीर यादव एवं समर सिंह

27. स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन (एसएसएनएम): कंद फसलो मे उत्पादन वृद्धि की प्रभावी तकनीक 86-88
संकेत जि. मोरे एवं जी. बैजू

28. सब्जी की फसलों में खरपतवार नियन्त्रण 89-92
नरेन्द्र सिंह, मेहरचन्द, सतबीर सिंह पूनिया, धर्मबीर यादव एवं समर सिंह

इकाई 4- विविध

हिन्दी दिवस एवं चेतना पखवाड़ा 93

हिंदी कार्यशाला 94

झलकियाँ 2018 94-98

भारत में मक्का सुधार: स्थिति और संभावनाएं

सुजय रक्षित*, चिकप्पा कर्जगी, शंकर लाल जाट एंव भारत भूषण
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
*संवादी लेखक का ई-मेलः srakshit@gmail.com

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव हर जगह महसूस किए जा रहे हैं। कृषि उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव उष्ण-कटिबंधीय और उपोष्ण-कटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे प्रमुख माना जाता है। कई तनावों के लिए दक्षिण एशिया की कम अनुकूली क्षमता उसे विशेष रूप से कमजोर बनाने का अनुमान है। इस प्रकार, जलवायु बदलने और कृषि भूमि और पानी की कम उपलब्धता के तहत इस बढ़ती आबादी के लिए खाद्य एक बड़ी कृषि चुनौती है। इस चुनौती का मुकाबला फसलों के तहत क्षेत्र को बढ़ाने के बजाय प्रति इकाई क्षेत्र में उच्च फसल पैदावार के माध्यम से किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, फसलों की पैदावार को सीमित करने वाली जैविक और अजैविक तनावों को अच्छी तरह से सहने वाली या उनके अनुसार स्वयं अनुकूलित करने वाली फसलों को बढ़ाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। लगभग 50% मानव श्रेणी खाद्य कैलोरी के लिए सीधे और परोक्ष रूप से अनाज फसलों, जैसे गेहूं, चावल और मक्का को खाते है। इन शीर्ष अनाजों में से, चावल की तुलना में मक्का की पानी की आवश्यकता सबसे कम (500 मिमी) है। मक्का भोजन, फीड, चारा और हाल ही में अपनी व्यापक अनुकूलता के कारण जैव-ईंधन के स्रोत के रूप में उपयोग की जाने वाली सबसे बहुआयामी फसल है। वर्ष 2016-17 में, भारत ने 272 मिलियन टन से अधिक अनाज का उत्पादन किया। सकल खेती वाले क्षेत्र का 44% चावल के लिये, गेहूं (30%), मक्का (9%), बाजरा (8%) और अन्य कदल के लिए उपयोग होता है। चावल और गेहूं क्रमशः अनाज उत्पादन का 44% और 39% है, जबकि मक्का 9% से अधिक अनाज उत्पादन का प्रतिनिधित्व करता है।

मक्का के क्षेत्र और उत्पादन की स्थिति और उसके उपयोग

1950-51 में, भारत में उत्पादित कुल मक्का करीब 1.73 मिलियन टन था, जो क्षेत्र में 35% की वृद्धि और उपज में 48% की वजह से 1958-59 तक 3.46 मिलियन टन हो गया था। 1959-60 की अवधि के दौरान मक्का क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि 109 हजार हेक्टेयर थी, जबकि उत्पादकता 24.7 किलोग्राम / हेक्टेयर / वर्ष तक बढ़ी। वर्ष 1960 के दशक में संबंधित आंकड़े 168 हजार हेक्टेयर प्रति वर्ष और 7.4 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष थे। 1970 और 1980 के दशक के दौरान मक्का क्षेत्र लगभग स्थिर था, जबकि इसी दशक में महत्वपूर्ण उपज वृद्धि 29 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष दर्ज की गई। यह आंकड़ा 1990 के दशक में 37 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक बढ़ गया, जो अगले दशक (2000-10) में 46 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष से अधिक की शीर्ष पर पहुंच गया। वर्तमान (2011-17) में उपज वृद्धि 10 किलो प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष से अधिक है। 1980-90 के दौरान कृषि क्षेत्र वृद्धि में कुछ धीमी गिरावट के होते हुए भी, मक्का की खेती के तहत आने वाला क्षेत्र काफी हद तक बढ़ गया है और सदी के प्रथम दशक में ऐतिहासिक अधिकतम विकास दर को दर्शाते हुए 200,000 हेक्टेयर/वर्ष तक पहुंच गया है। वर्तमान में मक्का क्षेत्र सालाना 70 हजार हेक्टेयर बढ़ रहा है। पांच वार्षिक औसत आकड़े के तहत मक्का का वर्तमान क्षेत्र 8.9 मिलियन हेक्टेयर है और उत्पादन 23.0 मिलियन टन है।

भारत में, मक्का मुख्य रूप से एक बरसाती मौसम (खरीफ) की फसल थी और मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश में उगायी जाती थी। हालांकि, 1980 के दशक के बाद, यह क्षेत्र प्रायद्वीपीय क्षेत्र की ओर अधिक स्थानांतरित हो गया और वर्तमान में यह क्षेत्र मक्का के तहत कुल क्षेत्रफल का लगभग 40% और कुल उत्पादन का 52% का प्रतिनिधित्व करता है। प्रमुख मक्का की खेती वाले राज्य कर्नाटक (14.8%), महाराष्ट्र (10.9%), मध्य प्रदेश (10.8%), अविभाजित आंध्र प्रदेश (10.4%), राजस्थान (10.6%), उत्तर प्रदेश (8.3%), बिहार (7.9%), और तमिलनाडू (3.6%) है जो भारत में होने वाली मक्का उत्पादन का 80% है। हालांकि, राजस्थान (1.6 टन प्रति हेक्टेयर) और गुजरात (1.6 टन प्रति हेक्टेयर) जैसे कई राज्यों में मक्का की उत्पादकता काफी कम है, जबकि उत्तर प्रदेश (1.7 टन प्रति हेक्टेयर), मध्य प्रदेश (1.9 टन प्रति हेक्टेयर)) और महाराष्ट्र (2.3 टन प्रति हेक्टेयर) राष्ट्रीय औसत 2.6 टन प्रति हेक्टेयर से नीचे हैं।

भारत में मक्का देश भर में (केरल को छोड़कर) पूरे तीन मौसमों में, यानी शीतकालीन- रबी (बिहार और प्रायद्वीपीय भारत में), बरसात के

मौसम -खरीफ (देश भर में, गोवा और केरल को छोड़कर) और गर्मियों (हरियाणा पंजाब, हरियाणा) में उगाया जाता है। पिछले पांच सालों में, सभी अनाज के बीच, मक्का ने उपज में 0.68% की उच्चतम चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) और उत्पादन में 0.73% दर्ज की है। देश में शीतकालीन और वसंत मक्का के तहत क्षेत्र में 270% दर की भारी वृद्धि दर्ज की गई है। शीतकालीन मक्का की औसत उत्पादकता 4.1 टन प्रति हेक्टेयर तक जा पहुँची है और कुछ किसान सिंचाई और उच्च निवेश स्थिति के साथ 11-12 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त कर रहे हैं। हालांकि, मक्का परिदृश्य खरीफ मक्का में ज्यादा है, जिसमें से 80% या उससे अधिक बारिश आधारित है, इसी कारण भारत में मक्का की कम उत्पादकता है।

भारत में मक्का का वर्तमान उप्पादन लगभग 24 मिलियन टन है, जिसमें से लगभग 62% फीड के रूप में, 18% औद्योगिक प्रयोजनों के लिए, 10% निर्यात के लिए, भोजन के रूप में 6% और बीज सहित अन्य उद्देश्यों के लिए 4% है। कुल मांग वृद्धि की प्रवृत्ति से 7.18% की मांग में वृद्धि का अन्देशा है, जिससे 2025 तक 50-60 मिलियन टन की मक्का की लक्षित मांग होगी। मक्का की अंतर्राष्ट्रीय मांग में भी वृद्धि होने की उम्मीद है। वर्तमान में भारत अपनी घरेलू मांग को पूरा करने में सक्षम है और यदि अंतरराष्ट्रीय मांग भी शामिल की जाए तो यह लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ना ही होगा।

भारत में मक्का की मांग

पोल्ट्री उत्पादन में, 60-70% व्यवसाय लागत फीड पर खर्च की जाती है। मक्का इस व्यवसाय का मुख्य घटक है जो मुर्गीयों को कैलोरी और कच्चे फाइबर के मुख्य स्रोत के रूप में खिलाया जाता है। भारत में, मुख्य रूप से मुर्गी उद्योग के कारण मक्का की वार्षिक मांग में 5-9% की वृद्धि होने की उम्मीद है। भारत में 500 मिलियन की पशुधन आबादी में 1.3% की वृद्धि की उम्मीद है जिसे 2022 तक खिलाने के लिए 526 मिलियन टन शुष्क पदार्थ, 855 मिलियन टन हरा चारा की आवश्यकता होगी। यह 274 मिलियन मीट्रिक टन अनाज की कुल आवश्यकता पूरी करने में भी मक्का मुख्य घटक होगा। फसल कटाई के बाद सूखी या हरी मक्का फसल को स्टोवर के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। कुछ विशेष मक्का जैसे मीठी मक्का, बेबी कॉर्न के डंठल और हरी मक्का को मुख्य रूप से हरा चारा और साईलेज के तौर पर प्रयोग कर सकते हैं। मक्का मिलिंग के उत्पाद जैसे कि मकई स्टार्च, मकई का तेल, मकई स्टीप, शराब, ग्लूटेन इत्यादि की घरेलू खाद्य प्रसंस्करण, दवा-औषधि, चमड़े और कपड़ा उद्योगों में बड़ी मांग है और साथ ही साथ उनके निर्यात की संभावना भी है। स्टार्च और औद्योगिक उत्पादों में मक्का की वर्तमान खपत 4.25 मिलियन मीट्रिक टन के स्तर से आने वाले 5 वर्षों में 15 मिलियन टन तक पहुंचने की उम्मीद है। मक्का के बढ़ते उत्पादन के साथ, देश अपनी घरेलू जरूरतों को पूरा करने में सक्षम रहा है। घरेलू जरूरतों को पूरा करने के अलावा भारत पिछले पंद्रह वर्षों (2003 से) के लिए मक्का निर्यात कर रहा है। 2013-14 में मक्का निर्यात अपने चरम पर पहुंच गया था, हालांकि, उसके बाद से यह गिर रहा है। भारत मुख्य रूप से इंडोनेशिया, वियतनाम, मलेशिया इत्यादि जैसे दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में मक्का निर्यात करता है।

मक्का अनुसंधान और विकास की हालिया पहल

पैदावार और गुणवत्ता में सुधार

पिछले कुछ दशकों के दौरान, क्यूपीएम (QPM-quality protein maize) अनुसंधान और संकर मक्का कार्यक्रम दोनों को विशेष आकर्षण प्राप्त हुआ। मक्का परियोजना वैज्ञानिकों ने सीमेट (CIMMYT) से प्राप्त कठोर एंडोस्पर्म क्यूपीएम अंतभर्व (inbred) का उपयोग करके एक दर्जन से अधिक क्यूपीएम मक्का एकल क्रॉस संकर (SCH) विकसित किए। मार्कर-समर्थित चयन अर्थात मास (MAS) का उपयोग करके, सामान्य मक्का से पहला क्यूपीएम, विवेक क्यूपीएम-9 वर्ष 2008 में जारी किया गया था। हाल ही में, मास के अनिवार्य माध्यम से क्यूपीएम संकर, जैसे, पुसा HM-8 बेहतर (AQH-8), पुसा HM-9 बेहतर (AQH -9) और पुसा HM-4 बेहतर (AQH-4) और इम्पूवड क्यूपीएम संकर, पुसा विवेक क्यूपीएम-9 इम्पूवड (APQH-9) जिस में विटामिन ए की मात्रा ज्यादा थी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा व्युतपन्न किये गये। हालांकि मक्का संकर प्रकाश को बेबी कॉर्न के रूप में खेती की जा रही थी, लेकिन 2005, 2010 और 2015 में वाणिज्यिक खेती के लिए HM4, HSC 1 और BPCH को बेबी मकई, मीठा मक्का और पॉपकॉर्न के पहले संकर के रूप में पहचाना गया था। हाल ही में, FSCH-18, एक मीठे मकई संकर और DMRHP-1402, एक पॉपकॉर्न संकर को क्रमशः 2016 और 2014 में व्यावसायिक खेती के लिए जारी किया गया था। इसके अलावा, मीठा मक्का के लिए बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए मीठा, कैंडी, हाई-ब्रिक्स 53, हाई-ब्रिक्स-39 कई मीठे मक्का संकर किस्मे जारी की गई हैं।

पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार सरंक्षण प्राधिकरण के अधिनियम (2001) के तहत निजी उद्यमियों को भी सुविधा और सुरक्षा मिली जिस

से वो लोग भी एकल क्रॉस संकर (SCH) या उसके रूप को बना कर कृषि बाजार में उतार सकते हैं। वर्ष 2000 से 2017 तक व्युत्पन्न की गयी ज़्यादातर प्रजातियाँ SCH थी जिसमे दोनों सरकारी और गैर-सरकारी प्रतिष्ठानों का बराबर योगदान रहा। इस दौरान केवल 19.1% ही खुला परागण किस्में (OPV) प्रकार की थी। मध्यम से लंबी अवधि की किस्मों को हमेशा से अधिक महत्व प्राप्त होता रहा है जिस में देर से परिपक्वता होने वाली 33.6%, जबकि मध्यम परिपक्वता वाली 31.8% प्रजातियों को जारी किया गया। 2000 से कुल किस्मों के विमोचन में छोटी अवधि वाली किस्मों का 33.7% हिस्सा है। सभी प्रमुख मक्का उगाने वाले राज्यों के लिए निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों द्वारा जारी की जाने वाली किस्मों की पर्याप्त संख्या है। एक अनुमान से पता चलता है कि भारत में लगभग 65% मक्का क्षेत्र विभिन्न प्रकार के संकरों का हिस्सा है। एकल क्रॉस संकर (SCH) के मामले में यह मक्का क्षेत्र का 22-25% है।

संकर मक्का के लिए बेहतर उत्पादन तकनीक

खरीफ सिंचित फसल के लिए, 74-80 हजार प्रति हेक्टेयर की पौधों की आबादी का इष्टतम पाया गया। पोषक प्रबंधन 10 टन/हेक्टेयर गोबर की खाद (FYM) और एन-पी-के: 150, 75, 75 किलो/हेक्टेयर कि दर से डालने पर लाभकारी साबित हुआ। इसी प्रकार वर्षा आधारित खरीफ मौसम की फसल के लिए, 66 हजार पौधों की आबादी और 10 टन/हेक्टेयर के साथ एन-पी-के 120: 40: 40 किलोग्राम/हेक्टेयर को सही माना गया है। रबी मक्का की फसल में प्रति हेक्टेयर 80-90 हजार पौधों की आबादी के साथ एन-पी-के/250: 105: 105 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर डालने पर सबसे अच्छा प्रतिफल दिया। हालांकि, व्यापक अध्ययनों से पता चलता है कि क्षेत्र-विशिष्ट आधारित पोषक प्रबंधन अब तक का सबसे अच्छा पोषण परिणाम देता है। बारिश की स्थिति या वर्षा आधारित मक्का उत्पादकता बढ़ाने के लिए फसल अवशेष/5 टन प्रति हेक्टेयर का उपयोग प्रभावी पाया गया।

खरपतवार मुख्य रूप से खरीफ मक्का में 30-60% उपज नुकसान का कारण बनता है। खरपतवारनाशक टेम्बोट्रिओन Tembotrione/120 मिलीलीटर ए.आई. प्रति हेक्टेयर का मक्का में बुआई के 25 दिन बाद स्प्रे करने से बुआई के बाद आने वाले खरपतवार के दूसरे/तीसरे आक्रमण के नियंत्रण के लिए जरूरी है। एट्राजिन (700 ग्राम ए.आई. प्रति हेक्टेयर) का टैंक-मिश्रण बना कर इसका छिड़काव पौधों के पूर्व-अंकुरण के रूप में करने को सबसे प्रभावी पाया जाता है। अंतर-फसल प्रणाली जिसमें सब्जियों (गोभी, फूलगोभी, पालक) और फलियां इत्यादि के साथ मक्का को उगाने से किसानों को उच्च और नियमित आय सुनिश्चित करने, बेहतर वित्तीय जोखिम प्रबंधन और जलवायु परिवर्तनों को सहने में बहुत प्रभावी साबित हुईं है। सब्जियों के साथ विशेषता वाली मकई का अंतर-फसल विशेष रूप से बाहरी-शहरी पारिस्थिति में एक वरदान साबित हुआ है।

संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकी

मक्का-आधारित फसल प्रणाली में जीरो टिलेज (zero tillage) प्रौद्योगिकी और फसल अवशेष निगमन अत्यधिक लाभकारी साबित हुआ। मक्का में जीरो टिलेज तहत 40-65 हेक्टेयर भूमि द्वारा कम पानी लेना और 11.3-12.9 टन प्रति हेक्टेयर की उत्पादकता देना, एक अच्छी खबर है। यह कम उत्पादन लागत के साथ 31% उच्च शुद्ध लाभ देता है। संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकी का चलन गंगा तटीय क्षेत्र और प्रायद्वीपीय भारत में गति प्राप्त कर रहा है। वर्तमान में आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु राज्य के 100 हजार हेक्टेयर में जीरो टिलेज के तहत मक्का बोया जा रहा है। वसंत मक्का के लिए भी जीरो टिलेज के तहत टपक सिंचाई करना विशेष रूप से जल उत्पादकता बढ़ाने और सिंचाई के पानी की आवश्यकता को कम करने के लिए सक्षम है।

पौधा संरक्षण प्रौद्योगिकी

हालांकि कीटों और बीमारियों के खिलाफ रासायनिक नियंत्रण उपायों की स्थापना की गई है, फिर भी पर्यावरण अनुकूल नियंत्रण उपायों का कियान्वयन किया जाना चाहिए। आरम्भ से जारी की गई किस्मों में कीट प्रतिरोध को शामिल करने की प्राथमिकताएं बनी हुई हैं, जिसने लाभांश भी प्रदान किया है। जैव-कीटनाशी हालांकि काफी प्रभावी है पर मक्का कीटों को नियंत्रित करने में इसका व्यापक उपयोग अभी तक नियमित कियान्वयन नहीं बना है। जहां तक खाने वाली मीठे मकई, बेबी कॉर्न और हरी मक्का जैसे विशेष मकई की बात आती है, कीटनाशक के अधिक अविवेकशील अनुप्रयोग से वैज्ञानिक चिंतित हैं। किसानों को यह बताना चाहिए कि रासायनिक नियंत्रण के बजाय जैविक (organic) रूप से नियंत्रित मक्का उत्पादित किया जाता है तो किसान अधिक कमाते हैं।

कृषि मशीनीकरण

कृषि मशीनीकरण से प्राकृतिक संसाधनों का सही उपयोग और कम श्रम में समय पर कृषि गतिविधि का संचालन होता है जिस से खेती की लागत को कम करने, प्रतिदिन उत्पादकता में वृद्धि, गुणवत्ता उत्पादन, बेहतर जीवन स्तर, प्रति मानव शक्ति कृषि आय में वृद्धि, फसल प्राप्ति की तीव्रता इत्यादि में सहायता मिलती है। भारत में, भूमि की तैयारी और

कुछ हद तक बुवाई के लिए कृषि को मशीनीकृत किया जाता है, जबकि कटाई, और फसल कटाई के बाद सारे कार्य मुख्य रूप से हाथों से होते हैं। तमिलनाडु और अन्य हिस्सों में, किसान कम्बाईन हार्वेस्टर का उपयोग कर रहे हैं। बड़ी मात्रा में खासकर प्रायद्वीपीय भारत में, किसान यांत्रिक और बिजली संचालित शेलिंग मशीनों का उपयोग कर रहे हैं।

कटाई उपरांत रख-रखाव

मक्का की कटाई उपरांत फसल गुणवत्ता, मौसम और भंडारण की स्थिति में नमी पर निर्भर है। आमतौर पर मक्का की फसल कटाई 18-20% अनाज नमी स्तर पर किया जाता है। अनाज को स्टोर में अनाज कीट (rice weevil) और फंफूद संक्रमण (aflatoxin) से बचाने के लिए कम नमी (12%) पर संग्रहीत किया जाना चाहिए। कटाई, दाना उतारने, छिलका खोलने, फटकना, परिवहन और सफाई के दौरान लगभग 5% नुकसान का अनुमान लगाया जाता है।

मूल्य संवर्धन

मक्का अनाज को तीन प्रमुख प्रक्रियाओं, जैसे सूखी मिलिंग, गीली मिलिंग और क्षार प्रसंस्करण का उपयोग करके संशोधित या संवर्धन किया जाता है। मक्का आधारित ''पकाने को सज्जित (RTC)'' और ''खाने को सज्जित (RTE)'' उत्पादों की श्रृंखला विकसित की गई है जैसे कि कर्नाटक राज्य में कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, मंड्या द्वारा मक्का-आधारित वर्मीसेली, कुरकुरा, नूडल्स और पापड़, को ब्रांड नाम 'Maizy' दे कर विकसित किया गया है। क्यूपीएम आधारित उत्पाद जैसे कि भुना हुआ आटा, दलिया, सूजी, मल्टी-ग्रेन आटा, मक्का ग्रिट, नमकीन उत्पाद किसानों को छोटे उद्धमी बनने के लिए अत्यधिक प्रोत्साहित करते हैं। मीठे मकई, पॉपकॉर्न, बेबी कॉर्न के प्राथमिक प्रसंस्करण से न केवल घरेलू रोजगार के अवसरों में सुधार होता है, अपितु इस से किसानों को लाभप्रदता और सबसे महत्वपूर्ण रूप से उन्हें स्थानीय स्तर पर संलग्न करने की क्षमता है। इस तरह के उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय मांग भी बहुत है।

मक्का उत्पादन में निरंतर वृद्धि के लिए चुनौतियां और रणनीतियाँ

कृषि क्षेत्र में सबसे बड़ी चुनौती उत्पादकता बढ़ाने की है। इसके लिए समग्र रूप से महत्वपूर्ण मुद्दों को हल करने के लिए सार्वजनिक-निजी-निर्माता भागीदारी (PPPP) मोड में सभी हितधारकों, योजनाकारों, शोधकर्ताओं, किसानों और व्यापारियों को शामिल करने के लिए एक विस्तृत कार्य योजना विकसित की जानी चाहिए। परिभाषित रणनीतियों के बाद ही उत्पादकता में वृद्धि की चुनौती प्राप्त हो सकती है।

पौधों की प्रजनन दक्षता में वृद्धि के लिए रणनीतियाँ

पौधों की पूर्व-प्रजनन गतिविधि को सुदृढ़ बनाना

विभिन्न परिपक्वता समूहों के तहत हेटरोटिक पूल (heterotic pool) का गठन बहुत महत्वपूर्ण है। आर्थिक महत्व के साथ-साथ हेटरोटिक संबंधों के लक्षणों के लिए उपलब्ध जनंद्रव्य के साथ-साथ विदेशी जनंद्रव्य की पूरी तरह से जांच की जानी चाहिए।

तनाव सहनशीलता के लिए अनुवांशिक वृद्धि

मक्का सहित सभी फसलों में जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव महसूस किया जा रहा है। इन्हें हल करने के लिए, जलवायु अनुकूलित, सूखा, खड़े पानी, उच्च तापमान को सहने वाले जीन्स (GENES) को मक्का जर्मप्लाज्म में शामिल करके नया रूप विकसित किया जाना चाहिए। एक साथ सभी तनाव के संयोजन के रहते सक्षम प्रजातियों का चयन रणनीति मक्का खेती को ज्यादा विकसित करने की होनी चाहिए।

अनुवांशिक लाभ बढ़ाने के लिए सर्वोतम प्रौद्योगिकी का उपयोग

प्रजनन तकनीक जैसे दोहरा अगुणित (double haploid; डीएच), आण्विक मार्कर-समर्थित प्रजनन, गुणकारी लक्षणों के उच्च थ्रूपुट सटीक फेनोटाइपिंग, निर्णय-समर्थन प्रणाली/उपकरण न केवल आनुवंशिक लाभ बल्कि पौध प्रजनन दक्षता को बढ़ाने के लिए नए अवसर प्रदान करते हैं। प्रजनन दक्षता में सुधार के लिए परंपरागत प्रजनन कार्यक्रम के साथ डीएच तकनीकों और उच्च थ्रूपुट जीन प्रारूप को एकीकृत करने की आवश्यकता है। आनुवांशिकी अभियांत्रिकी, RNA-हस्तक्षेप और क्रिस्पर (CRISPR) तकनीक हमें नए उपकरण प्रदान करती है जो मक्का के जनंद्रव्य को आवश्यकतानुसार किसी भी रूप में बदल सकते हैं।

आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्का को अपनाना और विकास

जीएम (GM; genetically modified) मक्का 16 देशों में 60.6 मिलियन हेक्टेयर में खेती की जा रही है। भारत में निजी क्षेत्रों के कुछ जीएम कार्यक्रम क्षेत्रीय परीक्षणों में हैं लेकिन उनमें से कोई भी बड़े पैमाने पर खेती के लिए अनुमति प्राप्त नहीं कर पाया है। कीट कीटों को सहने और बीमारियों को नियंत्रित करने में सक्षम और खरपतवारनाशको को सहन करने के लिए जीएम मक्का विकसित करने वाले अनुसंधान कार्यक्रम को मजबूत किया जाना चाहिए।

संकर बीज उत्पादन को सुदृढ़ करना

मक्का फसल के लिए एकल क्रॉस संकर (SCH) का बीज उत्पादन एक मिशन मोड में किया जाना चाहिए ताकि उत्पादकता अंतराल को कम किया जा सके। एक विशिष्ट क्षेत्र के लिए उपयुक्त बेहतर SCHs को जारी करने के लिए कम से कम 5 वर्षों के लिए बीज उत्पादन की एक रोलिंग योजना तैयार की जानी चाहिए।

उत्पादन और संरक्षण प्रौद्योगिकी

किसानों की आय बढ़ाने और पर्यावरणीय कार्बनिक पद-छाप को कम करने के लिए कृषि संबंधी सिफारिशों की पुनःनिरीक्षण की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत कृषि को अपनाने, लागत कम करने, मिट्टी, पानी और पोषक तत्वों के स्वास्थ्य और दक्षता में सुधार के लिए प्रयास किये जाने चाहिए। जल प्रबंधन के लिए खेती का मिट्टी पर जहां तक संभव हो सूक्ष्म सिंचाई और जैविक मल्चिंग को अपनाया जाना चाहिए। विशेष रूप से बाहरी शहरी क्षेत्रों में विशेष मक्का के बाजार की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। जैविक तनाव को नियंत्रित करने के लिए पौध संरक्षण में मेजबान पौध प्रतिरोध, एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) प्रणाली और जैविक नियंत्रण विधियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह फायदेमंद कीड़े, मिट्टी में रह रहे अन्य उपयोगी सूक्ष्म-जीवों को बनाए रखने में तथा खाद्य श्रृंखला में कीटनाशक, मानव स्वास्थ्य के खतरे और पर्यावरण प्रदूषण और कृषि लागत की कम करने में मदद करेगा।

मूल्य श्रृंखला का विकास

मक्का मूल्य श्रृंखला के विकास के दौरान, दक्षता, उपभोक्ता वरीयताओं/मांगों, औद्योगिक आपूर्ति और उपभोक्ताओं को लाभ के सुधार के लिए ध्यान दिया जाना चाहिए। स्थानीय महिलाओं और युवाओं पर आधारित या उन से जुड़े मक्का की मूल्य प्रसंस्करण गतिविधियों को प्राथमिकताएं प्राप्त होनी चाहिए। यह किसानों को बेहतर लाभप्रदता के साथ-साथ किसानी से बाहर (off-farm) नौकरी का अवसर प्रदान कर सकता है। इसके अलावा, स्टार्च और इसके यौगिक की मांग को पूरा करने के लिए अधिक गीला पिसाई (wet milling) उद्योग स्थापित किए जाने की आवश्यकता है।

किसानों को नव विकसित क्यूपीएम, एकल क्रोस संकर (SCHs) से जुड़े फायदे के बारे में संवेदनशील होना चाहिए। कुकुट फीड उत्पादकों को सामान्य मक्का से ज्यादा क्यूपीएम की श्रेष्ठता पर शिक्षित करने की भी आवश्यकता है। क्यूपीएम की खरीद और विक्रय सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा होना चाहिए, जहां आदिवासी और गरीब लोगों द्वारा उन राज्यों में मक्का को पौष्टिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सीधे भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

भारत में मक्का फसल के लिए घोषित प्रौद्योगिकी के सुधार के लिए महत्वपूर्ण नीति सुझाव

शून्य जुताई (ZT) जैसे धारणीय प्रौद्योगिकी को अनुवृत्ति प्राप्त होनी चाहिए ताकि इस तरह के पद्तियों के प्रोत्साहन से महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ सुनिश्चित किया जा सके।

मक्का-आधारित मूल्य श्रृंखलाओं को गांव स्तर पर विकसित करने के लिए पीपीपीपी (PPPP) माध्यम, जिसमें स्वयं सहायता समूहों (SHG), उत्पादक कंपनियों और किसानों को सहकारी समितियों की भागीदारी हो, को प्राथमिकता देनी चाहिए।

दोहरी अगुणिता (DH), मार्कर समर्थित चयन (MAS), जीनोम चयन (GS), संपूर्ण जीनोम सह अध्ययन (GWAS) और संरक्षित कृषि (CA) जैसी सर्वोतम तकनीकों को शोध कार्यक्रम की रणनीतियों में एकीकृत किया जाना चाहिए।

मक्का में संभावित उपज क्षमता और असल उपज उत्पादन में अंतर का अनुमान केवल तभी हो सकता है जब स्थानीय कृषि स्नातकों या भुगतान एजेंटों को पीपीपीपी मोड में शामिल करके स्थान-विशिष्ट उत्पादन प्रौद्योगिकियों का बेहतर प्रसार किया जाए।

प्रसंस्करण कर रहे उद्दमी अनुबंध खेती के अंतर्गत मिलने वाले वित्तीय लाभ से बेहतर उत्पादन प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित होंगे।

भारत में मक्का अनुसंधान और विकास के लिए चुनौतियां और मार्ग-दर्शन

रबी व वसंत मक्का (4.1 टन / हेक्टेयर) की उत्पादकता खरीफ मक्का (2.3 टन / हेक्टेयर) से लगभग दोगुना है। हालांकि, खरीफ मक्का कुल मक्का क्षेत्र का 82.3% का प्रतिनिधित्व करता है। मक्का उत्पादन को बढ़ाने के लिए खरीफ मक्का की उत्पादकता में काफी वृद्धि की जरूरत है। लगभग 75% खरीफ क्षेत्र वर्षा आधारित है, जबकि रबी और वसंत मक्का मुख्य रूप से अनुकूल पारिस्थिति में उगाया जाता है।

हालांकि, खरीफ मौसम के दौरान उष्ण-कटिबंधीय और उप-उष्णकटिबंधीय पर्यावरणीय परिस्थितियों जैसे कि दिन की कम अवधि, फसल की शीघ्र परिपक्वता, रात का तापमान, कम गुणवत्ता वाली धूप, बादल मौसम आदि संभावित उत्पादकता की प्राप्ति को रोकती है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के तहत असमान वर्षा, सूखा, बाढ़, उच्च तापमान, तेज हवा इत्यादि जैसे मौसम की घटनाएं, खरीफ मक्का की उत्पादकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। वसंत मक्का में फूलों वाली और अनाज भरने वाली अवस्था में गर्मी का तनाव होना पर्याप्त उपज नुकसान का कारण बनता है।

जैविक तनावों में PFSR (post & flowerng stalk rot), BLSB (leaf sheath borer), डीएम (downy mildew), ईयर रोट (ear rot) प्रमुख है। कीटों में, तना छेदक (*Chilo partellus*) का साल भर रहना एक आम समस्या है। रबी मौसम के दौरान विशेष रूप से दक्षिणी प्रायद्वीपीय क्षेत्र में गुलाबी छेदक (*Sesamia inferens*) प्रमुख चिंता का विषय है। देश के उत्तरी हिस्सों में विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश राज्यों में वसंत मक्का लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। वहां शूट फ्लाई (*Atherigona orientalis*) एक बड़ी समस्या बन रही है, खासकर जब फसल देर से बोयी जाती है। भारत में फॉल आर्मी वर्म (*Spodoptera frugiperda*) की हालिया रिपोर्टिंग ने चिंता को बढ़ा दिया है। इस के प्रबंधन के लिए एक एकीकृत/समेकित प्रबन्धन की आवश्यकता है।

एकल क्रॉस संकर (SCH) के गुणवत्ता वाले बीज की अनुपलब्धता एक और महत्वपूर्ण कारक है जो वर्षा-आधारित खरीफ मक्का की कम उत्पादकता में योगदान देता हैं ज्यादातर निजी क्षेत्र रबी मौसम के लिए कम जोखिम-उच्च संभावित सिंचाई पारिस्थितिकी के लिए उपयुक्त SCH के विकास और उत्पादन पर ध्यान केंद्रित कर रहे है। खरीफ मक्का की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपर्युक्त चुनौतियों का पता लगा कर तत्काल विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। श्रमिकों की उपलब्धता मक्का उत्पादन को प्रभावित करने वाला एक और मुद्दा है। इन चुनौतियों के अलावा ऋण उपलब्धता, खराब भंडारण, कम क्रय क्षमता, खराब परिवहन, तकनीकी शक्ति की कमी, मक्का उत्पादकों द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख बाधाएं हैं। इन सभी समस्याओं का समाधान सभी हितधारको के लिए बनाई गयी नीतियों के एकीकृत और समेकित हस्तक्षेप से हो सकता है।

बिहार में विशेष प्रकार के मक्का की संभावनाएं एवं अवरोध

संतोष कुमार[1*], नितीश रंजन प्रकाश[2], प्रीति सिंह[3], सुमित कुमार अग्रवाल[1], शांति देवी बम्बोरिया[1]
[1]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना
[2]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]भाकृअनुप-केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला
*संवादी लेखक का ई-मेलः saan503@gmail.com

परिचय

बिहार राज्य 24°20'10'' से 27°31'15'' उत्तरी अक्षांश और 83°19'50'' से 88°17'40'' पूर्वी रेखांश के बीच स्थित है। इसका भौगोलिक क्षेत्र 9.416 मिलियन हेक्टेयर है जहां 103.8 मिलियन आबादी (भारत की कुल आबादी का 8.6%) निवास करती है। क्षेत्रवार, बिहार का भारत में 12 वां स्थान है। बिहार की मुख्य अर्थव्यवस्था कृषि है, जिसमें करीब राज्य के 77% लोग कार्यरत है और राज्य के घरेलू उत्पाद में कृषि का 35% योगदान है। राज्य के 88% लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ आजीविका में सुधार तथा गरीबी को कम करने के लिए उन्नत कृषि उत्पादन तकनीक, वैकल्पिक खेती और संबंधित ग्रामीण गैर-कृषि गतिविधि में सुधार करना महत्वपूर्ण है। बिहार में उगाए जाने वाली प्रमुख फसलें चावल, गेहूं, मक्का, चना, गन्ना, आलू और अन्य सब्जियां हैं। बिहार राज्य भारत के कृषि जलवायु क्षेत्र IV (मध्य-गंगा मैदानी क्षेत्र) के अंतर्गत आता है।

बिहार को देश में दूसरी हरित क्रांति का केंद्र माना जाता है। बिहार ने 2016-17 में कुल अनाज उत्पादन (18.56 मिलियन टन) और मक्का उत्पादन (3.8 मिलियन टन) के लिए रिकॉर्ड स्थापित किया है। बिहार में मक्का तीसरी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। मक्का, ''अनाज की रानी'' के रूप में भी मशहूर है। वर्तमान में, बिहार भारत में मक्का का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। मक्का में मनुष्यों एवं पशुओं, दोनों के पोषण के स्तर में सुधार तथा उद्योगों, पशुधन अर्थव्यवस्था तथा समग्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ावा देने की अच्छी क्षमता है। बिहार भारत में पारंपरिक मक्का उगाने वाले राज्यों में से एक है। हालांकि, लगभग सभी जिलों में और बिहार के सभी प्रकार के कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में तथा वर्ष भर मक्का पैदा की जाती है। हालांकि, राज्य के कुल उत्पादन का तीन चौथाई से ज्यादा उत्पादन मुख्यतः रबी मौसम में 13 जिले (जो मुख्य रूप से कृषि-जलवायु क्षेत्र I और II में पड़ते है) से होती है। इसके अलावा रबी मौसम के दौरान केवल सात जिलों, बेगूसराय, खगरिया, पूर्वी चंपारण, भागलपुर, मधेपुरा, सहरसा और समस्तीपुर में राज्य के कुल मक्का क्षेत्र का लगभग आधा से ज्यादा क्षेत्र है और छह जिले मधेपुरा, खगरिया, सहरसा, भागलपुर, पूर्वी चंपारण एवं कटिहार राज्य के कुल मक्का उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक का उत्पादन करता है। ये जिले गंगा के उत्तर में स्थित है जो बरसात के मौसम के दौरान बाढ़ प्रभावित रहते हैं।

बिहार में मुख्य रूप से चावल-गेहूं की फसल प्रणाली है जिसके बदलते परिदृश्य, विपणन और व्यवसायीकरण के संदर्भ में विविधतापूर्ण फसलों और भूमि उपयोग प्रणाली की आवश्यकता है ताकि अधिक एकीकरण, व्यापक विविधता, जोखिम न्यूनीकरण और टिकाऊ कृषि विकसित हो सके। विशेष मक्का फसल बिहार में कृषि-लाभ के लिए अनुकूल विकल्प है क्योंकि इसके कई उपयोग हैं, इसे खाद्य, चारा और उद्योगों में कच्चे माल के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है, जैसे कि मक्का स्टार्च, मक्के का तेल, शिशु मक्का, ईंधन, पॉपकॉर्न, मादक पेय पदार्थ, खाद्य मिठाइयां इत्यादि। मक्का आधारित उद्योग जैसे कि स्टार्च, मानव भोजन (मक्का फ्लेक्स, पॉपकॉर्न, रोटी और कन्फेक्शनरी), पशु और कुक्कुट फीड आदि का मूल्य संवर्धित उत्पादन बेहतर लाभ के लिए लोकप्रिय किया जा सकता है। मक्का आधारित कुक्कुट फीड उद्योगों को बढ़ावा देने से मुर्गी-पालन एवं सूअर-पालन को भी बढ़ावा मिलेगा, जिससे किसानों को समेकित कृषि प्रणाली को अपनाने में सहूलियत होगी। मक्का आधारित उद्योगों से रोजगार की भी अपार संभावनाएं हैं जो कि बिहार के मजदूरों के पलायन को कम कर सकता है। विशेष प्रकार के मक्के को निर्यात करके विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है।

विभिन्न विशेष प्रकार के मक्के

1. शिशु मक्काः

शिशु मक्का एक अपरिपक्व अयुग्मित मक्के का भुट्टा है, जिसे सिल्क के उद्भव के 1-3 दिनों के भीतर तोड़ लिया जाता है। भुट्टे की तुड़ाई के समय सिल्क की लम्बाई 1-3 सेमी होनी चाहिए। भुट्टे का छिलका हटाने के बाद शिशु मक्का का वांछनीय आकार 6 से 11 सेमी की लंबाई और 1.0 से 1.5 सेमी का व्यास होना चाहिए। शिशु मक्के का उपयोग विभिन्न व्यंजनों जैसे कि सलाद, चटनी, पकोड़ा, सब्जियां, अचार, कैंडी, मुरब्बा, खेर, हलवा, रायता आदि के रूप में किया जा

सकता है। उपभोक्ताओं / निर्यातकों द्वारा आम तौर पर सबसे पसंदीदा हल्के पीले क्रीमी रंग का भुट्टा होता है। शिशु मक्का की पौष्टिक गुणवत्ता कुछ मौसमी सब्जियों के बराबर या उससे भी बेहतर है। प्रोटीन, विटामिन और लौह के अलावा, यह फास्फोरस के सबसे अच्छे स्रोतों में से एक है। यह रेशेदार प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत है और पचाने में आसान है। यह कीटनाशक के अवशिष्ट प्रभाव से लगभग मुक्त है। इसकी खेती पूरे साल भर की जा सकती है, इसलिए एक वर्ष में शिशु मक्का की तीन से चार फसलों को लिया जा सकता है। शिशु मक्का में तीन से चार भुट्टे तोड़े जा सकते है जिसके छिलके एवं पौधे को हरे चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है। अवशिष्ट को साईलेज के रुप में तैयार करके बेच कर अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं। सामान्य रूप से, शिशु मक्का की खेती प्रथाएं अनाज की फसल के समान होती हैं। शिशु मक्का बहुत कम दिनों की फसल है जिसमे सामान्य मक्के की तुलना में खाद-पानी की कम जरुरत होती है, इसलिए बिहार में शिशु मक्का की खेती की लागत सबसे कम है। बिहार शिशु मक्का के प्रमुख उत्पादक राज्यों में से एक बन सकता है। आंतरिक खपत और निर्यात दोनों के लिए इसकी क्षमता बहुत अधिक है। बिहार के किसान ताजे शिशु मक्के की आपूर्ति सीधे नजदीक के शहरों में कर सकते हैं तथा प्राइवेट कंपनियों से संपर्क कर इसे प्रसंस्कृत करके इसका निर्यात भी कर सकते हैं। बिहार की जनसंख्या वृद्धि दर ज्यादा होने तथा तीव्र विकास दर होने से लोगों में प्रसंस्कृत खाद्य सामग्रियों का प्रचलन बढ़ा है, अतः मक्का आधारित उद्योगों में असीम संभावनाएँ व्यक्त की गयी हैं। बिहार के पुर्णिया का गुलाबबाग मंडी एशिया का सबसे बड़ा अनाज मंडी होने का गौरव हासिल कर चुका है। भारत के अलावा नेपाल, बंग्लादेश आस्ट्रेलिया कनाडा और यूरोप के व्यापारी इस मंडी में आते हैं जो यहां से मक्का खरीद कर ले जाते हैं। सामान्य मक्कों की तरह विशेष प्रकार के मक्का का किसान के द्वारा उत्पादन करने के पश्चात उसकी बिक्री इस मंडी के माध्यम से आसानी से की जा सकती है। अतः विशेष मक्का की खेती की बिहार में अपार संभावनाएं हैं जिसके माध्यम से बिहार के किसानों की आमदनी में बढ़ोतरी की जा सकती है।

2. मीठी मक्का:

मीठी मक्का संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप और दुनिया के अन्य विकसित देशों में सबसे लोकप्रिय सब्जियों में से एक है। यह ऊर्जा, विटामिन-सी और विटामिन-ए का एक बहुत ही समृद्ध स्रोत है। इसे कच्चे या उबले हुए रूप में खाया जाता है। इसका उपयोग सूप, सलाद और अन्य व्यंजनों की तैयारी में भी किया जाता है। इसलिए देश के शहरी इलाकों में यह बहुत लोकप्रिय हो रहा है, इसलिए इसकी खेती शहरों के पास के किसानों के लिए फायदेमंद है। हरे कॉब्स के अलावा किसानों को उनके मवेशियों के लिए हरा चारा भी उपलब्ध हो जाता है। आम तौर पर मीठी मक्का कम दिनों में परिपक्व हो जाती है। बिहार में खरीफ सीजन के दौरान 70-75 दिनों में इसे काटा जाता है। खरीफ के दौरान परागण के 18-20 दिनों के बाद ग्रीन कॉब्स काटा जाता है। फसल काटने के दौरान अनाज में नमी आमतौर पर 70% होती है और चीनी की मात्रा 11 से 20% से होती है। मीठी मक्का के लिए मुख्यतः हल्के पीले रंग के दाने को प्राथमिकता दी जाती है। शर्करा से स्टार्च के रूपांतरण से बचने के लिए ग्रीन कॉब्स को रेफ्रिजेरेटेड ट्रक में ठंडे भंडारण में तुरंत ले जाया जाना चाहिए। अगर तुड़ाई के बाद उच्च तापमान में रखा जाता है तो यह स्वाद खो देता है। इन भुट्टों को दाने सहित या दाने छुड़ाकर बाजार में बेचा जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी ज्यादा मांग होने के कारण इसे मूल्य संवर्धित करके इसका निर्यात भी किया जा सकता है। बिहार के किसान मीठी मक्का की खेती के द्वारा भी अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। वैश्वीकरण के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच का अंतर सिमटा जा रहा है, जिस कारण शहरों में प्रयोग होने वाली चीजें भी ग्रामीण इलाकों में सुगमता से उपलब्ध हो पा रही हैं। बदलते परिदृश्य में बिहार में समृद्ध होते मूलभूत सुविधाएँ और सरकारी सहयोग, जिससे ग्रामीण इलाकों का कायाकल्प हो रहा है, प्रसंस्कृत मक्के तथा विशेष मक्के के लिए एक बेहतर बाजार विकल्प हैं। मीठी मक्का की लोकप्रिय किस्में माधुरी, प्रिया, अल्मोड़ा स्वीट कॉर्न, और विन स्वीट कॉर्न है।

3. पॉपकॉर्न मक्का:

पॉपकॉर्न दुनिया के कई हिस्सों में विशेष रूप से शहरों में आम स्नैक के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसे हल्के और कुरकुरे होने के कारण पसंद किया जाता है। पॉपकॉर्न आटा का उपयोग कई पारंपरिक व्यंजन तैयार करने के लिए भी किया जा सकता है। इसका उपयोग ताजे रूप में ही किया जाता है, क्योंकि इसमें हवा से नमी अवशोषण के कारण यह खराब हो जाता है। यह हार्ड एंडोस्पर्म फ्लिंट मक्का है जिसके दाने आकार में बहुत छोटे, अंडाकार या गोल होते हैं। जब यह लगभग 170^{0} सेल्सियस गर्म हो जाता है, तो फूलकर बाहर निकलता है। पॉपकॉर्न मक्का की गुणवत्ता पॉपिंग वॉल्यूम और गैर-पॉपिंग मक्का की न्यूनतम संख्या पर निर्भर करती है। पॉपकॉर्न की उपज सामान्य मक्का से कम होती है लेकिन इसका बाजार मूल्य सामान्य मक्का से ज्यादा होता है। पॉपकॉर्न का दाना छोटा होने के कारण इसका बीज दर सामान्य मक्का से कम होता है। बिहार के किसान इसकी भी एक वर्ष में दो फसल ले सकते हैं और अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं। बिहार मे शहरीकरण के दौर में

शॉपिंग माल और सिनेमाघरों की तादाद विगत पंद्रह वर्षों मे तेजी से बढ़ी है, जिसके कारण पॉपकॉर्न का बाजार भी बढ़ा है, ईव्निंग स्नॅक्स के रूप में पॉपकॉर्न का इस्तेमाल ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भी बढ़ा है, प्रस्तुत सन्दर्भ में पॉपकॉर्न के लिए भी बिहार में अद्‌भुत संभावनाएँ हैं। पॉपकॉर्न की लोकप्रिय किस्में अम्बर, वी एल पॉप, पर्ल पॉप, जवाहर पॉप तथा कॉर्न II है।

4. गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का:

जैसा कि 65% से अधिक मक्का सीधे भोजन और मुर्गियों के दाने के लिए उपयोग किया जाता है, अतः मक्का की गुणवत्ता देश के खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस संबंध में, ओपेक -2 (ओ 2) और फ्लोरी-2 (एफ 2) उत्परिवर्ती की खोज ने मक्का की प्रोटीन गुणवत्ता में सुधार के लिए जबरदस्त संभावनाएं सृजित की, जिसके बाद "गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम) का विकास हुआ। क्यूपीएम जो सामान्य मक्का पर पौष्टिक रूप से बेहतर है, न केवल खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए बल्कि कुक्कुट, सुअर और पशु क्षेत्रों के लिए गुणवत्ता युक्त चारे के लिए भी अपने महत्व को इंगित करने के लिए नई गतिशीलता प्रदान करता है। गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का में लाइसिन और ट्रीप्टोफेन एमिनो अम्ल की उच्च मात्रा और लिउसीन और आइसोल्यूसीन की कम मात्रा वाले एमिनो अम्ल की संतुलित मात्रा होने की विशिष्ट विशेषताएं होती हैं। गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का में इन सभी आवश्यक एमिनो अम्ल का संतुलित अनुपात, प्रोटीन के जैविक मूल्य को बढ़ाता है। क्यूपीएम में प्रोटीन का जैविक मूल्य सामान्य मक्का प्रोटीन की तुलना में दोगुना है, जो दूध प्रोटीन के बहुत करीब है क्योंकि दूध और क्यूपीएम प्रोटीन का जैविक मूल्य क्रमशः 90 और 80% है, जबकि यह सामान्य मक्का में 50% से कम है। मक्के में विभिन्न रंगों के कई क्यूपीएम संकर विकसित किए गए हैं और इसकी खेती देश भर में विभिन्न कृषि-जलवायु स्थितियों में संभव हैं। क्यूपीएम की उत्पादन तकनीक क्यूपीएम की शुद्धता को बनाए रखने के लिए अलगाव को छोड़कर सामान्य अनाज मक्का के समान है। इसे सामान्य मक्का के साथ नहीं उगाया जाना चाहिए। इसके उत्पादन के माध्यम से किसान अपने पशुओं और पोल्ट्री के लिए प्रोटीन समृद्ध फीड उपलब्ध करा सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप पशुओं के दूध और मुर्गे के शरीर के द्रव्यमान के उत्पादकता में वृद्धि होगी और साथ ही साथ सामान्य मक्का की तुलना में उनके क्यूपीएम मक्का को प्रोसेसिंग या मूल्य संवर्धित कर अच्छी आय प्राप्त कर सकते है। जैसा कि मक्का बिहार में दोनों मौसम रबी तथा खरीफ में उत्पादित किया जा सकता है। किसान क्यूपीएम मक्के की खेती करके अच्छा लाभ कमा सकते है। गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम) के उत्पादन क्षेत्र विस्तार के परिणामस्वरूप किसानो की लाभप्रदता बढ़ेगी जिसकी खेती को बिहार राज्य में लोकप्रिय करके किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है।

बिहार मे विशेष मक्का के लिए अवरोध

हालांकि, बिहार में कृषि कई बाधाओं और समस्याओं से ग्रस्त है। राज्य के कुछ हिस्सों में नियमित मानसूनी बाढ़ के झटके और आवधिक सूखा के कारण अस्थिर कृषि उत्पादन है। इसके साथ साथ जर्जर ग्रामीण सड़क और खराब बुनियादी ढांचे, कृषि उत्पाद की बाजार तक पहुंच को सीमित करते हैं। बाढ़, जल भराव, खराब जल निकासी और सतह सिंचाई प्रणाली का कम विस्तार तथा अपर्याप्त सार्वजनिक निवेश बिहार में कृषि के विकास के लिए मुख्य अवरोध है। सतही सिंचाई की अपर्याप्त सुविधा के कारण किसान को मुख्य रूप से बिजली के बजाय डीजल पर भरोसा करना होता है, जो उत्पादन लागत बढ़ाते हैं और प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करते हैं। अपर्याप्त मंडियों तथा बिचौलियों के कारण मूल्य जोखिम सहित अन्य जोखिम जैसे कि उपज (उदाहरण के लिए, सूखा या बाढ़ का जोखिम), इनपुट आपूर्ति जोखिम इत्यादि एक महत्वपूर्ण समस्या है जिसके कारण किसान खेती से दूर हो रहे हैं। बिहार में विशेष मक्का की खेती को लोकप्रिय बनाने में निम्नलिखित प्रमुख अवरोध हैं -

1. भंडारण - प्रसंस्कृत एवं विशेष मक्का का भंडारण एवं शीघ्रतापूर्वक बाजार तक इसकी पहुँच बिहार की मौजूदा आधारभूत संरचना से कठिनाई भरी है। अपितु विगत पंद्रह वर्षों में बिहार मे भंडारण की स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है परंतु ये पर्याप्त नही है। शीत-भंडारण की सुविधा बिहार में नगण्य है जिसके कारण विशेष मक्का का विदेशी बाजारों तक पहुँच संभव नही है।

2. आधारभूत संरचना - अपितु बिहार में सड़कों की स्थिति मे ख़ासा सुधार हुआ है परंतु दियारा क्षेत्र में सड़को की स्थिति अभी भी दयनीय है। दियारा क्षेत्र मे ही बिहार के सर्वाधिक मक्का का उत्पादन होता है। परंपरागत खेती के इलाकों में साल भर सुगमता से आवागमन की सुविधा किसानों, व्यापारियों तथा उपभोक्ताओं के लिए भी जरूरी है।

3. कृषि संबंधी समस्याएँ - प्राकृतिक आपदाओं से ग्रसित बिहार की कृषि कभी भी समरूपी उत्पादन नहीं दे सकी है। विभिन्न विपदाओं जैसे - बाढ़, सूखा इत्यादि के समय लघु किसानों को नकद फसलों के लिए भी आर्थिक एवं सामाजिक मदद की जरूरत है अन्यथा विशेष मक्का की फसलों को बिहार में लोकप्रिय करना संभव नहीं है।

इसके अलावा बिहार में मौजूदा मक्का उत्पादन अवरोध के बारे में शोध एवं अध्ययन की जरूरत है जिसके द्वारा किसानों को एक मूल्यवान मापदंड दिया जा सके एवं विभिन्न प्रसार नीतियों से विशेष मक्का को प्रचलन मे लाया जा सके। किसानों के लिए जो पहले से ही मक्का पैदा कर रहे हैं, उनके लिए उत्पादन बढ़ाने और लाभप्रदता बढ़ाने के तरीकों पर जानकारी प्रदान करने की भी आवश्यकता है। मक्का के उत्पादन में वृद्धि के लिए, सूक्ष्म और व्यापक आर्थिक नीतियों की तथा मक्का उत्पादन में बाधाओं के समझ की आवश्यकता है।

बिहार में विशेष मक्का की संभावनाएँ

बिहार की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था, बदलते सामाजिक परिपेक्ष्य एवं बदलती जीवन शैली विशेष मक्का को प्रचलित करने में सहायक हो

बिहार में मक्का मण्डी का दृश्य

सकते हैं। बिहार में शहरीकरण मात्र 11.3% है जिसे वर्तमान राज्य सरकार बढ़ाने के लिए अनेक कदम उठा रही है। बढ़ते शहरीकरण से विशेष मक्का के बाजार भी बढ़ेंगे और किसानो की आय भी बढ़ेगी। अतः बिहार में विशेष मक्का की निम्नलिखित प्रमुख संभावनाएँ हैं –

1. शहरीकरण – एक बाजार के रूप मे शहरों का योगदान हमेशा सराहनीय रहा है, बढ़ता शहरीकरण बिहार के किसानो के लिए लाभप्रद है।

2. सरकारी समर्थन – बिहार सरकार की और से जैविक खेती को मिशन के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है, किसानों के पास एक स्वर्णिम मौका है जिसके द्वारा किसान सरकारी सब्सिडी एवं सहायता के साथ अधिक से अधिक आय अर्जित कर सकते हैं। जैविक रूप से उत्पादित विशेष मक्का का विदेशी बाजारों मे बहुत माँग है।

मक्का की परिपकव अवस्था

3. विशेष मक्का ग्राम – हरियाणा के अटेरना ग्राम की तर्ज पर बिहार के प्रत्येक शहरों के आस-पास विशेष मक्का ग्राम स्थापित किया जा सकता है। सरकारी सहायता एवं सहकारिता के द्वारा किसान भरपूर लाभ कमा सकते हैं।

4. अनुबंधित कृषि – विभिन्न अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय कंपनियाँ किसानों के साथ अनुबंध के लिए तैयार रहती हैं। बिहार के प्रगतिशील किसान इस मौके का भी लाभ उठा सकते हैं। बिहार सरकार की अनुकूल औद्योगिक नीति के कारण बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मेगा फूड पार्क बिहार में स्थापित कर रही हैं। उदाहरणस्वरूप प्रेस्टिन मेगा फूड पार्क बिहार के खगड़िया जिले के एकानिया ग्राम के किसानों के बीच शिशु-मक्का का उत्पादन करवा रही है जिससे किसान 60 दिनो की फसल से 45,000 रुपये प्रति एकड़ की कमाई कर रहे हैं।

5. सस्ते श्रमिक की उपलब्धता – बिहार के मजदूर पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु इत्यादि राज्यों मे पलायन करते हैं। बिहार में अन्य राज्यों की तुलना में औद्योगिकीकरण कम है। इसी कारण सस्ते श्रमिक बिहार मे उपलब्ध हैं। सरकार की उद्योग नीतियाँ उद्योग को बढ़ावा दे रही हैं। गृह राज्य में रोजगार मिलने से श्रमिक का पलायन भी रुकेगा। बिहार के किसान इसका भी लाभ उठा सकते हैं।

अतः बिहार की समृद्ध भू-संपदा एवं सस्ते मजदूर को देखते हुए किसानो के लिए विशेष मक्के की कृषि काफी लाभकारी साबित हो सकती है।

पंजाब में मक्का की संभावनाएं

अभिजित कुमार दास*, बहादुर सिंह जाट, मुकेश चौधरी,रमेश कुमार, चिक्कप्पा करजगी, धर्मपाल चौधरी, भारत भूषण, यतीश के. आर., विशाल सिंह

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद

*संवादी लेखक का ई-मेलः das.myself@gmail.com

पिछले कुछ वर्षों से देश में मक्का उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है जो संभवतः बढ़ते क्षेत्रफल और उत्पादन तकनीकियों में सुधार, जैसे संकरो को अपनाने और उचित फसल प्रबंधन के कारण संभव हुआ है । मक्का मुख्य रूप से भोजन, खाद्य, चारा के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा औद्योगिक कच्चे माल के रूप में भी इसका बड़ा उपयोग होता है। हालांकि यह मुख्य रूप से देश में फीड (59 प्रतिशत) के रूप में उपयोग किया जाता है। विशेष रूप से खाद्य उद्योग में बढ़ती मांग के कारण इसके उत्पादन में वृद्धि हासिल हुई है। वर्तमान में, लगभग 15 मिलियन मीट्रिक टन मक्का पशु फीड के रूप में प्रयोग किया जाता है और 2025 तक भारत को लगभग 32 मिलियन टन की आवश्यकता होगी। वर्तमान में भारतीय स्टार्च उद्योग तेजी से बढ़ रहा है जिसकी वर्तमान में 4.25 मिलियन टन के मुकाबले 2025 तक 15 मिलियन टन की आवश्यकता होगी। 1980 के दशक के अंत तक भारत मक्का का शुद्ध आयातक था। हालांकि, भारत हाल ही में मक्का अनाज निर्यातक के रूप में उभरा है और 2025 तक भारत को लगभग 10 मिलियन टन मक्का निर्यात करने का अवसर मिलेगा।

जलवायु परिवर्तन के कारण, भारत को अत्यधिक प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, उच्च तापमान, सूखे इत्यादि का सामना करना पड़ रहा है। भारत में लगभग 85 प्रतिशत मक्का की खेती वर्षा आधारित है इसलिए सूखे को बरसात के मौसम में सबसे महत्वपूर्ण बाधा माना जाता है। फसल प्रणाली को गति और विविधता प्रदान करने के लिए वसंत मक्का की खेती भी एक महत्वपूर्ण विकल्प है लेकिन पुष्पन/शुरुआती दाना भरने के अवस्थाओ में गंभीर उष्मागत तनाव की संभावना रहती है। उत्तरी भारत में वसंत मक्का, गेहूं के बाद एक प्रमुख फसल के रूप में उभर कर सामने आ रही है। हालांकि यह बहुत चुनौतीपूर्ण है क्योंकि इसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है और उच्च तापमान से फसल उत्पादकता भी गंभीर रूप से प्रभावित होती है। जलवायु परिवर्तन के साथ, फूल आने के बाद की तना गलन (पीएफएसआर) और बैन्डेड लीफ एवम् शीथ ब्लाइट (बीएलएसबी) जैसी बीमारियां और तना छेदक जैसे कीट-जीवों की समस्या अधिक गंभीर हो रही हैं। इसलिए, उच्च पैदावार वाले और जलवायु लचीले संकरों का विकास जो कि बीमारियों, कीटों और विभिन्न अजैविक तनावों के प्रति प्रतिरोध क्षमता रखते हों, ऐसी किस्मों के अनुकूलन एवम किसानों द्वारा उपयोग में उनकी प्राथमिकता की आवश्यकता है।

पंजाब की मशहूर कहावत ''मक्की दी रोटी और सरसों दा साग'' जो हमें सीधे पंजाब ले आती हैं और राज्य में भोजन के रूप में मक्का के महत्व को दर्शाती हैं। 2014-15 में पंजाब में मक्का उत्पादन 4.6 लाख टन था और फसल के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल 1.3 लाख हेक्टेयर था। पंजाब में मक्का की उत्पादकता 3.6 टन प्रति हेक्टेयर है जो राष्ट्रीय औसत (2.56 टन प्रति हेक्टेयर) से अधिक है। लेकिन फिर भी इसे और बढ़ाने की संभावनाये है क्योंकि आंध्र प्रदेश की उत्पादकता पहले से ही 4.3 टन प्रति हेक्टेयर है।

पारंपरिक रूप से पंजाब में, मक्का खरीफ फसल के रूप में उगायी गयी थी। लेकिन अब वसंत ऋतु के दौरान भी मक्का की बुवाई कुछ नई किस्मों के विकास के साथ शुरू की गई है। पंजाब के होशियारपुर, शहीद भगत सिंह नगर, जलंधर और कपूरथला जिलों में वसंत फसल उगाना अब संभव है। कपूरथला और लुधियाना उच्च मक्का उत्पादकता जिले के अंतर्गत आते है जिनकी उत्पादकता 4 टन प्रति हेक्टेयर से भी अधिक है लेकिन राज्य में कुल मक्का क्षेत्रफल का केवल 3 प्रतिशत क्षेत्रफल है जो मक्का उत्पादन बढ़ाने की संभावना को इंगित करता है। मक्का की पिछले वर्ष की कीमत 1365 रूपये प्रति क्विंटल की तुलना में 2017-18 के लिए, पंजाब में मक्का के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) 1425 रूपये प्रति क्विंटल रखा गया है। यह पंजाब में मक्का के उत्पादन को बढावा देने का एक संकेत है। अच्छे उत्पादन के बावजूद, पंजाब के किसानों को कई बार अपेक्षित लाभ नहीं मिलता हैं। यह मुख्य रूप से स्थापित बाजार की अनुपलब्धता और फसल कटाई उपरांत बीज की खराब गुणवत्ता (उच्च नमी मात्रा) के कारण है। सरकारी एजेंसियों द्वारा खरीद के मानकों को पूरा करने के लिए उचित नमी की मात्रा पर भुट्टे (कोब) की कटाई, उचित नमी पर सुखाने और 14 प्रतिशत से कम नमी पर भंडारण करना आवश्यक है।

शिशु मक्का (बेबी कॉर्न) सीधे स्लाद के रूप में खाया जाता है। इसके इलावा सब्जियों, अचार बनाने, पकौडे, चटनी, सूप, चाइनीज भोजन इत्यादि के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। अंतरदेशीय एवम् विदेशी बाजार में मांग, अधिक निर्यात मूल्य एवम् वर्ष भर खेती होने के कारण किसानों में भी बेबी कॉर्न की खेती के प्रति लोकप्रियता बढ़ी है और पंजाब में बेबी कॉर्न की वर्ष भर में 3-4 फसल लेने के कारण यह राज्य निर्यात क्षेत्र के रूप में उभरा है। पंजाब से 500 टन से भी ज्यादा बेबी कॉर्न नियमित रूप से निर्यात की जा रही है जो अभी भी मांग से कम है। मक्का राज्य की मुख्य चारा फसलों में से भी एक है। पंजाब में डेयरी उद्योग का स्थायित्व भी काफी हद तक अच्छी गुणवत्ता वाले पशु फीड और चारा की उपलब्धता पर निर्भर करती है। राज्य में चारा

उपलब्धता प्रति पशु प्रति दिन 10-12 किलोग्राम है, जो कि प्रति पशु प्रति दिन 20-25 किलोग्राम की इष्टतम आवश्यकता की तुलना में काफी कम है। गर्मियों के मौसम में मक्का चारा पसंदीदा चारा फसल है जो राज्य में चारे की खेती के तहत कुल क्षेत्रफल का लगभग 3 प्रतिशत है । जब चारा फसल पोषक तत्वों के इष्टतम स्तर पर होती हैं तो कम चारा उत्पादन समस्या से निपटने के लिये अधिशेष चारे को साईलेज के रूप में संरक्षित करके हल किया जा सकता है । सार्वजनिक क्षेत्र की संकर किस्मे पहले से ही प्रत्येक विशेष मक्का के लिए उपलब्ध हैं जैसे कि, उच्च उपज वाले मक्का के लिए, पीएमएच -1 और पीएमएच -2, चारे के लिए जेएच -1006, साईलेज के लिए एचक्यूपीएम -4 और बेबी कॉर्न के लिए एचएम -4 इत्यादि ।

भारत में, सिंचित मक्का के अंतर्गत लगभग 2.0 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र है जो कुल मक्का क्षेत्र का सिर्फ 23.8 प्रतिशत है। राष्ट्रीय परिदृश्य के विपरीत पंजाब में सिंचित मक्का का हिस्सा (70.4 प्रतिशत) उच्चतम है, जबकि राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश जैसे अन्य राज्यों में यह 2 प्रतिशत से भी कम है। पंजाब में 14.29 प्रतिशत मक्का क्षेत्रफल बड़े किसान (10.0 हेक्टेयर) के अधीन है और राष्ट्रीय औसत 5.65 प्रतिशत और 46.74 प्रतिशत (क्रमशः छोटे और सीमांत किसान) की तुलना में 25.71 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसान के अधीन है। बड़े खेत की जोत भी बढ़ी हुई उत्पादन और उत्पादकता के अवसर को आगे बढ़ाती है। पंजाब में निरंतर "गेहूं-धान" फसल चक्र के कारण गिरती हुई मिट्टी की उर्वरता और पानी की कमी प्रमुख चिंता का विषय बन गई है, इस प्रकार फसलों के विविधीकरण कार्यक्रम के तहत 2013-14 के बाद से जलाक्रांत धान के क्षेत्र को मक्का में बदलने के लिए जोर दिया जा रहा है। इस प्रकार उत्पादकता और क्षेत्रफल को बढ़ाने में शिशु मक्का (बेबी कॉर्न), चारा मक्का, स्टार्च उद्योग और पानी के गिरते स्तर की चिंता के साथ पंजाब के लिए मक्का को सबसे मूल्यवान फसल में से एक बनाता है ।

पृथ्वी सभी मनुष्यों की ज़रूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं। - महात्मा गाँधी

हिंदी देश की एकता की ऐसी कड़ी है, जिसे मजबूत करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। - श्रीमती इंदिरा गाँधी

छत्तीसगढ़ में मधु मक्का की व्यावसायिक खेती की सम्भावनाये

दिनेश कुमार ठाकुर, अखिलेश लकड़ा, अमित सिन्हा, संतोष सिन्हा*
आर.एम.डी.कृषि एवं अनुसंधान केन्द्र, अजीरमा, अंबिकापुर
डिस्को सगुर्जा -49001 (छत्तीसगढ़)
*संवादी लेखक का ई-मेलः santoksinha@yahoo.co.in

प्रस्तावना

मक्का की खेती भारत के अलावा विश्व के अन्य कई देशो में की जाती है जो कि एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण खाद्यान फसल है, इसे ''अनाजों की रानी'' भी कहा जाता है। मधु मक्का (स्वीटकॉर्न) एक विशेष प्रकार का मक्का हैं जो अन्य मक्का की अपेक्षा अधिक मिठास लिए हुए होता है। मुख्यतः इसका उपयोग हरे भुट्टे के रूप मे जब यह दुधिया अवस्था में होता है, तभी खाने में किया जाता है। इसके दाने में अन्य मक्का की अपेक्षा अधिक मिठास होने के कारण इसे स्वीटकॉर्न या मीठी मक्का कहते है। चुंकि इस प्रकार के मक्के का उपयोग हरे मक्के के रूप में किया जाता है। इसलिए यह फसल कम समय में तैयार हो जाती है। मीठी मक्का में फेरूलिक अम्ल होता हैं, जो एण्टी आक्सीडेंट के रूप में कैंसर, हृदय रोग और अपक्षयी न्यूरो तंत्र जैसी विभिन्न बीमारियों की रोकथाम एवं उपचार हेतु प्रभावी है। हरा भुट्टा तोड़ने के बाद पौधों को काटकर हरे चारा के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। यह मानव आहार के साथ-साथ पशुओं के आहार (कच्चा चारा एवं साइलेज बनाने में) का प्रमुख अवयव है एवं साथ ही साथ औद्योगिक दृष्टिकोण से भी मक्का का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः इससे कम समय में अधिक लाभ कमाया जा सकता है । इसकी राष्ट्रीय बाजार के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी अधिक मांग है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मांग होने के कारण इसमें पोस्ट हार्वेस्ट तकनीक जैसे डिब्बाबंदी आदि क्रियाएँ अपनाकर निर्यात भी किया जा सकता है।

देश में मक्का की खेती प्रमुख रूप से उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, गुजरात, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश आदि राज्यों में की जाती है। छत्तीसगढ़ में मक्का की खेती उत्तरी पहाड़ी अंचल (ऊपरी डाँड भूमि में) तथा बस्तर के पठार में धान के बाद दूसरी प्रमुख खाद्यान्न फसल के रूप में ली जाती है। छत्तीसगढ़ में मक्का की खेती मुख्यतः सरगुजा, जशपुर, कोरिया, बस्तर, कांकेर, दंतेवाडा आदि जिलों में की जाती है। यदि किसान भाई सुझाये गए तकनीकी बिन्दुओं को ध्यान में रखकर इसकी खेती करेंगें तो निश्चित रूप से अधिक उत्पादन प्राप्त होगा साथ ही एक व्यापक उपयोग की फसल होने के कारण बाजार में इसे अच्छी कीमत पर आसानी से बेचा जा सकेगा। अब मक्का फसल की खेती व्यापक रूप से की जाने लगी है व यह एक प्रमुख नगदी फसल के साथ - साथ व्यावसायिक फसल रूप में विकसित हो गई है। किसान भाई नीचे बताये गए तकनीक से मधु मक्का की खेती कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है।

उन्नत सस्यगत क्रियायें

बुवाई का समय

खरीफ मौसम में फसल की बुवाई जून माह के द्वितीय पखवाड़े से लेकर जुलाई माह के प्रथम पखवाड़े तक पूरी कर लेनी चाहिए। वर्षा आधारित द्विफसली खेती के लिए बुवाई जून माह में पूरी कर लेनी चाहिए। रबी मौसम में अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए अक्टूबर माह के अंतिम सप्ताह से नवंबर माह में ही बुवाई पूरी कर लेनी चाहिए। जायद फसल की बुवाई का उपयुक्त समय फरवरी से मार्च माह तक का है।

भूमि का चुनाव

मक्का की अधिकतम पैदावार के लिए उच्चहन (डाँड) भूमि, अच्छी जल निकास वाली भूमि उत्तम होती है। सामान्यतः मक्का की खेती सभी प्रकार की मृदाओं, बलुई मिट्टी से चिकनी मिट्टी तक सफलतापूर्वक की जा सकती है परन्तु बलुई दोमट मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त होती है। हल्की मृदा वर्षाधीन फसल तथा मटियार भारी मृदा सिंचित फसल के लिए अच्छी होती है।

भूमि में लवणता एवं क्षारीयता की स्थिति नहीं होनी चाहिए एवं पी. एच. मान 6.0 से 7.0 के बीच होना चाहिए। यदि किसी स्थान पर पहली बार खेती की जा रही है तो उस मृदा का पी.एच. मान परीक्षण अवश्य करा लें। खेत में वायु संचार के साथ उचित जल निकासी की सुविधा होनी चाहिए। जल भराव से फसल को बहुत नुकसान होता है क्योंकि मक्का की फसल ज्यादा पानी सहन नहीं कर सकती।

भूमि की तैयारी

मक्का की खेती खरीफ, रबी एवं जायद तीनों ही मौसम में की जाती है। अतएव मौसम के अनुसार भूमि की तैयारी अलग-अलग प्रकार से की जाती है। खेत को एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करने के पश्चात् दो तीन बार कल्टीवेटर से आड़ी-खड़ी जुताई करके जमीन को भुरभुरी एवं महीन बना लें और पाटा चलाकर खेत को समतल बना लेना चाहिए जिससे अंकुरण अच्छा होता है। बुवाई के 20 दिन पूर्व 20 से 25 गाड़ी या 10-12 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर अंतिम जुताई के समय जमीन में मिलाए। दीमक के नियंत्रण के लिए अंतिम जुताई के समय 25 किलोग्राम क्लोरपायरीफास चूर्ण प्रति हेक्टेयर डालना चाहिए।

मक्का की उन्नतशील किस्में

मधु (मीठा) मक्का की खेती प्रमुख रूप से हरे भुट्टे के लिए की जाती है। इसकी किस्मे एच. एस. सी.-1, मिस्ठी, मिठास, माधुरी स्वीट कार्न, प्रिया स्वीट कार्न आदि विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के लिए अनुशंसित की गई है जो कि यहाँ भी अच्छा प्रदर्शन कर रही है।

संकर मक्का के लिये हर बार नये बीज का प्रयोग किया जाना चाहिए। संकुल किस्मों के बीज को 2-3 वर्ष तक उपयोग कर सकते है। संकुल किस्मों के बीज का पुनः चयन करने के लिए यह आवश्यक है कि बीज खेत के बीच वाले भाग से अच्छे भराव वाले भुट्टो से एकत्रित किए गए हो। खेत के किनारे वाले पौधों के दानों का उपयोग बीज के रूप में नहीं किया जाना चाहिए।

बीज की मात्र एवं बीजोपचार

मधु मक्का के किस्मों में शर्करा प्रतिशत अधिक होने के कारण इसका दाना सिकुड़ा हुआ एवम् हल्का होता है इसलिए इसकी बीज दर सामान्य मक्का के मुकाबले काफी कम लगती है। सामान्य तौर पर इसकी बीज दर 6-8 किलो ग्राम प्रति हेक्टयेर होती है। बुवाई से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम नामक कवकनाशी द्वारा 2 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। बीज की बुआई 3-4 से.मी. गहराई पर करें। कतार विधि में बुवाई करना हमेशा लाभदायक होता हैं।

पौधा अन्तरण

मौसम के आधार पर अन्तराल रखने से वांछित उत्पादन होता है। खरीफ एवं रबी मौसम की फसल में कतार से कतार की दूरी 60 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 20-25 से.मी. होनी चाहिए। जायद मौसम की फसल में कतार से कतार के बीच की दूरी 45-60 से.मी. एंव पौधे से पौधे की बीच की दूरी 25 से.मी. होनी चाहिए। सामान्यतः खेत में 25 से 30 हजार पौधे प्रति एकड़ होने पर वांछित उत्पादन प्राप्त होता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधनः

मक्के की अधिकतम उपज लेने के लिए 2 वर्ष में कम से कम एक बार लगभग 10-12 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। मिट्टी का परीक्षण करा कर उसमें उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति तथा बोई जाने वाली किस्मे एवं अवधि के अनुसार ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु प्रति हेक्टेयर 100-125 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50-60 किलोग्राम फास्फोरस एवं 30-50 किलोग्राम पोटाश उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

फास्फोरस एवं पोटाश की संपूर्ण मात्रा बुवाई के समय खेत में मिला देना चाहिए। नाईट्रोजन की मात्रा को तीन भागों में बाँटकर प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। नाईट्रोजन की एक तिहाई मात्रा बुवाई के समय, दूसरी तिहाई मात्रा मक्का के पौधों की घुटने तक ऊँचाई होने पर लगभग बुवाई के एक महिने बाद एवं अंतिम मात्रा नरमंजरी (नर फूल) अवस्था में देना चाहिए। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में 20 से 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट का प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग हर दुसरे वर्ष बुवाई के समय आधार डोज (बेसल) के रूप में उपयोग करना चाहिए।

अन्तराकर्षण एवं खरपतवार प्रबंधनः

मक्का के खेत में भूमि की किस्म, जलवायु तथा मौसम के अनुसार विभिन्न प्रकार की खरपतवारें पाई जाती है। खरपतवार फसल के प्रमुख शत्रु है जो उपज में अप्रत्याशित हानि पहुँचाते है। अतः निंराई-गुड़ाई समय पर न की जाये तो उत्पादन अत्याधिक प्रभावित होने के फलस्वरूप ऊपज कम प्राप्त होती है। निंराई-गुड़ाई करने से भूमि पोली व भुरभुरी बनी रहती है, जिससे भूमि में अच्छे वायु संचार से जड़ो को खाद्य पदार्थ व जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। मक्का के खेत में उगे खरपतवारों को नष्ट करने के लिए यांत्रिक तथा रसायनिक दोनों ही विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा बुवाई के 20 से 30 दिन बाद फसल अवस्था पर हैण्ड हो से कतार के बीच में निंराई करना चाहिए या हाथ से उखाड कर खरपतवारों को नियंत्रण करना चाहिये। इसके पश्चात् पौधो पर मिट्टी चढ़ाना चाहिए इससे पौधे गिरते नहीं है। रसायनिक नियंत्रण हेतु दवा की मात्रा एवं डालने की समय सारणी निम्नाकिंत है-

क्र.	खरपतवार नाशक	प्रति एकड़ मात्रा		आवेदन का समय	नियंत्रित होने वाले खरपतवार
		सक्रिय तत्व (ग्राम)	व्यावसायिक उत्पाद (मि.ली./ग्रा.)		
1.	एट्राजिन (मक्का की एकल फसल में)	300-400	600-800	बोनी के 0-2 दिन बाद	ये चौड़ी पत्ती वाले व कुछ संकरी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
2.	पेण्डीमेथलिन 30 ई.सी. (मक्का के साथ किसी भी दलहनी फसल में अर्न्तवर्तीय फसल में)	300-400	1000-1200	बोने के 0-2 दिन बाद	ये संकरी पत्ती वाले जैसे सांवा, मोथा, बंदरपुछिया आदि और चौड़ी पत्ती वाले जैसे-लुनक, छोटी दूधी आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

जल प्रबंधन

जल प्रबंधन कृषि कार्यो हेतु पानी के नियोजित-उपयोग करने की कला है। इसके अन्तर्गत सिंचाई (पौधों के लिए आवश्यक पानी की आपूर्ति) तथा जल निकास (अतिरिक्त पानी को खेत से बाहर निकालना) सम्मिलित किये जाते हैं। फसल की उचित बढ़वार के लिए खेत में एक निश्चित मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। इस मात्रा से कम अथवा अधिक जलापूर्ति होना दोनों ही स्थिति हानिकारक होती है। फसल की प्रमुख सिंचित अवस्था नरमंजरी आने, दाने बनने व दूधिया अवस्था है। भारी मृदाओं में पौधे को पानी की कम आवश्यकता होती है, इसके अन्तर्गत बीज की बुआई के 10-15 दिन के अन्दर पौधे को पानी देना चाहिए। इसके बाद नरमंजरी आने, दाने बनने तथा दूधिया अवस्था में सिंचाई करनी चाहिये । हल्की मृदा में फसल को पानी की अधिक आवश्यकता होती है। अतः बुआई के 10-12 दिनों के अन्दर प्रथम सिंचाई कर देनी चाहिए और अगर बीच में सूखा पड़ जाए तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में पूरी फसल अवधि में 6-8 सिंचाई तथा रबी मे 4-5 सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसल न तो सूखा सहन कर सकती है और न ही ज्यादा पानी (खेत मे रूका हुआ पानी) सहन कर सकती है। अतः खेत में जल निकासी की नालियाँ बुआई के समय ही तैयार कर देनी चाहिए जिससे समय-समय पर अत्याधिक पानी को निकाला जा सकें।

अन्तरवर्तीय फसलें: अन्तरवर्तीय खेती में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए ऐसी फसल का चुनाव करना चाहिए, जिससे कुल उपज में वृद्धि हो। खरीफ मौसम में मक्का के साथ बरबट्टी, उड़द, मूँगफली, मूंग या सोयाबीन की अन्तरवर्तीय फसलें ली जा सकती है। इन फसलों को विभिन्न कतार (पंक्तियों) अनुपात में लगातार इकाई क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार रबी मौसम में मक्का के साथ कुल्थी, अलसी, मसूर अथवा मटर लहसून, प्याज, गाजर की सफलतापूर्वक 1 : 2 के अनुपात में खेती की जा सकती है। ग्रीष्मकालीन मक्का के साथ मूँग या उड़द की अन्तरवर्तीय खेती की जा सकती है।

कीट-व्याधि प्रबंधन

1. तनाबेधक: तनाछेदक कीट की सूँड़ियाँ तने में छेद करके अन्दर ही खाती रहती है जिससे पौधे की मध्य कलियाँ सूखने लगती है और मृत केन्द्र बन जाता हैं। हवा चलने पर कीटग्रस्त पौधे टूट जाते है। रोकथाम हेतु बुवाई के 20 से 25 दिन बाद कार्बोफ्यूरान 3 जी 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

2. प्ररोह मक्खी: यह कीट घरेलू मक्खी से आकार में छोटी होती है। मादा, पत्तीयों की निचली सतह पर अण्डे देती है जिनसे मैगट निकलकर तने में प्रवेश करते है और मुख्य प्ररोह को क्षतिग्रस्त कर मृत केन्द्र का निर्माण करते है। अधिक कीट प्रकोप होने पर 60 से 70 प्रतिशत तक क्षति हो जाती है। नियंत्रण हेतु फोरेट 10 जी. का 12.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या 5 ग्राम दाना प्रति 5 मीटर लाइन से भूमि में बुवाई के समय प्रयोग करें। जिस क्षेत्र में अधिक कीट प्रकोप होता है या देरी से बुवाई की गई हो वहाँ बीज दर अधिक रखें।

3. बालदार सूँड़ियाँ: विशेषकर जंगल से लगे क्षेत्रों में बालदार सूँड़ियों का आक्रमण मक्का की फसल पर होता है। इल्लियाँ प्रारम्भिक अवस्था में झुंड में पत्तियों को खाकर क्षतिग्रस्त करती है। इसके प्रबंधन के लिए प्रारम्भिक अवस्था की इल्लियों को इकट्ठा कर नष्ट करें। खरीफ मौसम में ट्रैप फसल के रूप में तिल लगायें। अधिक कीट प्रकोप की स्थिति में कीटनाशक दवा क्विनालफास 2.5 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

4. भुट्टों के कीटः मधु मक्का के दाने मीठे होने के कारण इस कीट की इल्लियों का प्रकोप पाया गया है। इसका आक्रमण दाने भर रहे भुट्टों पर होता है। ये इल्लियाँ भुट्टों के अन्दर और बाहर जाला बनाकर दानों को खाकर नुकसान पहुँचाती है। कीट के आक्रमण से 12 प्रतिशत तक उपज में कमी आँकी गई है। इल्लियों के अलावा ब्लिस्टर बीटल नामक कीट भी भुट्टों को क्षतिग्रस्त करता है। कीट नियंत्रण हेतु पूर्व में सुझाये गए कोई भी स्पर्शी कीटनाशी का प्रयोग करें।

5. दीमकः दीमक तने के साथ सुरंग बनाकर पौधों को नष्ट कर देती है। ग्रसित पौधों को हाथ से खींचने पर आसानी से बाहर आ जाते है व खोखली जड़ों में मिट्टी नजर आती है। दीमक के प्रकोप वाले क्षेत्रों में क्लोरपायरीफास कीटनाशक दवा से उपचारित बीजों का प्रयोग करना चाहिए। पिछली फसल के अवशेष खेत से हटा देने चाहिए। खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप होने पर क्लोरपायरीफास कीटनाशक दवा को 20 से 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से उपयोग करना चाहिए।

रोग-व्याधि प्रबन्धन

1. तना सड़न रोगः- इस रोग के कारण अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में तने पर जलीय धब्बे दिखाई देते हैं। तना यथाशीध्र सड़ने लगता है एवम् दुर्गन्ध आने लगती है तथा पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है। रोग की रोकथाम हेतु 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन अथवा 60 ग्राम एग्रीमाइसिन प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यक पानी की मात्रा में घोलकर छिड़काव करें।

2. अंगमारी रोगः यह रोग एक ही फफुँद की दो प्रजातियों (हेल्मन्थोस्पोरियम मेडिस एवं टसिकम) के द्वारा होता है। इस रोग के कारण लगभग 15 से 90 प्रतिशत तक उपज से कमी आती है। इस रोग के संक्रमण से सबसे पहले निचली पत्तियों पर लम्बे दीर्घ वृत्ताकार अथवा नाव के आकार के धब्बे बनते है, जो धूसर हरे रंग से लेकर भूरे रंग के होते है। रोग नीचे की पत्तियों से प्रारम्भ होकर ऊपर की पत्तियों पर फैलता है। जिसके कारण सम्पूर्ण पत्तियां सूख जाती है। रोकथाम के लिए पौधे के अवशेषों को एकत्र कर जलावें। प्रभावित फसल से प्राप्त बीज का उपयोग बुवाई हेतु न करें। बुवाई पूर्व बीज का उपचार कार्बेन्डाजिम (2 ग्रा.प्रति कि.ग्राम.) से करें। खड़ी फसल में रोग का प्रकोप होने पर यथाशीध्र कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) या हेक्साकोनाजोल (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव 10-15 दिन के अन्तराल पर करें।

3. शीध्र अंगमारी रोगः यह रोग राइजोक्टोनिया सोलेनाई नामक फफूँद से होता है। भूमि से लगे भाग पर चितकबरे बड़े-बड़े धब्बे बनते है, जो तने पर ऊपर की ओर बढ़ते हुये भुट्टों तक या उससे भी ऊपर पहुँच जाते है। प्रभावित पौधों में या तो दाने नहीं बनते है या फिर उनकी गुणवत्ता प्रभावित हो जाती है। कभी-कभी तो दाने भी सड़ जाते है। रोकथाम के लिए प्रभावित फसल में शीथमार (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही करना चाहिए।

तुड़ाई एवं भण्डारण

बीज के अंकुरण के लगभग 45 दिनों के बाद नर मंजरी निकलना शुरू हो जाती है और उसके 2 से 3 दिनों बाद मादा मंजरी (सिल्क) निकलती हैं। खरीफ के मौसम में परागण के लगभग 18-22 दिनों के बाद मीठी मक्का के भुट्टो की तुडाई शाम के समय करनी चाहिए। हरे भुट्टे के लिये लगाई गई फसल की कटाई दूध भरने वाली अवस्था में करनी चाहिए। इस अवस्था की पहचान भुट्टो के उपरी भाग यानि सिल्क के सूखने से या भुट्टे को नाखून से दबा कर की जा सकती है। भुट्टों की अच्छी तरह से पैकिंग करके ठण्डे स्थान (कोल्ड स्टोरेज, फ्रीज इत्यादि) पर भण्डारित करना चाहिए।

कटाई उपरान्त प्रबंधन

भुट्टों को तुड़ाई के ठीक बाद संसाधन ईकाई या मण्डी में पहुंचा देना चाहिए। भुट्टों को ढेर लगाकर नही रखना चाहिए बल्कि इनको लकड़ी के डिब्बे, कार्टन आदि में रखना चाहिए। कमरे के तापमान पर 24 घंटे के अन्दर मधुमक्का के भुट्टे का 50 % या उससे अधिक भाग शर्करा के रूप में बदल जाता है। अतः इसे हाइड्रोकूलिंग एवं पैंकेजिंग करके शीतगृह में रखा जाता है। भुट्टों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए बर्फ से ठण्डा करना चाहिए।

सरगुजा जिले में मधु मक्का (स्वीटकार्न) की खेती की भरपूर संभावनाएं है। स्वीटकार्न सरगुजा जिले में ही नही बल्कि छत्तीसगढ़ राज्य के अन्य जिलो रायपुर, दुर्ग, जगदलपुर, कोरबा, कांकेर, धमतरी, महासमुंद, कोरिया, जशपुर, राजनांदगांव में भी लोगो के बीच अधिक पसंद किया जा रहा है एवं कुछ जिलों में इसकी खेती व्यापक एवं व्यावसायिक स्तर पर की जाने लगी है।

सरगुजा जिले में स्थित राजमोहिनी देवी कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, अम्बिकापुर में अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के अन्तर्गत अनुवांशिकी व पादप प्रजनन विभाग एवं सस्य विज्ञान विभाग के द्वारा विगत वर्षों से मक्का में अनुसंधान कार्य किए जा रहें है एवम् स्वीटकार्न पर भी अनुसंधान कार्य किया गया है।

विगत 2-3 वर्षो के अनुवाशिंकी एवं पादप प्रजनन विभाग के अनुसंधान प्रयोगो के आधार पर निम्न किस्मे इस अंचल के लिए उपयुक्त पाई गई है-

किस्म	प्रदर्शन (हरा भुट्टा किलोग्राम प्रति हेक्टयेर)			
	खरीफ 2017	खरीफ 2016	खरीफ 2015	औसत
बी. एस. सी. एच. 6	11563	96563	13948	11721
ए.एस.के.एच. 4	7743	11944	11826	10504
माधुरी	6076	6007	8306	6796
मधुला	10903	12014	-	11458
मिठास	14340	12396	-	13368
मिस्ठी	13681	14792	-	14258

ठीक इसी तरह विगत 02 वर्षो के सस्य विज्ञान विभाग के अनुसंधान प्रयोगो के आधार पर किस्म माधुरी को जब 50 x 20 से. मी. पौध अन्तराल पर लगाया गया एवं 75 प्रतिशत अनुसंशित उर्वरक मात्रा, 5 टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेतो में डाला गया तो इस किस्म की उत्पादकता अन्य किस्मों की अपेक्षाकृत अधिक दर्ज की गयी एवं साथ ही साथ हरे भुट्टे की तुड़ाई के एक हफ्ते पहले उतेरा फसल के रूप में कुल्थी की मधु मक्का फसल की पंक्ति के दोनों ओर बुवाई की गयी, जिससे मधु मक्का के साथ-साथ कुल्थी की उपज भी सराहनीय रही। कुल्थी एक दलहनीय फसल है इसलिये यह भूमि की उर्वरता को बनाये रखने के साथ ही किसानो की आय बढ़ाने में भी सहायक है। छत्तीसगढ़ के आदिवासी अंचल के सरगुजा जिले एवं बस्तर जिले में कुल्थी को दाल के रूप में खाने के लिए उपयोग किया जाता है जो प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। अतः अच्छी उत्पादन तकनीक अपनाकर मधु मक्का की 16 टन प्रति हेक्टेयर तक उपज ली जा सकती है जिससे अनुमानित 1-1.25 लाख तक शुद्ध मुनाफा कमाया जा सकता है।

इस संसार में अमृत के समान सुखकारी दो ही चीजें हैं,
एक प्रिय वचन बोलना और दूसरा सज्जन लोगों की संगति। - चाणक्य

मक्का: खाद्य एवम् पोषण सुरक्षा

भारत भूषण*, मनेश चंद्र डागला, अभिजीत कुमार दास, हरमनजोत कौर एवं धर्मपाल चौधरी
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, पंकृवि परिसर, लुधियाना
*संवादी लेखक का ई-मेल: bharat.bhushan@icar.gov.in

मक्का विश्व में चावल और गेहू के बाद तीसरी ऐसी फसल है जो एक बहुत बड़ी जनसँख्या का भरण पोषण करती है (चित्र 1)। विश्व का कुल मक्का उत्पादन 2018 के आंकड़े के अनुसार 1060 मिलियन टन है। इसकी विस्तृत वातावरण में अनुकूलता के कारण दुनिया भर में कुल 188 मिलियन हेक्टेयर में मक्का की खेती की जा रही है। मक्का का उत्पादन करने वाले मुख्य देश संयुक्त राज्य, चीन और ब्राजील है जो कुल उत्पादन का 31, 24 और 8 प्रतिशत भाग प्रदान करते हैं। मक्का की उत्पादन क्षमता पिछले दशक में 717 मिलियन मीट्रिक टन से 1060 मिलियन मीट्रिक टन हो गयी है जिसका श्रेय cimmyt और विश्व के अन्य मक्का आधारित अनुसन्धान केन्द्रों को जाता है। भारत देश के मौसम में विविध पारिस्थितिकी के कारण इसके प्रमुख उत्पादक राज्यों में मक्का की उत्पादकता में बहुत अंतर है। रबी के मौसम में आन्ध्र-प्रदेश और महाराष्ट्र आगे रहते हैं जबकि खरीफ के मौसम में राजस्थान और तमिलनाडु। वर्तमान में भारत में मक्का की औसत उत्पादन क्षमता 2.5 टन प्रति हेक्टेयर है जिसे अगर दुगना कर दिया जाये तो अगले 100 वर्षो तक खाद्य सुरक्षा की समस्या हल हो सकती है। हाल में ही cimmyt और भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् द्वारा आयोजित आयोजित एशियाई मक्का सम्मलेन लुधियाना में संपन्न हुआ, इस में भी इसी विषय पर ज़ोर दिया गया।

मक्का का सबसे ज्यादा उपयोग पाले गए मवेशियों और मुर्गों के खाने में होता है। भारत में मक्का या तो भुने हुए भुट्टे, उबले हुए स्वीट कॉर्न या बेबी कॉर्न की सब्जियां बनाने में होता है। विदेशों में मक्का हर प्रकार के खाने में प्रयोग होता है। मक्का का एक भुट्टा 123 कैलोरीज के अतिरिक्त 5 ग्राम प्रोटीन, 2 ग्राम वसा, 4 ग्राम फाइबर और 27 ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स देता है। मक्का में विटामिन बी 1 की मात्रा 100 माइक्रोग्राम और बी 9 की मात्रा 19.5 मिलीग्राम होती है। खनिज पदार्थो में मैग्नीशियम 18.3 मिलीग्राम और फॉस्फोरस 47.2 मिलीग्राम मुख्यतः होते हैं। आइये हम देखते हैं कि मक्का में पाए जाने वाले पदार्थ पोषण की दृष्टि से हमारे लिए कितना महत्व रखते हैं।

स्टार्च

मक्का में पाई जाने वाली स्टार्च में अमाएलोस और अमइलोपेक्टिन का अनुपात 30:70 की होती है। यह अनुपात प्रजनन के विभिन्न आयामों एवं माध्यम से बदल सकती है। एक तरफ वैक्सी म्युटेंट जहां अमइलोपेक्टिन 100 प्रतिशत तक बढाया गया है, दूसरी तरफ अमाएलोस एक्सटेंडर (ae) में अमाएलोस को 50-80 प्रतिशत तक बढ़ाया गया है। जीन *wx* से स्टार्च synthase (GBSS प्रकार) उत्प्रेरक बनता है। इस जीन में म्युटेशन होने से अमइलोपेक्टिन, शाखा वाला

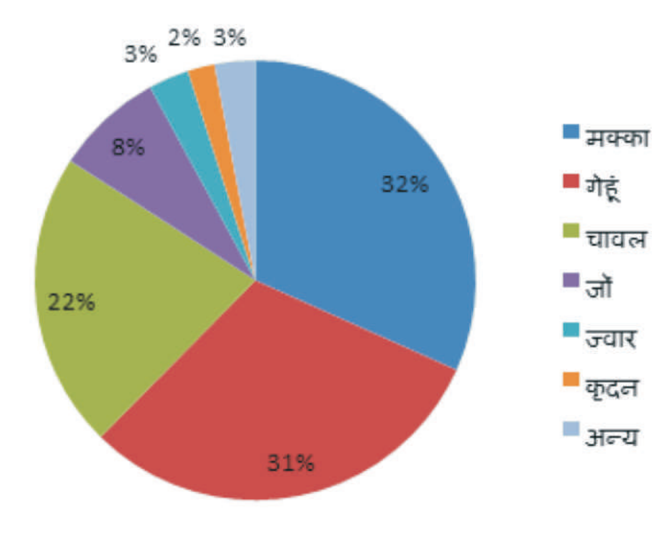

चित्र 1: फसलों का उत्पादन प्रतिशत

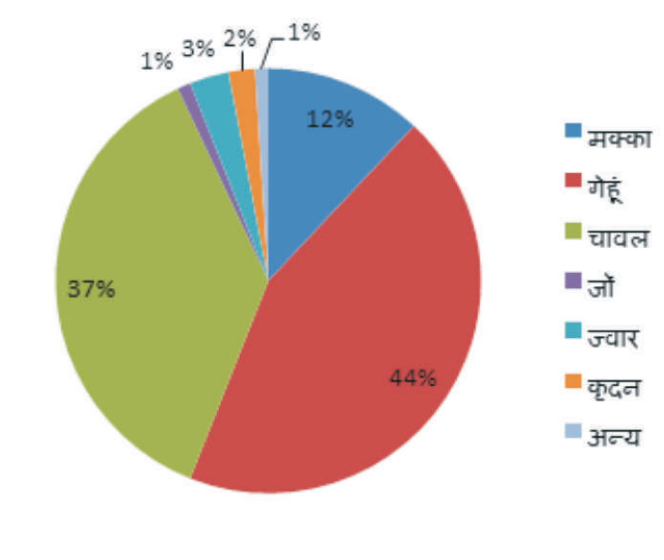

चित्र 2: फसलों का उपभोग प्रतिशत

स्टार्च ही बनता है। वैक्सी म्युटेंट में अमइलोपेक्टिन की मात्रा ज्यादा होने से यह जल्दी से टूट जाती है और शरीर में शुगर की मात्रा बढ़ जाती है। इससे जी.आई. (glycemic index) ज्यादा प्रदर्शित होता है। जीन ae से ब्रांचिंग उत्प्रेरक बनता है। इसे कम करके अमाएलोज को बढ़ा और अमइलोपेक्टिन को घटा सकते है। जैसे जैसे अमाएलोस की मात्रा बढ़ेगी, resistant स्टार्च का रूप सामने आएगा जो जल्दी से पचती नही है। यही प्रतिरोधी स्टार्च (resistant starch) अपचीय फाइबर का ही एक प्रकार है। एक शोध से यह सामने आया है कि 39% अमाएलोस से 0.8% प्रतिरोधी स्टार्च और 83% अमाएलोस से 39% प्रतिरोधी स्टार्च उत्पन्न हुई।

सुगरी (su) जीन डी-ब्रांचिंग उत्प्रेरक को बनाता है। इसकी म्युटेशन होने से स्टार्च कम और sucrose ज्यादा हो जाती है जिससे मीठी मक्का हो जाती है। हालांकि कुछ विपरीत प्रतिवेदन भी लिखी गयी हैं। सुगरी (su) और shrunken (sh) म्युटेंट में स्टार्च की स्फटिकता (crystallanity) कम होती है जबकि वैक्सी म्युटेंट में स्टार्च की स्फटिकता ज्यादा होती है। ओपेक म्युटेंट 2 जिसमे भ्रूणपोष के प्रोटीन सरंचना बदलने से जेन की मात्रा कम हो जाती है, उसका प्रभाव भी स्टार्च पर पड़ता है। इसमें नर्म स्टार्च की मात्रा बढती है जिस से उसकी पाचनशीलता बढ़ जाती है। एक ग्राम मक्का स्टार्च से 4 कैलोरी मिलती है।

अमाएलोज की मात्रा कम होने से स्टार्च के दाने कम तेजी से बनते हैं। भ्रूणपोष (endosperm) में ये दाने ढीले ढाले रूप में पैक होते हैं। भ्रूणपोष की स्टार्च दानों की पैकिंग के अनुसार होर्नी और फ्लौरी प्रकार उत्पन्न होती हैं। फ्लिंट मक्का में होर्नी भ्रूणपोष और dented मक्का में फ्लौरी भ्रूणपोष का भाग ज्यादा होता है। इसी के अनुसार मक्का के दाने कठोर और नर्म होते हैं। फ्लिंट मक्का को पॉपकॉर्न बनाने में और dented मक्का को आटा के तौर पर प्रयोग होता है।

प्रोटीन

मक्का में पाए जाने वाले प्रोटीन चार प्रकार के है। albumin और globulin जो पानी और नमकीन पानी में घुलनशील है, जर्म में मिलते है। प्रोलामिन और ग्लुटेलिन भ्रूणपोष (endosperm) में मिलते हैं। जर्म में एल्ब्यूमिन की मात्रा 60% तक मिलती है जिसके कारण पोषण की दृष्टि से यह बहुत अच्छा माना जाता है। पुराने तरीकों में जर्म का आकार बढ़ाने की सिफारिश की जाती थी जिससे प्रोटीन की मात्रा और गुणवत्ता में सुधार आ सकता था। मक्का में पाया जाने वाला जेन अल्फा प्रोटीन प्रोलामिन का प्रकार है और इसकी मात्रा 40-60 % तक बदलती रहती है। यह 55 प्रतिशत इसोप्रोपनोल या एथेनॉल में घुलनशील है। इस प्रकार के प्रोटीन अपरिपक्व मक्का में कम होती है। जैसे जैसे मक्का पकती है, उसी प्रकार अल्कोहल में घुलने वाला यह प्रोटीन बढ़ता है। अल्कोहल में घुलनशील होने के कारण मक्की के प्रोटीन से होने वाले शरीर निर्माण में कम प्रगति होती है। जेन 1 की कुल मात्रा 42 प्रतिशत जबकि जेन 2 की कुल मात्रा 10 प्रतिशत होती है। ग्लुटेलिन 2 की मात्रा 7 प्रतिशत और ग्लुटेलिन 3 की मात्रा 18% होती है। ग्लुटेलिन 2 को क्षारीय pH पर (>9) 0.6% बीटा-मेरकप्टो एथेनॉल (β-ME) में और ग्लुटेलिन 3 को उसी pH पर 0.5% सोडियम डोडेसयाल सलफेट (SDS) की मदद से निष्कर्षण किया जाता है। बीटा-मेरकप्टो एथेनॉल और सोडियम डोडेसयाल सलफेट का प्रयोग सल्फर बंध को तोड़ने के लिय किया जाता है ताकि ये अलग हो कर घुल जाए। एक तरफ जहां एल्ब्यूमिन, ग्लोब्युलिन और ग्लुतेलिन में लाएसिन और ट्रीपटोफेन की मात्रा ज्यादा है, वहीं दूसरी तरफ प्रोलामिन में इनकी मात्रा कम है। प्रोलामिन से तुलना करने पर यह देखा गया कि ग्लुतेलिन्स में 18% ज्यादा ट्रीपटोफेन और लाएसिन होता है।

opaque म्युटेंट में जेन की मात्रा कम होती है जिससे प्रोटीन के दुसरे अंश बढे हुए दिखाए देते है और आवश्यक एमिनो एसिड्स की मात्रा भी। opaque म्युटेंट में प्रोटीन की मात्रा तो उतनी ही रहती है पर लाएसिन की मात्रा 2.6 से 4.0% प्रति ग्राम प्रोटीन तक बढ़ जाती है। opaque मक्का में लिउसीन (leucine) की मात्रा 30% कम होती है। द्वि-अप्रभावी opaque और floury म्युटेंट में जेन प्रकार के प्रोटीन कम हो जाते है। वैज्ञानिकों ने अद्भुत कार्य करते हुए opaque 11 की श्रेणी में 7455 और 7749 को विकसित किया है जिसमें tryptophan और lysine बढ़ने के साथ साथ प्रोलामिन भी बना रहता है।

प्रोटीन गुणवत्ता के माप पर भी मक्का अन्य दूसरी फसलो से कहीं आगे है। casein को आधार रखते हुए मक्का की opaque 2 और क्यूपीऍम प्रोटीन गुणवत्ता 82-96% तक चली जाती है। एक ग्राम प्रोटीन से 4 कैलोरी मिलती है। शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि 250 ग्राम साधारण मक्का के मुकाबले में 175 ग्राम opaque 2 मक्का से नाइट्रोजन की आवश्यकता पूरी हो जाती है।

opaque 2 को क्यूपीऍम में बदलने के लिय मल्टीप्ल o2 न्यूनाधिक (modulator) जीन डाले गए ताकि इसका दाना रोगों से सुरक्षित और प्रसंस्करण के लिये अच्छा हो। opaque 2 की तरह फ्लौरी 2 (fl2) म्युटेंट भी शरीर में एमिनो एसिड का संतुलन बनाने में सहायक है। गुनारत्ना और सह वैज्ञानिको के शोध से यह पाया की 12 वर्ष से कम उम्र के कुपोषण पीड़ित बच्चों को क्यूपीऍम मक्का खिलाने से 12% कद और 9% वजन में बढ़ोतरी हो जाती है।

	सामान्य मक्का	क्यूपीएँम मक्का	आवश्यकता 2 से 5 वर्ष की के बच्चों (मिलीग्राम/किलोग्राम/प्रतिदिन)
लाईसिन (%)	1.6-2.6 (2)	2.7-4.5 (4)	35-64
ट्रीपटोफेन (%)	0.2-0.5 (0.4)	0.5-1.1 (0.8)	4.8-9.5
लयूसिन (%)	14.76	9.19	44-54
आइसोल्युसिन (%)	4.13	3.63	22-27

स्त्रोतः क्रीवानेक और सहयोगी 2007; विश्व स्वास्थ्य संगठन की तकनीकी प्रतिवेदन संख्या 935, पृष्ठ 180

क्यूपीएँम मक्का में प्रोलामिन की मात्रा कुल प्रोटीन से आधी होती है यानी की 25-30%। साथ में ग्लुटेलिंस की मात्रा बढ़ जाती है। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि आईसोलयुसीन की मात्रा बढ़ने से ल्युसीन और आईसोलयुसीन का संतुलन हो जाता है जो नियासिन (विटामिन बी3) की प्राप्ति को सरंक्षित करता है। ट्रीपटोफेन से ही विटामिन बी3 बनता है। कुल मिला कर यह पॅलाग्रा से बचाता है। प्रोटीन से मिलने वाली ऊर्जा भी क्यूपीएँम में (9.6%), opaque में (8.3%) और साधारण मक्का में (4.7%) बदलती होती है। opaque 2 और क्यूपीएँम मक्का के खनिज और वसा में ज्यादा अंतर नही मिलता है। अलग अलग देशो में क्यूपीएँम मक्का अलग नाम से जानी जाती है जैसे चीन में tuxpeno102, वियेतनाम में population63, ग्वाटेमाला में nutricta और घाना में obatanpa। RNAi के माध्यम से α-जेन के सबसेट 19 और 22 को खत्म किया है जिस से क्यूपीएँम मक्का बनाए जाने में मदद मिली है (वू और मेस्सिंग, 2012)।

तेल द्रव्य और फैटी एसिड्स

अनाज की श्रेणी में मक्का का भ्रूण सबसे बड़ा होता है जो कि कुल बीज का 11% होता है। अगर भ्रूण का आकार बढ़ा दी तो तेल द्रव्य की मात्रा 40% तक बढ़ जाएगी। भ्रूण का 33% भाग वसा होती है और इस वसा में पाया जाने वाला संतृप्त वसा की मात्रा कम होती है जैसे की palmitic 11% और stearic 2% जबकि असंतृप्त वसा जैसे oleic एसिड की मात्रा 25 और लिनोलिक की मात्रा 62% तक होती है। विभिन्न अन्तप्रजात (inbred lines) और विभिन्न वातावरण में यह मात्रा बदलती रहती है। यह विशेषता chromosome के कई ठिकानों पर निर्धारित होती (QTL) है और पैतृक भाव में प्रकट होती है (heritable)। प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट जैसे विटामिन ई, ubiquinone व असंतृप्त वसीय अम्लो की वजह से मक्का का तेल आक्सीकरण से बचा रहता है। भ्रूण में पाए जाना प्रोटीन भण्डारण के लिए नही होती है अपितु इसमें उत्प्रेरक होते है। अमेरिका और यूरोप में सेहत के मद्धेनजर मक्का तेल को अच्छा मान कर उसका खाने में उपयोग हो रहा है। एक ग्राम तेल से 9 कैलोरी मिलती है। मक्का के तेल से बायोडीजल बना कर वाहनों में उपयोग हो रहा है। इसके अतिरिक्त साबुन, सुगन्धित तेल, रेसिन, वार्निश, लुब्रिकेंट जैसे पदार्थो को बनाने में इसको प्रयोग हो रहा है।

फाइबर

मक्का का सबसे ज्यादा फाइबर वाला भाग दाने का टिप कैप और पेरिकार्प है। इसके बाद जर्म और भ्रूणपोष की कोशिका भित्ति का नाम आता है। मक्का में पाए जाने वाला फाइबर मुख्यता हेमी-सेल्युलोज (75%), सेल्युलोज (25%) और लीगनिन (1%) का बना होता है। भ्रूणपोष में पाया जाने वाला फाइबर दो तिहाई भाग से स्टार्च ही होता है। मक्का के दानों में 2-3% और पुरे भुट्टे में 9-15% फाइबर होता है। सिनेमा में मिलने वाला 112 ग्राम का पॉपकॉर्न के पैकेट से 16 ग्राम फाइबर मिलता है। इस से पुरूषों की 42 और महिलाओ की 64% फाइबर की मांग पूरी हो जाती है। इसी कारण यह अच्छे से पच जाता है। मक्का में पाया जाने वाला फाइबर भी आंत स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।

फेनोलिक एसिड्स और carotene

मक्का के दानो में एंटीऑक्सीडेंट की शक्ति रखने वाले फेनोलिक एसिड प्रचुर मात्रा में मिलते है। इनकी मात्रा 260-1756 मिलीग्राम गैलिक एसिड समकक्ष प्रति 100 ग्राम नमूना है। मक्का में कुल कैरोटीनोएड 66 माइक्रोग्राम और बीटा कैरोटीन की मात्रा 13

माइक्रोग्राम है। रंगीन मक्का में न केवल फेनोलिक एसिड बल्कि कैरोटीनोएड की मात्रा भी बढ़ जाती है। ये दोनों जैव रसायन प्रतिकारक क्षमता को बढ़ाते है। क्यूपीऍम मक्का में कैरोटीनोएड की प्राप्ति अच्छे से हो जाती है जिस से यह हमे सूखी आँख के रोग से बचाता है। साधारण मक्का में प्रो-विटामिन की मात्रा 0.25 से 2.5 माइक्रोग्राम/ग्राम सूखे वजन माप पर मिलती है। वैज्ञानिको इसे 6 गुना बढाना चाहते हैं। उनका यह लक्ष्य प्रो-विटामिन पर हुए शोधो से प्रेरित है। क्यूटीअल तकनीक से जींस को ढूंढा गया जिसमें lycopene-बीटा cyclase टी-lycopne को बीटा carotene में और lycopene-epsilon cyclase टी-lycopne को अल्फा carotene में बदलने की क्षमता थी।

चित्र: रंगों द्वारा दर्शायी गयी मक्का की जैव विविधता

भारत में अलग-अलग रंगों की मक्का मिलती है। सर्वे से यह ज्ञात हुआ की उपभोक्ता को रंगीन मक्का पसंद तो है पर उसे भुट्टे पर दाने एक ही रंग के पसंद है। महान वैज्ञानिक बारबरा ने transposon या जम्पिंग जीन का concept दिया था। अभी उन्ही transposon को खोजा जा रहा है और मनचाहे रंग की मक्का प्राप्त करने की कोशिश जारी है।

आधुनिक जैव तकनीकों से भ्रूणपोष में कैरोटेनोइडस की मात्रा 34 गुना बढ़ा दी गयी जब गामा जेन प्रमोटर की मदद से crt-a/I जीन की अभिव्यक्ति को बढ़ाया गया। अल्फा carotene से मिलने वाले जैन्थोफिल जैसे जीनोजैन्थोफिल और lutein भ्रूणपोष में और बीटा carotene से मिलने वाले जैन्थोफिल जैसे जेयाजेन्थीन और cryptoxanthin जर्म में बहुतायत में मिलते है। बीटा-carotene (60 μg), विटामिन सी (110 μg) और फोलिक एसिड (1.94 μg) को 169, 6 और 2 गुना तक बढ़ा दिया गया जब इनके जीन phytoene synthase, dhar और फोल-इ को बाजरे और गेहूं के प्रमोटर लगा कर इनकी अभिव्यक्ति बढ़ी। बीटा carotene 60 माइक्रोग्राम, lycopene 23 और जेयाजेन्थीन 36 माइक्रोग्राम प्रति ग्राम सूखा दाना हो गया।

मक्का के जैव रसायनों को लेकर की गयी उपरोक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि मक्का ने केवल गरीब जनता के लिए अपितु कमजोर और कुपोषण वर्ग के लिए वरदान है। एक तरफ जहां मक्का आधारित उद्योग बढ़ रहे है, दूसरी ओर मक्का स्वास्थ्य सुधारने में अग्रसर है। मक्का फसल को ज्यादा उगाने से न केवल दूसरी फसलो पर निर्भरता कम होगी अपितु पोषण और जल संसाधन को भी सुरक्षित रखा जा सकेगा। मक्का का स्वाद भी लाजवाब है और छोटे बच्चे इसे बहुत खुश हो कर खाते हैं। खाद्य प्रसंस्करण में मक्का थोडा पीछे रह जाती है क्योकि मक्का के दानो की पैकेजिंग इसे ज्यादा दिनों तक ताजा नही रख पाती। मक्का की उत्पादन क्षमता भी दूसरी फसलों के मुकाबले में कम आंकी जाती है। अगर इसे 25-50% बढ़ा दिया जाए तो खाद्य सुरक्षा समस्या हल हो जाएगी।

देश की समृद्धि का रास्ता गांवों के खेतों एवं खलिहानों से होकर गुजरता है
-चौ. चरण सिंह

✶

बाकी सब कुछ इंतजार कर सकता है, कृषि नहीं कर सकती
- पंडित जवाहर लाल नेहरू

✶

अगर फार्म इकोलॉजी एवं इकोनॉमिक्स गलत हो जाते है, तो कृषि में कुछ भी सही नही होगा
- एम.एस. स्वामीनाथन

✶

हमारे किसान हमारे देश का गौरव है
- नरेंद्र मोदी

मक्का उत्पादन की आधुनिक तकनीकें एवं उपकरण

शांति देवी बम्बोरिया[1*], संतोष कुमार[1], सुमित कुमार अग्रवाल[1], सुमित्रा देवी बम्बोरिया[2] एवं जितेंद्र सिंह बम्बोरिया[3]
[1]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना-141004 (पंजाब)
[2]कृषि विज्ञान केंद्र, मौलासर, नागौर-341506 (राजस्थान)
[3]महाराणा प्रताप कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001 (राजस्थान)
*संवादी लेखक का ई-मेलः sbamboriya93@gmail.com

मक्का सबसे बहुमुखी एवं उभरती खाद्य फसलों में से एक है जिसकी विविध कृषि जलवायु परिस्थितियों में व्यापक अनुकूलता है। चावल और गेहूं के बाद भारत में मक्का तीसरी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। मक्का को उच्च आनुवंशिक उपज के कारण 'खाद्यान्न फसलों की रानी' कहा जाता है। भारत में, अधिकांश राज्यों में मुर्गी एवं पशु आहार, चारा, हरा भुट्टा, मीठी मक्का, शिशु मक्का, पॉपकार्न, चपाती के साथ-साथ विभिन्न औद्योगिक उत्पादों, कार्ड आइल, बायोफयूल के लिए मक्का की खेती की जाती है। इसकी विकास दर खाद्यान्न फसलों में सर्वाधिक है जो इसकी बढ़ती उपयोगिता एवं लाभदायिकता को दर्शाती है। मक्का की फसल उच्च व निम्न तापमान, सूखा व जलमग्नता तथा पक्षियों के प्रकोप के प्रति अधिक सहनशील होती है। इन जैविक और अजैविक कारको से फसल को सुरक्षित रखने हेतु प्रत्यारोपण, ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, जीरो टिलेज, फर्ब तकनीक, पक्षी प्रतिरोधी उपकरण इत्यादि अत्यावश्यक है। मक्का उत्पादन की उन्नत तकनीकों को किसान तक पहुंचाने हेतु एग्री दक्ष जैसी ऑनलाइन तकनीक भी बहुत महत्वपूर्ण है।

मक्का में प्रत्यारोपण

पूर्वी क्षेत्रो के लिए रबी मक्का की बुआई हेतु आदर्श समय मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर होता है। किन्तु बहु फसल प्रणाली में रबी मक्का की फसल की बुआई में देरी हो जाने के कारण उसके अंकुरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। देरी से बोई गयी फसल में बीमारियों का प्रकोप भी अधिक होता है। इसके अलावा देरी से बुआई वाली फसल में दाना भरते समय अधिक तापमान होता है जिससे फसल की अवधि कम होने तथा दाना छोटा होने के कारण उत्पादन कम रह जाता हैं। ऐसी स्थिति में रबी मक्का के लिए प्रत्यारोपण एक अच्छा विकल्प है। एक हैक्टेयर क्षेत्र में बुआई के लिए 700 वर्ग मीटर नर्सरी नवम्बर महीने के दूसरे पखवाड़े में तैयार करे तथा 30-40 दिन बाद पौधों को खेत में प्रत्यारोपित कर दे।

प्रत्यारोपण के फायदे

1. प्रत्यारोपित रबी मक्का की फसल केवल 110-130 दिन में ही पककर तैयार हो जाती है।
2. इससे किसान एक अतिरिक्त फसल ले सकते है।
3. नवम्बर माह में नर्सरी तैयार करने से अंकुरण के समय कम तापमान तथा पकने के समय अधिक तापमान के प्रकोप से फसल को बचाया जा सकता है।

ड्रिप (बूंद-बूंद) सिंचाई प्रणाली

बढ़ती आबादी, जलवायु परिवर्तन एवं भू-जल में गिरावट के कारण सिंचाई के पारम्परिक तरीको के स्थान पर अधिक प्रभावी सिंचाई तकनीकों की आवश्यकता है। पारंपरिक सतह सिंचाई विधियों की तुलना में ड्रिप सिंचाई मक्का उत्पादन में पानी के उपयोग को 35 से 55 प्रतिशत तक कम कर सकती है। अतः सीमित पानी वाले क्षेत्रो में ड्रिप सिंचाई

एक व्यवहार्य विकल्प हो सकती है। बारानी क्षेत्रो में वर्षा जल का संग्रहण करके ड्रिप विधि से जीवन रक्षक सिंचाई (पुष्पन एवं दाना भरने वाली अवस्था में) देनी चाहिए। बसंत मक्का में वाष्पोत्सृजन अधिकतम होता है। अतः वाष्पोत्सृजन को कम करने एवं जल उत्पादकता को बढ़ाने हेतु प्लास्टिक मल्च एवं ड्रिप सिंचाई को अपनाना चाहिए। ड्रिप सिंचाई हेतु

सटीक रोपण की दूरी की आवश्यकता होती है । ड्रिप पाइप को खेत में रखने एवं कटाई उपरांत वापस निकले में काफी श्रम लगती है अतः ड्रिप पाइप को भूमिगत भी रख सकते है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के लाभ

1. पैदावार में 150 प्रतिशत तक वृद्धि
2. सतह सिंचाई की तुलना में 70 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है जिससे अधिक भूमि को सिंचित किया जा सकता है
3. फसल लगातार, स्वस्थ रूप से बढ़ती है और जल्दी परिपक्व होती है
4. शीघ्र परिपक्वता से उच्च और तेजी से निवेश की वापसी प्राप्त होती है
5. उर्वरक उपयोग की क्षमता 30 प्रतिशत बढ़ जाती है
6. उर्वरक, अंतर संवर्धन और श्रम का मूल्य कम हो जाता है
7. लघु सिंचाई प्रणाली के माध्यम से उर्वरक और रसायन उपचार दिया जा सकता है
8. बंजर क्षेत्र, नमकीन, रेतीली एवं पहाड़ी भूमि को भी उपजाऊ खेती के अधीन लाया जा सकता है

मल्चिंग

भारत में लगभग 80 प्रतिशत मक्का वर्षा सिंचित क्षेत्रों में उगाई जाती है जहाँ पर फसल सूखा से प्रभावित होती है जो फसल की वृद्धि और उपज को हानि पहुंचाता हैं। इस हानि से बचने के लिए भूसा मल्च का प्रयोग किया जाना चाहिये। भूसा मल्च जो कि सस्ती और आसानी से उपलब्ध हो जाती है। वाष्पीकरण से पानी के नुकसान को रोकने में सहायक है और मिट्टी के तापमान को फसल के अनुकूल बनाये रखती है। यह तकनीक विषेशतः उत्तरी भारत में उगाई जाने वाली बसंत मक्का को उच्च तापमान से सुरक्षित रखने एवं मृदा नमी सरंक्षण में मददगार साबित हो सकती है।

मल्चिंग के फायदे

1. मृदा अपरदन को कम करना एवं मृदा नमी को सरंक्षित रखना
2. खरपतवार की वृद्धि को नियंत्रित रखना
3. मृदा के स्वास्थ्य को सुधारना
4. मृदा सतह पर लवणों के जमाव को रोकना
5. मृदा एवं फसल के तापमान को अनुकूल बनाये रखना

वैकल्पिक जुताई तकनीकें

गत कुछ वर्षों में मक्का की उन्नत एकल क्रॉस संकरों/किस्मों के उपयोग तथा विभिन्न जुताई एवं संसाधन प्रबंधन में सुधार के कारण मक्का उत्पादकता में वृद्धि हुई है। जिसमें शून्य भूपरिष्करण, रोटरी टिलेज एवं फर्ब पद्धति प्रमुख जुताई तकनीकें हैं। यह जुताई तकनीकें अपनाकर किसान उत्पादन लागत को कम करके अधिक उत्पादन ले सकते हैं और इसकी गुणवत्ता को अन्तराष्ट्रीय बाजार के उपयुक्त भी बना सकते हैं। ये तकनीकें निम्नांकित हैं

(क) ज़ीरो टिलेज तकनीक

ज़ीरो टिलेज, फसल की कटाई के उपरांत बिना खेत की जुताई किये साल-दर-साल फसलों को उगाने का एक तरीका है। इस विधि में विशेष

मशीन (जीरो टिल मशीन) द्वारा मक्का बीज एवं खाद की एक साथ बुवाई की जा सकती है। इस मशीन में टाइन चाकू की तरह होता है जिससे मिट्टी में नाली के आकार की दरार बनती है, जिसमें खाद एवं बीज उचित मात्रा में सही गहराई पर पहुँच जाता है।

जीरो टिलेज विधि के लाभ

1. करीब 60-70 प्रतिशत ईंधन एवं 2000-2500 रू. प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। साथ ही पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है।
2. बुवाई 10-15 दिन पहले की जा सकती है एवं बहुफसल प्रणाली अपना सकते है।
3. समय से बुवाई करने से तापमान के प्रतिकूल प्रभाव से सुरक्षा मिलती है एवं अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।
4. मृदा अपरदन बहुत कम होता है।
5. भूमि में नमी संरक्षित रहती है।
6. मृदा जैव-विविधता को क्षति नहीं होती है।

ख फर्ब तकनीक से बुवाई

मक्का की बुवाई सामान्यतया कतारों में की जाती है। फर्ब तकनीकी किसानों में प्रचलित विधि से सर्वथा भिन्न है। इस तकनीक में मक्का को ट्रेक्टर चलित रीजर-कम ड्रिल से मेंड़ों पर एक पंक्ति में बोया जाता है। मशीन के अगले भाग में लगे रीजर मिट्टी उठाने का कार्य करते हैं, फरो ओपनर इस उठी हुई मिट्टी पर बुवाई करता हैं, तथा बेड शेपर उस उठी हुई मिट्टी को रूप देते हैं। पिछले कुछ वर्षों के अनुसंधान में यह पाया गया है कि इस तकनीक से खाद एवं पानी की काफी बचत होती है और उत्पादन भी प्रभावित नहीं होता है। इस तकनीक से बीज उत्पादन के लिए भी मक्का की खेती की जा रही हैं जिसका मुख्य उद्देश्य अच्छी गुणवता वाले अधिक से अधिक बीज उपलब्ध कराना है।

फर्ब तकनीक के लाभ

1. इस तकनीक से बुवाई करने से फसल वर्षा के पानी का भरपूर उपयोग करती है तथा सिंचाई की स्थिति में काफी कम पानी लगता है।
2. इस तकनीक से बीज, खाद व पानी की बचत के साथ ही साथ उत्पादन लागत में कमी आती है।
3. छोटे पौधों में मशीन द्वारा निराई-गुड़ाई करने में आसानी ।
4. अवांछित पौधों को निकालने में आसानी।
5. फसल का गिरने से बचाव।
6. क्षारीय व लवणीय मृदाओं में अधिक पैदावार।
7. इस विधि से मक्का उत्पादन करने से नालियों का प्रयोग सिंचाई के लिए करने के साथ ही अधिक पानी की निकासी के लिए भी किया जा सकता है।

(ग) लेज़र लेवलर

अच्छी पैदावार के लिए खेतों का समतल होना बहुत जरूरी है। खेतों को एक सार करने के परंपरागत तरीके अधिक मेहनत एवं समय की मांग करते है, कंप्यूटराइज्ड तकनीक से काम करने वाला यह यंत्र काफी कम समय में खेत की मिट्टी को समतल कर देता है। इस यंत्र को ट्रैक्टर के साथ जोड़कर चलाया जाता है।

लेज़र लेवलर के लाभ

1. समतल मृदा सतह के कारण बीज एवं उर्वरक की बचत
2. सिंचाई जल का एक समान वितरण
3. सिंचाई जल की 35-45 प्रतिशत तक बचत
4. मृदा अपरदन में कमी
5. फसल उत्पादन की 20 प्रतिशत तक बढ़ोतरी
6. फसल का अच्छा अंकुरण
7. मृदा लवणता में कमी
8. खरपतवार की समस्या में कमी

पक्षी प्रतिरोधी उपकरण

परागण के तुरंत बाद और अनाज भरने की शुरुआती अवस्था के

दौरान मक्का भुट्टा पक्षियों का पसंदीदा खाद्य स्रोत है। पक्षियों के बड़े झुंड मक्का को बहुत ही कम समय में अविश्वसनीय रूप से नुकसान पहुंचा सकते हैं। अतः मक्का को पक्षियों के प्रकोप से बचाने के लिए निम्न सावधानियां रखनी चाहिए-

(क) दृश्य उत्पाद

नकली उल्लू, बाज और बिजू का चमकदार वस्तुओं की तरह फसलों की रक्षा करने की एक सरल और सस्ती विधि हो सकती है। हालांकि, पक्षियों को प्रभावी ढंग से दूर रखने के लिए इन उपकरणों को नियमित रूप से चारों ओर स्थानांतरित करने की आवश्यकता होती है।

(ख) शोर मचाने वाला उपकरण

स्वचालित एसिटिलीन विस्फोटक या पक्षी-डरावनी बंदूकें जो समय-समय पर जोरदार विस्फोटक शोर का उत्पादन करती हैं, पक्षियों को डराने के लिए उपयोग कर सकते है। इसके अलावा इलेक्ट्रॉनिक शोर उपकरण एक आवृत्ति भेजता है जिसे पक्षी सुनकर डर जाते है और खेत से दूर रहते है।

(ग) तरल पक्षी प्रतिरोधी

तरल पक्षी प्रतिरोधी, पक्षियों को लंबे समय तक फसलों से दूर रखने का प्रभावी तरीका है। तरल पक्षी प्रतिरोधी पक्षियों को दूर करने के लिए दृश्य और संवेदी प्रभाव डालते है। इनको फसलों के चारों ओर स्प्रे करते हैं। कुछ तरल प्रतिरोधी पक्षियों में मस्तिष्क में दर्द करके उन्हें परेशान करते है और उन्हें मक्का खेत से दूर रहने पर मजबूर करते है। तरल पक्षी प्रतिरोधी गैर घातक हैं और फसलों को दो सप्ताह तक के लिए पक्षियों से सुरक्षा देते हैं।

मक्का एग्रिदक्ष

एग्रि दक्ष मानव विशेषज्ञ के साथ बातचीत का अनुकरण करके कृषि से संबंधित समस्या को हल करने की तकनीक है। इसका उद्देश्य फसल प्रबंधन के लिए किसानों या कृषि विस्तार कर्मियों की दक्षता में और फसल उपज में वृद्धि करना है। यह उर्वरक, कीटनाशकों और सिंचाई के लिए श्रेष्ठ रणनीति निर्धारित करता है। वर्तमान में, इसमें चार उपप्रणाली हैं: किस्म चयन, सस्य विधियां, रोग निदान, कीट पहचान और पोस्ट हार्वेस्ट प्रौद्योगिकी।

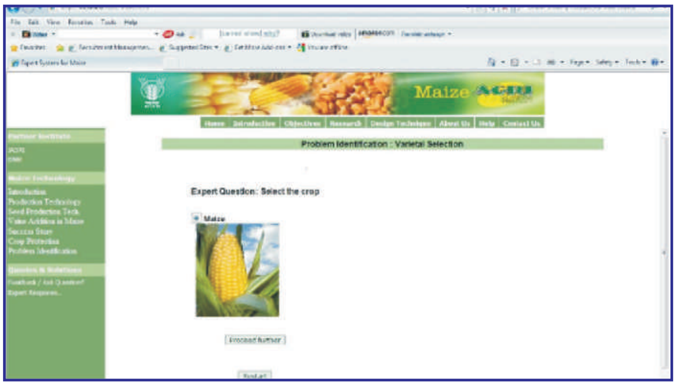

(क) किस्म चयन उपप्रणाली – स्थान विशिष्ट किस्म की सलाह देता है।

(ख) सस्य उपप्रणाली- यह सिंचाई, उर्वरकों और कीटनाशकों के उचित उपयोग की सलाह देता है।

(ग) रोग निदान और कीट पहचान उपप्रणाली – किसानो को मक्का की फसल को प्रभावित करने वाली कीटो और रोगो की पहचान करने में मदद करता है और निवारक और नियंत्रण के उपायों का सुझाव देता है।

(घ) फसल प्रौद्योगिकी उपप्रणाली- मक्का के उचित भंडारण करने और मूल्यवर्धित उत्पादों के प्रसंस्करण से सम्बंधित जानकारी देता है।

इस ऑन लाइन विशेषज्ञ प्रणाली में स्थान विशिष्ट तकनीक को स्थानांतरित करने और किसान को प्रभावी ढंग से सलाह देने की क्षमता है। इसकी सलाह से बीमारियों और कीटों के उपद्रव के कारण नुकसान कम हो जाएगा और उचित किस्म चयन के साथ उत्पादन में सुधार होगा और किसान की आय बढ़ जाएगी।

अतः उपर्युक्त नवीन एवं आधुनिक कृषि तकनीकों एवं उपकरणों के उपयोग द्वारा आने वाले समय में किसान भाई जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से अपनी फसल को बचाते हुए अपनी आय सुनिश्चित कर सकते है। इसके अलावा एग्रीदक्ष ऑनलाइन तकनीक से समय पर उर्वरक, कीटनाशकों और सिंचाई आदि से फसल प्रबंधन करते हुए फसल उपज में वृद्धि कर सकते है।

बिहार प्रदेश में रबी में मक्का की फसल पर शीत-प्रकोप से बचाव

श्यामबीर सिंह* एवं रविन्द्र कुमार कसाना
क्षेत्रीय मक्का अनुसंधान एवं बीज उत्पादन केन्द्र (भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान), बेगुसराय 851129(बिहार)
*संवादी लेखक का ई-मेलः singhsb1971@rediffmail.com

बिहार राज्य में रबी मौसम में मक्का एक प्रमुख फसल के रूप में उगाई जाती है वैसे तो मक्का की फसल बिहार में तीनों मौसम रबी खरीफ व ग्रीष्म (स्प्रिंग) में उगाई जाती है परंतु अधिकतम क्षेत्रफल में मक्का रबी मौसम में ही उगाई जाती है। राज्य के सभी 38 जिलों में मक्का की खेती किसी न किसी मौसम में उगाई जाती है। बिहार के कोसी क्षेत्र में रबी मक्का की फसल बहुतायत में होती है। कोसी क्षेत्र के कटिहार, सहरसा, पूर्णिया अररिया, मधेपुरा, किशनगंज व खगड़िया इसमें प्रमुख जिले हैं। गत कुछ वर्षों से नई संकर परभेदों को बिहार में किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर अपनाए जाने व आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से मक्का की खेती करने से प्रदेश में मक्का के उत्पादन व उत्पादकता में आशातीत वृद्धि हुई है। राज्य का वार्षिक मक्का उत्पादन वर्ष 2015-16 में 2.52 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2016-17 में 3.84 मिलियन टन पहुंच गया, जिसमें लगभग 52.7% की वृद्धि दर्ज की गई जो कि एक कीर्तिमान है। इसी प्रकार राज्य में मक्का की वार्षिक उत्पादकता में भी जबरदस्त उछाल आया था जो वर्ष 2015 में 35.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर से बढ़कर वर्ष 2017 में 53.4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पर पहुंच गया। उपरोक्त उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि वास्तव में उत्साहवर्धक रही थी। लेकिन अगले ही वर्ष 2017-18 में यह उत्पादकता लगभग 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर गिरकर 39 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पर आ गई। इसका एक

मुख्य कारण रबी मौसम में मक्का की फसल पर कम तापमान के कारण शीत प्रभाव को माना गया। राज्य के अधिकतर जिलों में अक्टूबर माह के अंतिम सप्ताह से लेकर नवंबर माह के प्रथम पखवाड़े तक बोई गई मक्का की फसल में कम तापमान का प्रभाव पाया गया। जिसके कारण उपरोक्त समय अवधि में बोई गई मक्का फसल में बड़े पैमाने पर दाना न बनने की समस्या आयी जिससे बहुत किसान मक्का की फसल के प्रति हतोत्साहित हुए।

शीत-प्रकोप या कम तापमान का मक्का की वानस्पतिक अवस्था पर प्रभाव

मक्का एक ऐसा पौधा है जिस के लिए 5 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान बहुत हानिकारक होता है। सामान्यतः 10 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस तक का तापमान इसकी वानस्पतिक व प्रजनन दक्षता वृद्धि हेतु अच्छा माना जाता है। यदि तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से कम होता है तो यह मक्का के पौधे की दोनों अवस्थाओं वानस्पतिक व प्रजनन दक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और यदि तापमान प्रजनन अवस्था पर एक लंबे समय तक 10 डिग्री सेल्सियस से कम बना रहता है तो पौधे के नर भाग (नर-मंजरी) का विकास रुक जाता है तथा नरमंजरी में बनने वाले परागकण बहुत कम मात्रा में बनते हैं या बिल्कुल नहीं बनते हैं। कम मात्रा में परागकण मिलने या नहीं मिल पाने के कारण भुट्टो में दानों का बहुत कम निर्माण या नहीं होना पाया जाता है जिसका कारण भुट्टों में कम दाना बनने की शिकायत किसान भाई करते हैं। इसलिए आवश्यक है कि मक्का की फसल की बुवाई एक निश्चित अवधि में ही की जाए ताकि मक्का के पौधे की प्रजनन क्षमता के विकास के समय वातावरण का तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से कम ना हो।

मक्का के पौधों की वानस्पतिक अवस्था के दौरान तापमान 10 डिग्री सेंटीग्रेड से कम रहने के कारण शीत-प्रकोप की अवस्था आती है जिसका पौधे की वानस्पतिक वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कम तापमान के कारण पौधे में कोशिका विभाजन रुक जाता है तथा अन्य चयापचय क्रियाएं शिथिल पड़ जाती हैं जिस कारण पौधे का विकास रुक

जाता है या पौधा धीमी गति से बढ़वार करता है। तापमान 5 सेंटीग्रेड से कम होने पर पत्तियों में उपलब्ध पानी जमने लगता है जिससे पौधे में फ्रीज़िंग इंजरी होने लगती है तथा पत्तियां सूखने लगती हैं और जली हुई दिखाई देती हैं।

शीत-प्रकोप का पौधे की प्रजनन अवस्था पर प्रभावः

पौधे का पुष्पन अवस्था से पूर्व नरमंजरी व भुट्टे के बनने का समुचित विकास अधिक उत्पादकता के लिए आवश्यक होता है। मक्का के पौधे में नरमंजरी के विकास के समय अगर तापमान अधिक दिनों तक 10 डिग्री सेल्सियस से कम रहता है तो परागकोषो के निर्माण तथा परागकणों के निर्माण को प्रभावित करता है जिस कारण नरमंजरी में परागकोष तथा परगकणों का निर्माण बहुत कम होता है। कम परागकण बनने के कारण भुट्टे के सिल्क को परागकण न मिल पाने के कारण निषेचन की क्रिया नहीं हो पाती है तथा भुट्टे में दाना नहीं बन पाता है। शीत का प्रभाव मक्का के मादा भाग भुट्टे से ज्यादा प्रतिकूल नरमंजरी विकास पर होता है।

शीत-प्रकोप से बचाव के उपाय

रबी मौसम में मक्का की फसल से अधिकतम पैदावार लेने व शीतप्रकोप से बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए

अ. बुवाई का समय

बिहार प्रदेश की जलवायु तथा शीतलहर को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि रबी में मक्का की बुवाई ऐसे समय पर की जाए ताकि पौधों की अवस्था पर शीतलहर या कम तापमान का प्रभाव कम पड़े। बिहार में शीतलहर सामान्यता 20 दिसंबर से 20 जनवरी के बीच रहती है पौधों में नरमंजरी विकास की अवस्था अगर 20 जनवरी के बाद होगी तो शीत का प्रभाव इस अवस्था पर होने की संभावना बहुत कम होगी। इस समय अवधि या अवस्था को ध्यान में रखते हुए अक्टूबर में मक्का बुवाई से किसानों को बचना चाहिए तथा माह नवंबर के दूसरे से तीसरे सप्ताह तक करनी चाहिए।

ब. शीत के समय मक्का की फसल में सिंचाई

सामान्यत किसान भाई शीत के समय मक्का की फसल में सिंचाई नहीं करते हैं जबकि इस समय सिंचाई करना बहुत आवश्यक होता है। सिंचाई करने से पौधे में पानी की पूर्ति होती रहती है तथा पानी पौधे का तापमान नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा शीत के प्रतिकूल प्रभाव से पौधों को बचाता है। पौधों पर हल्के गर्म तथा साफ पानी का छिड़काव भी किया जा सकता है जिससे पौधे के तापमान में वृद्धि होगी और शीत का प्रभाव भी कम होगा।

स. खेतों के आसपास आग जलाना

खेतों के आसपास आग जलाने से आसपास का तापमान बढ़ जाता है जिससे शीत प्रभाव को कम किया जा सकता है बड़े पैमाने पर यह व्यवस्था करना आसान नहीं है लेकिन छोटे खेतों के लिए किया जा सकता है।

रबी मक्काः प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

सुमित कुमार अग्रवाल*, प्रवीण कुमार बगड़िया, ममता गुप्ता, संतोष कुमार, शांति देवी बम्बोरिया एवं कर्मबीर सिंह हुड्डा
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय परिसर, लुधियाना
*संवादी लेखक का ई-मेलः sumit.aggarwal009@gmail.com

मक्का चावल एवं गेहूँ के बाद एक महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। औद्योगिक फसल होने के साथ-साथ मक्का फसल का पशुओं के चारे और मानव भोजन में भी महत्वपूर्ण योगदान है। औद्योगिक रूप से मक्का का प्रयोग स्टार्च एवं शराब बनाने के लिए किया जाता है। शहरों के आस पास मक्का की खेती बेबी कॉर्न (शिशु मक्का) एवं हरे भुट्टे के लिए की जाती है। भुट्टों को भूनकर खाया जाता है तथा इसके हरे पौधों का प्रयोग साइलेज बनाने के लिए भी किया जाता है।

जलवायु में विविधता के कारण भारत में मक्का पूरे वर्ष भर उगाई जाती है। भारत में रबी मक्का की खेती मुख्यतः आंध्रप्रदेश, तेलगांना, बिहार, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल में की जाती है। मक्का फसल की उत्पादकता कई जैविक एवं अजैविक तनावों से प्रभावित होती है। जैविक तनाव में मुख्यतः कीट-जीव एवं रोगजनक है। सामान्यतः मक्का में खरीफ मौसम की अपेक्षा, रबी मौसम में कम रोग लगते है, लेकिन वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण वर्तमान में कुछ प्रमुख रोग रबी मौसम में भी मक्का की उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते है। भारत में मक्का उगाये जाने वाले विभिन्न क्षेत्रों में 35 रोग पाये गये है जो मुख्य रूप से कवक एवं कुछ जीवाणुओं के कारण फैलते है। बीमारियों के कारण मक्का के उत्पादन में 9 प्रतिशत तक नुकसान होने का अनुमान लगाया गया है। रबी मौसम में मक्का में मुख्य कवकजनित रोग, चारकोल तना सड़न, चारकोल स्टॉक रॉट, सामान्य रतुआ, कॉमन रस्ट, टर्सीकम पत्ती अंगमारी एवं फ्यूजेरियम वृन्त सड़न है।

चारकोल तना सड़न

यह मैक्रोफोमिना फेसिओलिना नामक कवकजनित रोग है। इस रोग का फैलाव मुख्यतः पंजाब, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, तेलांगना, कर्नाटक एवं तमिलनाडु राज्यों में है।

लक्षण

यह रोग प्रायः शुष्क क्षेत्रों में उगाये जाने वाले मक्का में प्रचलित है। प्रभावित पौधा अपरिपक्व स्थिति में सूख जाता है। वृन्त की छाल पर लघु पिन हैड जैसे काले स्क्लेरोशिआ दिखाई देते हैं जो बीमारी की मुख्य पहचान हैं (चित्र 1)। पुष्पण के बाद जल दबाव उत्पन्न हो जाना बीमारी का महत्वपूर्ण कारक है।

रोग चक्र

यह रोग मृदा जनित है। मैक्रोफोमिना फेसिओलिना सर्दियों में स्क्लेरोशिआ के रूप में मिट्टी में कई सालों तक जीवित रहता है। शुष्क

चित्र-1

चित्र-2

चित्र-3

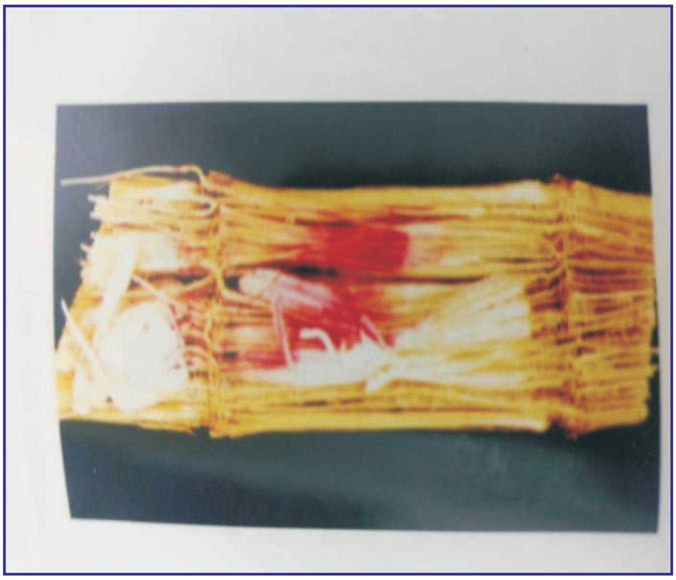

चित्र-4

और गर्म क्षेत्रों में यह कवक मक्का की जड़ों को संक्रमित करता है और निचली डंठल पर कॉलोनी स्थापित करता है।

प्रबंधन

❖ पिछली फसल के अवशिष्ट को खेत से हटाया दिया जाना चाहिये ।

❖ खेत की गहरी जुताई की जाये ।

❖ पुष्पण के समय नियमित सिंचाई की जाये ताकि जल दबाव के कम होने से रोग पनपने में कमी आयेगी। प्रतिरोधी किस्मो/संकरो जैसे कि डी.एम.आर.एच.-1301, जी.के.-3150 और पी.-3533 का उपयोग करें

❖ संतुलित मृदा उर्वरता हेतु नाइट्रोजन के उच्च स्तर और पोटैशियम के न्यूनतम स्तर अनुप्रयोग से बचा जायें।

❖ बुवाई के समय एफवाईएम 10ग्रा./किग्रा. के साथ पूर्व मिश्रण के दौरान ट्राईकोडर्मा हार्जियानम फॉर्मूलेशन 2.0 प्रतिशत प्रयोग में लायें।

सामान्य रतुआ

यह पक्सिनिया सोरघाई नामक कवकजनित रोग है। इस रोग का फैलाव मुख्यतः हरियाणा एवं बिहार राज्य में है।

लक्षण

स्पोट (पस्ट्यूल) पत्तियों पर प्रचुर मात्रा में होते है। पट्टी पर बार-बार उद्धरित होते है। गोल्डन ब्राउन से सेन्नामोन ब्राउन स्पोट के लम्बा होने का चक्र दोनों पत्ती सतहों पर विकीर्ण छितरा-बिखरा होता है और पादप परिपक्वता के कारण भूरा काला हो जाता है।(चित्र 2) उच्च आपेक्षिक आद्रता में यह रोग अधिक फैलता है।

रोग चक्र

पक्सिनिया सोरघाई अपना जीवन चक्र 5 विभिन्न प्रकार के बीजाणुओं (टीलीयोस्पोर, बैसिडिओस्पोर, पिक्निओस्पोर, ऐसिओस्पोर एवं यूरिडिनीओस्पोर) के रूप में पूर्ण करता है। इस कवक के दो मुख्य पोषित पौधे, मक्का एवं काष्ठ प्रजाति (ओक्जेलिस स्पीशीज) है। ऐसिएल अवस्था ओक्जेलिस पादप की पत्तियों के निचली सतह पर पाई जाती है जहाँ पर ऐसिओस्पोर प्रचुर मात्रा में बनते है और मक्का को संक्रमित करते है। यूरिडिनीओस्पोर मक्का फसल के पूरे मौसम में विद्यमान रहते है। मुख्यतः 16 से 24 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं अधिक शीतलता इस रोग के फैलाव के लिए अधिक अनुकूल है।

प्रबंधन

❖ जल्दी परिपक्व होने वाली किस्मों या संकरो को उपयोग में लाये।

❖ प्रतिरोधी किस्मों/संकरो जैसे कि आर.जे -2020, बिस्को x 5129 एवं नित्याश्री को उपयोग में लाये।

❖ पत्ती में जब पहली बार स्फोट (पैस्ट्यूल) दिखाई दे उसी समय फफुंदनाशी का प्रयोग शुरू कर देना चाहिये। लक्षण के पहली बार उद्धरित होने पर डाईथेन एम-45, 15 दिन के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करने से रोग को कम किया जा सकता है।

टर्सीकम पत्ती अंगमारी

यह एक्सीरोहाईलम टर्सीकम नामक कवकजनित रोग है। इस रोग का फैलाव मुख्यतः पश्चिम बंगाल, बिहार, आन्ध्र प्रदेश एवं तेलंगाना में है।

लक्षण

लंबा अंडाकार घूसर हरा या 2.5 से 15 सें.मी. लम्बा टेन लीजन्स पहले नीचे के पत्तों में विकसित होता है और बाद में यह रोग पौधें में ऊपर की ओर बढ़ता है। रोग, ऐंथिसिस के बाद तेजी से बढ़ता है और इसके फलस्वरूप पत्तों की पूरी तरह से अंगमारी/नष्ट हो जाती है। आर्द्र मौसम में लीजन्स पर बहुत से धूसर काले बीजाणु पैदा हो जाते है। गंभीर संक्रमण के कारण अपरिपक्व स्थिति में पौधा नष्ट हो जाता है (चित्र 3)।

रोग चक्र

इस कवक का कवक जाल और कोनिडिया (अलैगिंक बीजाणु) संक्रमित फसल अवशिष्ट एवं मृदा पर अगली फसल के लिए प्राथमिक संचारक के रूप में काम करते है। प्रतिकूल परिस्थितियों में कोनिडिया अपनी बाहरी भित्ती को सख्त कर क्लेमाइडोस्पोर में रूपान्तरित हो जाता है। कोनिडिया इस कवक के द्वितीयक संचारक है जो वायु के द्वारा लम्बी दूरी तय कर अन्य क्षेत्रों में इस रोग को फैलाते है।

प्रबंधन

स्वच्छ संक्रमित फसल क्यारी की जमीन से हल द्वारा सफाई।

फसल चक्र अपनाये।

आंधप्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक के लिए प्रतिरोधी किस्मो/संकरो जैसे कि डी.एम.आर.एच.1301, बिस्को ×5129, जी.के- 3150 और पी 3533 का उपयोग में लाये।

टर्सीकम पत्ती अंगमारी के पहले लक्षण दिखते ही ऐजोक्सीस्ट्रोबिन 25 एस.सी.1.0 मिलीग्राम/प्रति लीटर पानी या डाईफिनोकोनाजोल 25 ई.सी. 2.5 मिलीग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें।

फ्यूजेरियम वृन्त सड़न

यह फ्यूजेरियम वर्टिसिलोईडस नामक कवक जनित रोग है। इस रोग का फैलाव मुख्यतः पश्चिम बंगाल, राजस्थान, बिहार, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं तेलंगाना राज्यों में है।

लक्षण

इस रोग के लक्षण तब प्रकट होते है जब फसल परिपक्व अवस्था में प्रवेश करती है। रोगजनक सामान्यतः जड़ शीर्ष क्षेत्र को प्रभावित करते है। जब वृन्त को चीरकर देखा जाता है तो वृन्त में गुलाबी-जामुनी बेरंग दिखाई देता है (चित्र 4)।

रोग चक्र

यह कवक मिट्टी और पिछली फसल के अवशिष्ट में कवक जाल क्लेमाईडोस्पोर के रूप में जाड़ा बिताता है। फ्यूजेरियम मक्का फसल के डंठल को कवक जाल के रूप में लैगिंक या अलैगिंक बीजाणुओं से संक्रमित करता है। ढ़ीले ऊत्तक एवं डंठल पर घाव से यह अधिक फैलता है। यह रोग जनक मुख्यतः अंतरपर्व के आंतरिक भाग को प्रभावित करता है। अलैंगिक बीजाणु पूर्व के बाहरी हिस्सों में वलय के रूप में विकसित होते है और लैगिंक बीजाणु डंठल के आधारभूत भाग पर विकसित होते है।

प्रबंधन

- ❖ पिछली फसल के अवशिष्ट को खेत से हटावे ।
- ❖ खेत की गहरी जुताई की जायें।
- ❖ पौधों की संख्या कम रखे।
- ❖ सोयाबीन जैसे गैर पोषित फसल के साथ फसल चक्र अपनायें।
- ❖ संतुलित मृदा उर्वरता हेतु नाइट्रोजन के उच्च स्तर और पोटैशियम के न्यूनतम स्तर अनुप्रयोग से बचा जायें।
- ❖ बिस्कोX5129, जी.के- 3150, आर.जे -2020, करीम नगर मक्का —1 जैसे प्रतिरोधी किस्मों/संकरों का उपयोग करें।
- ❖ बुवाई के समय 10 ग्राम/कि.ग्रा. एफ.वाई.एम. के साथ ट्रायकोडर्मा हार्जियानम फॉर्मूलेशन 2.0 प्रतिशत डब्लूपी का पंक्तियों में अनुप्रयोग करें।
- ❖ बीज ट्रायकोडर्मा विरीडी+कार्बेन्डाजीम द्वारा उपचार के साथ नर मंजरी और सिलिकिंग अवस्था में दो अतिरिक्त सिंचाई देने से रोग की संभावनाएं कम हो जाती है।

हिंदी राष्ट्र की आत्मा है। -महात्मा गाँधी

भारत में मक्का का जीवाणु तना सड़न रोगः परचिय एवं प्रबंधन

प्रवीण कुमार बगड़िया[1*], सुमित कुमार अग्रवाल[1], कर्मबीर सिंह हुड्डा[1], विशाल सिंह[1] एवं हरलीन कौर[2]
[1]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब
[2]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब
*संवादी लेखक का ई-मेलः parvin87hau@gmail.com

भारत मे मक्का अनाज वाली फसलों में प्रमुख है जो उत्पादन एवं उत्पादकता की दृष्टि से तीसरे स्थान पर है। मक्का उत्पादन पर विभिन्न जैविक और अजैविक कारक प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। जैविक कारको में रोग, कीट-नाशीजीव, सूत्रकृमि और खरपतवार प्रमुख है जो मक्का के अधिकतम उत्पादन लेने में रूकावट पैदा करने के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता को हानि पहुँचाकर आर्थिक नुकसान करते हैं। मक्का में लगने वाले रोगों को कवकजनित, जीवाणुजनित, विषाणुजनित और सूत्रकृमिजनित में विभक्त किया जा सकता हैं। जीवाणुजनित रोगों में विश्वभर में जीवाणु तना सड्न (बैक्टीरियल स्टॉक रॉट), जीवाणु पत्ताधारी (बैक्टीरियल लीफ स्ट्रिकिंग), स्टीवर्ट जीवाणु म्लानि और पत्ती अंगमारी (स्टीवर्ट बैक्टीरियल विल्ट और लीफ ब्लाइट) और होलक्स जीवाणु पत्ती धब्बा (होलक्स बैक्टीरियल लीफ स्पॉट) प्रमुख रोग हैं। इनमें से भारतवर्ष में जीवाणु तना सड़न रोग, न केवल आर्थिक रूप से नुकसान करने वाला प्रमुख जीवाणुजनित रोग है, बल्कि यह कवक और जीवाणु द्वारा मक्का में होने वाले चार प्रमुख डंठल रोगों में से एक हैं। जीवाणु तना सड्न रोग, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में मक्का का एक गंभीर रोग है जो उच्च तापमान, आर्द्रता और नमी जैसी परिस्थितियों में 80-85 प्रतिशत तक पौधों को संक्रमित कर सकता है। प्रायोगिक प्रक्षेत्रों में कृत्रिम रूप से संक्रमित मक्का में 21 से 98 प्रतिशत तक की उत्पादन में कमी पाई गई है।

रोग के लक्षण

जीवाणु तना सड्न (बैक्टीरियल स्टॉक रॉट) के जीवाणु से संक्रमित मक्का के पौधों पर रोग के लक्षण फसल की बुवाई के 40 से 60 दिन की अवधि अर्थात परिपक्वता के समय दिखाई पड़ते हैं। यह जीवाणु अकेले पौधों को संक्रमित करता है जिस वजह से इस रोग से ग्रसित पौधे खेत में समूह की बजाय बिखरे रूप में यहाँ-वहाँ गिरे हुए दिखाई पड़ते हैं। सर्वप्रथम पर्णांच्छद तथा डंठल पर एक भूरे रंग का धब्बा व घाव बनता हैं और ऊपर वाली पत्तियों के अग्रभाग का असामयिक क्षरण शुरू होकर उनका सूखना प्रारम्भ हो जाता है। इसके उपरांत नीचे वाली पत्तियां भी पीली पड़कर सूखना शुरू हो जाती है। इस रोग में पौधों का सड़न नीचे से ऊपर की ओर आधारी सड़न (बेसल रॉट) अथवा ऊपर से नीचे की ओर (शीर्ष सड़न/ टॉप रॉट), दो प्रकार से हो सकता है :

1. आधारी सड़न (बेसल रॉट)

पर्णांच्छद तथा तने के संक्रमित भाग का उत्तक भूरे रंग का, मुलायम और जल मृदुलीकृत (water soaked) दिखाई पड़ता है। डंठल के आंतरिक उत्तक विघटित होकर नरम और कमजोर हो जाते हैं जिससे तना, पौधे के ऊपरी भाग का वजन उठाने में असमर्थ हो जाता है और तने के क्षरित भाग से पौधा टूटकर जमीन पर गिर जाता है और खत्म हो जाता है। इस रोग से ग्रसित खेतों में प्रवेश करने पर सड़े हुए पौधों से बहुत खराब दुर्गन्ध आना और पौधे के क्षरित-सड़े हुए ऊत्तकों के अंदर और ऊपर डिप्टेरस लार्वा की उपस्थिति होना, इस रोग की पहचान के विशिष्ट लक्षण हैं। सड़न, एक या दो पोरियों (इंटरनोडस) तक अथवा डंठल की पूरी लम्बाई में हो सकती है जिसके फलस्वरूप आंतरिक उत्तक बिखरे हुए रेशों में परिवर्तित हो जाता है और पौधा मर जाता है।

चित्र :- जीवाणु तना सड्न (बैक्टीरियल स्टॉक रॉट) से ग्रसित मक्का के पौधों पर रोग के लक्षण

2. शीर्ष सड़न (टॉप रॉट)

इसमें सर्वप्रथम दृष्टिगत लक्षण के रूप में पौधे के शीर्षपर्णचक्र (whorl) की मध्य वाली पत्तियां शिथिल होकर या कुम्हलाकर उनके शीर्ष से सूखना प्रारम्भ कर देती हैं। उसी समय डंठल में शीर्ष पर्ण चक्र

(whorl) के आधार पर एक जल मृदुलीकृत सड़न (सॉफ्ट रॉट) विकसित होती है जो तेजी से तने के नीचे के भागों में फैल जाती है जिससे तना कमजोर पड़ने की वज़ह से शीर्ष भाग का वजन उठाने में असमर्थ होने के कारण सड़े हुए स्थान से टूटकर लुढ़क/ लटक जाता है। इस तरह के शीर्ष भाग (whorl) की पत्तियों के समूह को खींचकर तने से आसानी से अलग किया जा सकता है और टूटन वाले स्थान पर डंठल पर एक भूरे रंग की जल मृदुलीकृत सड़न (सॉफ्ट रॉट) दिखाई पड़ती है।

जब भुट्टा (कॉब) छिलके सहित संक्रमित होता है तो पहले वह जल मृदुलींत होकर लसलसा एवं चिपचिपा हो जाता और बाद में सूख जाता है। ऐसी परिस्थिति में पौधों पर या तो सड़े हुए दानों युक्त अविकसित भुट्टे बनते हैं जो लसलसे एवं चिपचिपे पदार्थ से ढके रहते हैं या फिर संक्रमित भुट्टे दाने पड़ने से पहले ही पूर्णतया सड़ जाते हैं।

रोगकारक

मक्का का जीवाणु तना सड्न (बैक्टीरियल स्टॉक रॉट), डिकेया जीए (Dickeya zeae) नामक एक ग्राम-नेगेटिव, छड़ की आकृति जैसे जीवाणु के द्वारा जनित रोग है, जिसका आकार 0.8-3.2 x 0.5-0.8μ (औसत 1.8 x 0.6μ) तक होता है और जिसके चारों तरफ कोशिका शरीर पर 3-14 (प्रायः 8-11) तक फ्लेजिल्ला पाये जाते हैं। यह जीवाणु 'किंग्स बी' संवर्धन माध्यम पर धूमिल सफेद रंग की चिकनी (स्लाइमी) और चमकदार कॉलोनियां बनाता है।

इस जीवाणु की वृद्धि हेतु भारी मिट्टी, उच्च तापमान और आर्द्रता आदर्श परिस्थितियाँ हैं। अतः यह रोग अगस्त और सितंबर के महीने में उच्च तापमान और लगातार बारिश वाले क्षेत्रों में अधिक होता है। उत्तर-पश्चिमी भारत (विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा, हिमाचल एवं उत्तराखंड के कुछ भाग) में इस रोग को खरीफ में बोई गई मक्का की फसल में, रबी मक्का की अपेक्षा प्रमुखतया से देखा जा सकता है क्योंकि मक्का की वृद्धि की अतिसंवेदनशील अवस्था (पुष्पन से पूर्व) के समय पर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के कारण अत्यधिक बारिश होती है जो इस रोग के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

रोगचक्र

इस रोग का रोगाणु मृदाजनित है जो मिट्टी में फसल अवशेषों में जीवित रह सकता है। यह रोगाणु पौधों में संक्रमण करने हेतु प्राकृतिक छिद्रो जैसे वातरंध्रों (स्टोमेटा), जलरंध्रों (हाइडेथोडस) अथवा कीड़ों द्वारा पत्तियों/ पौधे के शीर्षपर्णचक्र (whorl), तना एवं जड़ों में किये गए घावों और तेज हवाओं या यांत्रिक साधनों से आईं चोटों से बने छिद्रों से प्रवेश करता है।

संक्रमित फसल अवशेष की डिकेया जीए नामक इस जीवाणु के लंबे अस्तित्व में महत्वपूर्ण भूमिका है। यह जीवाणु प्राकृतिक रूप से संक्रमित मक्का डंठल अवशेषयुक्त मिट्टी में लगभग नौ महीने तक जीवित रह सकता है। उच्च तापमान और नम मिट्टी इस जीवाणु की आबादी के निर्माण और इसके निरंतर अस्तित्व को बढ़ावा देता है। जीवाणु कोशिकाओं की संक्रामकता को सिलिका जेल में लगभग 3 वर्षों तक संरक्षित किया जा सकता है, जबकि प्रोंतिक अवस्था में खेतों में केवल एक फसल काल के बाद संक्रमण की क्षमता समाप्त हो जाती है। यह एक पौधे से दूसरे पौधे और एक खेत से दूसरे खेत में बारिश के पानी और इसके प्रवाह के माध्यम से फैल सकता है। मक्का छेदक जैसे कुछ कीड़े इस रोग के प्रारंभिक संक्रमण और आगामी विस्तार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मक्का के जीवाणु तना सड़न का समन्वित रोग प्रबन्धन

1. जल भराव वाले क्षेत्रों में मक्का की बुवाई न करें और खेत में जल निकास के लिए उचित प्रबंधन करें।
2. अधिक वर्षा और भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में मक्का फसल की बुवाई समतल क्यारिओं में न करके अपितु मेड़ पर करें।
3. अत्यधिक सिंचाई और सिंचाई हेतु सीवरेज के पानी का प्रयोग न करें।
4. फसल चक्रः- घास कुल की कई फसलें, इस जीवाणु की पोषी फसलें है। अतएव कम से कम दो वर्ष का अपोषक फसलों जैसे गेंहूँ और तेल वाली फसलों (सोयाबीन) के साथ फसल चक्र अपनाये।
5. गर्मी की गहरी जुताईः- अप्रैल/मई के महीने में 10-15 दिन के अन्तराल पर दो से तीन गहरी जुताई करने से जीवाणु संक्रमित मक्का फसल अवशेष का अपघटन तीव्रता से होता है जिससे इस जीवाणु का मिट्टी में जनसंख्या घनत्व बहुत स्तर तक कम हो जाता है।
6. अत्यधिक नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का प्रयोग करने से यह रोग बढ़ता हैं, इसलिए नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग फॉस्फोरस और पोटाश उर्वरकों के साथ संतुलित रूप से प्रयोग करें।
7. जीवाणु तना सड़न प्रतिरोधक/सहनशील किस्मो की बुवाईः- रोग प्रतिरोधक/सहनशील किस्मों की बुवाई पादप रोगों के प्रबंधन का न केवल प्रभावी बल्कि आर्थिक रूप से कम खर्चे वाला उपाय है। जीवाणु तना सड्न प्रतिरोधक/सहनशील किस्मों जैसे HTMH 5402, ADVSW-1, ADV 0990296 और मध्यम प्रतिरोधकता वाली किस्मों जैसे Prakash PMH 2, HTMH 5108, X35D601, AQH 9, AQH 4, KDPC-2, HT 51412616, DMH 192, JKMH 4848 की बुवाई करें।
8. मक्का की खड़ी फसल में पुष्पन से पहले इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर पौधों की जड़ों के नजदीक ब्लीचिंग पाउडर (33 प्रतिशत) का 10 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव कर सिंचाई कर दे अथवा 10 लीटर पानी में 3 ग्राम ब्लीचिंग पाउडर का घोल बनाकर पौधे की जड़ों के पास मिट्टी में ड्रेन्च करें और यही प्रक्रिया सात दिन बाद पुनः दोहराएं।

मक्का में कीट समस्याओं की वर्तमान स्थिति का अवलोकन

जे.सी. शेखर, पी. लक्ष्मी सौजन्या, एस.बी. सूबी, ज्वाला जिंदल, महासिंह जागलान, एम.एल.के. रैडी और सुजय रक्षित
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
*संवादी लेखक का ई-मेलः jcswnc@rediffmail.com

परिचय

भारत क्षेत्रफल के आधार पर विश्व में मक्का की खेती करने वाले देशों में चौथे स्थान पर है। परन्तु उत्पादन में सातवें स्थान पर है। भारत में पिछले पंद्रह वर्षों में मक्का की उत्पादन स्थिति में काफी बदलाव हुए हैं। वर्ष 2011 से 2016 तक, मक्का के क्षेत्रफल में 8.50 लाख हैक्टेयर व उत्पादन 41.4 लाख टन की वृद्धि हुई है। भारत में मक्का की खेती मुख्यतः दो ऋतुओं, वर्षाकालीन (खरीफ) और सर्दकालीन (रबी) में की जाती है। वर्ष 2014-15 में भारत में रबी मक्का की उत्पादकता (3897 कि.ग्रा./हैक्टेयर) जबकि समशीतोष्ण (ठण्डे) देशों में (4414 कि.ग्रा./हैक्टेयर) रही है। कुछ जिलों जैसे कृष्णा, पश्चिम गोदावरी में तो उत्पादकता 12 टन/हैक्टर तक भी दर्ज की गई है। हालांकि, खरीफ मक्का (जो कि लगभग 83 प्रतिशत मक्का क्षेत्रफल का प्रतिनिधित्व करता है) की उत्पादकता (2413 कि.ग्रा./हैक्टेयर) काफी कम है। खरीफ मक्का की कम उत्पादकता का मुख्य कारण सिंचाई सुविधाएं कम होने के कारण केवल मानसून वर्षा पर ही आधारित रहने के कारण है। मक्का की उत्पादकता कम होने के मुख्यः बाधाओं में कीट व बीमारी का प्रकोप भी एक है। मक्का में बिजाई से फसल पकने तक लगभग 139 प्रकार के कीटों का प्रकोप होता है। परन्तु लगभग एक दर्जन कीट ही ज्यादा हानिकारक हैं। ये कीट फसल की बिजाई से पकने तक नुकसान पहुंचाते हैं। इनमें से मक्का तना छेदक (काइलो पारटेलिस) जो कि वर्षाकालीन-खरीफ और गुलाबी तना छेदक (सिसेमिया इन्फैरेन्स) जो कि सर्दकालीन-रबी में नुकसान पहुंचाते हैं, सभी कृषि जलवायु क्षेत्रों में प्रमुख कीट हैं। ये कीट भारत में 24.3 से 36.3 प्रतिशत मक्का की पैदावार में हानि पहुंचाते हैं। सामान्य तौर पर, किसी विशेष फसल के कीट उस क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करते हैं। इसका मुख्य उदहारण, उत्तर भारत के मैदानी इलाकों में प्ररोह तना मक्खी (एथेरीगोना प्रजाति) है, जिसका प्रकोप केवल बसन्त ऋतु में उगाई जाने वाली मक्का में होता है।

पिछले कुछ वर्षों में भारत के सभी क्षेत्रों के अध्ययनों से कीटों की संख्या पर मौसमी घटनाओं पर खुलासा हुआ है कि काफी कीट जोकि कुछ वर्षों पहले मुख्य कीट नहीं थे, परन्तु ये कीट अब भारत के कुछ क्षेत्रों में विषेष कर मीठी मक्का में काफी आर्थिक नुकसान कर रहे हैं। ये कीट भुट्टा बेधक कीट जैसे सपोडोपटरा लीटूरा, हैलिकोवरपा आर्मिजेरा और परागण/फूल खाने वाली बिटल जैसे चाफर बीटल (काइलोलोबा एक्यूटा/आक्सीसीटोनिया वरसीकोलर) हैं। हाल ही में आर्मीवर्म कीट (मिथमिना प्रजाति) का प्रकोप मक्का पर काफी बढ़ गया है। फाल आर्मीवोर्म (सपोडोपटरा फरूजीपरडा) विदेश से आया हुआ व अधिक भयानक कीट है। इस कीट ने इस वर्ष खरीफ में काफी नुकसान किया जिसके कारण देश भर के कीट वैज्ञानिकों ने जलवायु परिवर्तन का नए नुकसानदायक कीटों पर प्रभाव देखने के लिए अनुसन्धान की नई दिशा में काम करना शुरू किया है। भारत में ये नए कीट मक्का उत्पादन, उत्पादकता और खाद्यान सुरक्षा के लिए खतरा बन सकते हैं।

भारत के विभिन्य जलवायु क्षेत्रों में कीटों की स्थितिः

उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रः जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड (पहाड़ी क्षेत्र); उत्तरी पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रः मेघालय, सिक्कम, आसाम, त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश इन क्षेत्रों में खरीफ ऋतु में मुख्य व नियमित नुकसान पहुंचाने वाला कीट तना छेदक (काइलो पारटेलिस) है। परन्तु कटवा सूण्डी, प्ररोह मक्खी (तना मक्खी) व सफेद गिडार का प्रकोप भी खरीफ मक्का में हिमाचल प्रदेश में पाया गया है।

तना छेदक सूण्डी

आक्रमण के कारण सूखी गोभ

इस क्षेत्र की कृषि जोत क्रियाएं (फसल चक्र प्रणाली, अंत फसलीकरण और मिश्रित खेती) मित्र कीटों को बचाने में मदद करती हैं। जिसके परिणामस्वरूप मक्का पर हानिकारक कीटों की संख्या आर्थिक कगार के स्तर से नीचे रहती है। भारत सरकार भी इस क्षेत्र में जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के लिए उत्सुक है। इसलिए इस क्षेत्र में जैविक कीट नियन्त्रण विधि (बायोलोजिकल कीट नियन्त्रण) द्वारा हानिकारक कीटों के नियन्त्रण के लिए ध्यान देने की जरूरत है।

उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्रः पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड़ (मैदानी), उत्तर प्रदेश (पश्चिमी भाग):

इन क्षेत्रों में मक्का की खेती खरीफ और बसन्त ऋतु में की जाती है। इन क्षेत्रों में खरीफ मक्का में तना छेदक (काईलो पारटेलिस) व बसन्त ऋतु में प्ररोह मक्खी (एथेरोगोना नकवी) मुख्य व नियमित कीट हैं। कभी-कभी फूल खाने वाली बीटल (काईलोलोबा एक्यूटा) भी फसल पर फूल आने की अवधि के समय नुकसान करती है। पंजाब के जालन्धर जिले के बलनो गाँव में बसन्त कालीन मक्का की परिपक्व अवस्था में

पाइरिला परपुसिला

पाइरिला परपुसिला कीट पर एपिरिकेनिया मिलेनोल्युका मित्र कीट द्वारा हमला

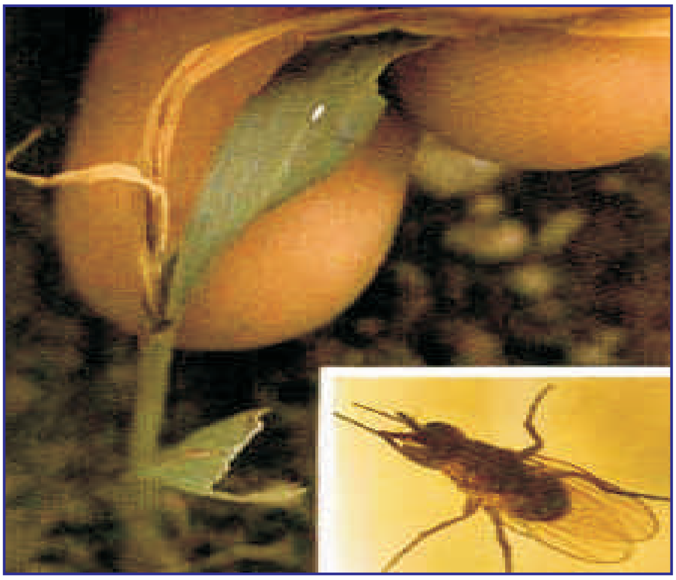

परोह मक्खी

लाल मकड़ी

लाल मकड़ी का काफी प्रकोप भी पाया गया। वर्ष 2018 में पंजाब के जालन्धर जिले के ही कुछ गाँव में बसन्त कालीन मक्का की वनस्पतिक और भुट्टे अवस्था के दौरान गन्ना के लीफ हापर (पायरिल्ला परपुसिला) का प्रकोप भी देखा गया। यह कीट गन्ना व गेहूं की कटाई के बाद बसन्त कालीन मक्का पर स्थानांतरण हो गया था। पंजाब में बसन्त कालीन मक्क में भुट्टा बेधक कीट (हैलिकोवरपा आर्मिजेरा) का प्रकोप अप्रैल के दूसरे सप्ताह से जून के पहले सप्ताह में पाया गया है। मक्का में फिरोमौन ट्रैप द्वारा इस कीट के वयस्क भी आर्कषित होते हैं। गुलाबी सूण्डी का प्रकोप भी पंजाब के इन क्षेत्रों में बसन्त कालीन मक्का में मिला है।

उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रः बिहार, झारखंड़, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश (पूर्वी भाग) और पश्चिम बंगालः

यह क्षेत्र भी रबी मक्का का अधिक पैदावार देने वाला क्षेत्र है। खरीफ इलाकों में तना छेदक (काईलो पारटेलिस) व रबी में गुलाबी सूंडी (सिसेमिया इन्फैरेन्स) मुख्य और नियमित कीट हैं। कटवा सूण्डी व सैनिक सूण्डी का प्रकोप भी मक्का खेती वाले भागों में मिलता है। हाल ही में इसी वर्ष सितम्बर 2018 माह में फाल आर्मीवोर्म का प्रकोप भी पश्चिम बंगाल में पाया गया।

प्रायद्वीपीय क्षेत्रः महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडूः

मक्का उत्पादन व उत्पादकता के तौर पर यह एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। खरीफ में तना छेदक (काईलो पारटेलिस) व रबी में गुलाबी सूंडी (सिसेमिया इन्फैरेन्स) मुख्य और नियमित कीट हैं। मक्का को इन कीटों के प्रकोप से बचाने के लिए खास प्रबन्धन की जरूरत है। रस चूसने वाले कीटों में, माहू (रैफलोसिफम मेडिस) मक्का को बीज उत्पादन क्षेत्रों में आर्थिक नुकसान पहुंचाता है। इसलिए इस कीट का नियन्त्रण जरूरी है।

गुलाबी तना छेदक सूण्डी

नर मंजरी पर फूल खाने वाली बिटल

मक्का का माहू

हाल ही में पत्ता खाने वाली सूण्डी (स्पोडोपटेरा लीटूरा व स्पोडोपटेरा एक्सीगूआ) रबी मक्का की छोटी अवस्था में काफी नुकसान पहुंचाते हुए पाए गए हैं। इसलिए इन कीटों से फसल को बचाने व पौधों की संख्या पूरी रखने के लिए इन कीटों के प्रबन्धन के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है। यद्धपि भूट्टा बेधक कीट (सपोडोपटेरा लीटूरा व हैलिकोवरपा आर्मिजेरा) व फूल खाने वाली बीटल जैसे कि चाफर बीटल (काइलोलोबा एक्यूटा व आक्सीसिटोनिया वरसीकोलर) भी मक्का को नुकसान पहुंचाते हैं परन्तु ये कीट साधारण मक्का के लिए अधिक नुकसानदायक नहीं है। परन्तु इन कीटों का प्रकोप मीठी मक्का में होने

आक्सीसिटोनिआ

तम्बाकू की सूण्डी

भुट्टा बेधक कीट का छल्ली पर हमला

सैनिक कीट सूण्डी

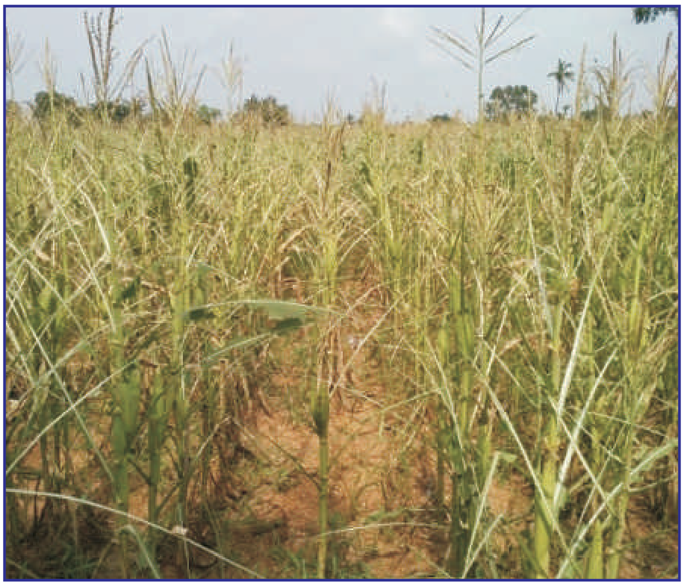
सैनिक कीट का हमला

फाल आर्मीवोर्म

फाल आर्मीवोर्म का हमला

फाल आर्मीवोर्म की सूण्डी पर नोमुराई रिलेयी फफूंद का हमला

पर बाजार गुणवत्ता के लिए तत्काल नियन्त्रण की आवश्यकता पड़ सकती है। खरीफ, 2017 व 2018 में इस क्षेत्र (कर्नाटक) में आर्मीवोर्म (मिथमिना प्रजाति) कीट का अधिक प्रकोप देखा गया था। फाल आर्मीवोर्म मक्का का विदेश से आया हुआ एक नया व अधिक भयानक कीट है। इस कीट का प्रकोप भी पहली बार इसी क्षेत्र (कर्नाटक) में वर्ष 2018 में देखा गया और कुछ ही समय में यह कीट समीपवर्ती राज्यों तमिलनाडू, तेलगाना, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश में भी फैल गया था। परन्तु भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार व राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के लिए उचित समय पर प्रयासों के कारण मक्का को खरीफ, 2018 में इस कीट से होने वाले नुकसान से बचा लिया गया।

मध्य पश्चिम क्षेत्रः राजस्थान, मध्य प्रदेश, छतीसगढ़, गुजरातः

इस क्षेत्र में तना छेदक एक नियमित कीट है। इस क्षेत्र में ग्रास होपर, ग्रे वीवल, माहू, हैलिकोवरपा आर्मीजेरा, मिलाबरिस का प्रकोप भी पाया गया है। हाल ही में इसी वर्ष 2018 में फाल आर्मीवोर्म का प्रकोप गुजरात के गोधरा जिले में मिला है।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन से पता चला है कि देश भर में मक्का पर कीट स्थिति में पिछले कुछ समय में काफी बदलाव आए हैं। इसके निम्न कारण हो सकते हैं :

1. जलवायु परिवर्तन का कीट प्रकोप पर प्रभाव जिसके परिणाम स्वरूप छुटपुट कीटों ने मुख्य कीटों का स्थान ले लिया है और कुछ नए कीटों का प्रकोप भी बढ़ा है।

2. किसानों द्वारा नई फसल प्रणाली को अपनाना जिस कारण कीटों के लिए एक फसल के बाद दूसरी फसल पर साल भर भोजन उपलब्ध रहता है।

3. किसानों द्वारा बहुत अधिक विषैले कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग जिसके कारण मित्र कीट पनप नहीं पाते हैं। मक्का कास्त के क्षेत्र में प्रचुर संख्या में मित्र कीटों की कमी का होना चिंतनीय विषय है। मित्र कीटों का होना नए कीटों की रोकथाम के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

इसलिए मक्का के अनुसन्धान में कार्यरत कीट वैज्ञानिकों को नई दिशा में अनुसंधान करना होगा और कीट नियन्त्रण की नई तकनीक तैयार करनी होगी जो कि विभिन्य जलवायु क्षेत्रों के लिए प्रभावी हो सके। वैज्ञानिकों को प्रभावी एकीकृत कीट प्रबन्धन मोड्यूल तैयार करने होगें जिसमें सभी कीट प्रबन्धन विधि जैसे सस्य क्रियाएं, यात्रिंक विधि, जैविक कीट नियन्त्रण विधि व रसायनिक कीट नियन्त्रण से कम लागत में लाभप्रद व कारगर हो।

इसके इलावा कीट वैज्ञानिकों को रसायनिक कीटनाशकों के मनुष्य के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव व परिणामों को भी ध्यान में रखते हुए अनुसंधान को नई दिशा देनी होगी जिससे कम जहरीले, नई पीढ़ी के रसायनिक कीटनाशकों को बाजार में लाया जा सके। वैज्ञानिकों को ऐसे एकीकृत कीट नियन्त्रण मोडयूल भी तैयार करने पड़ेंगे जिसमें कम से कम जहरीली दवाइयों के प्रयोग द्वारा कीट नियन्त्रण किया जा सके।

अनुसन्धान के लिए प्रथामिक विषयः

जलवायु को कीट प्रकोप के साथ परस्पर स्थापित करें, जिससे कि किसान कीटों के प्रति संवेदनशील रहे।

नए कीटों का जलवायु परिवर्त के हिसाब से जीवन चक्र का अध्ययन करना।

कीटों की जीवन तालिका तैयार करना व सभी कीटों का आर्थिक दृष्टि से अध्ययन करना।

नए कीटों के लिए प्रभावी मित्र कीटों पर अध्ययन करना।

क्षेत्र के हिसाब से मक्का की प्रतिरोधी सकंर किस्में तैयार करना।

क्षेत्रवार फसल चक्र/फसल प्रणाली पर अध्ययन करके मक्का में अंत फसलीकरण पर कार्य करना जिससे प्राकृतिक मित्र कीट की संख्या बढ़ सके और हानिकारक कीटों की संख्या को नीचे लाया जा सके।

प्रस्तावित फसल चक्र, अंत फसलीकरण व मिश्रित फसल फायदेमंद होनी चाहिए जिनको किसान आसानी से अपना सकें।

नई पीढ़ी की कीटनाशकों पर अनुसन्धान करना जिससे पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सके और कीट प्रबन्धन प्रभावशाली तरीके से हो सकें।

आभार

लेखक अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के कोइम्बटोर, वगराई, मांड्या, धारवाड़, कोल्हापुर, पेद्दापुरम केन्द्र एवं भाकृअनुपः राष्ट्रीय कृषि कीट संसाधन ब्यूरो का आभार प्रकट करते हैं।

उच्च उत्पादन वाले मक्का में अधिक जीन सक्रिय होते हैं:

चित्रः ग्रीन हाउस में प्रोफेसर डॉ फ्रैंक होचोलडिंगर एवं जुटा बलदौफ
श्रेयः बारबरा फ्रोम्मान्न, बॉन विश्वविद्यालय

जब दो मक्का की अन्तःप्रजात एक-दूसरे के साथ संक्रमण किया जाता हैं, तो एक दिलचस्प प्रभाव होता है: संकर संतति में दोनों जनक पौधों की तुलना में काफी अधिक उपज होती है। बॉन विश्वविद्यालय के फसल विज्ञान और संसाधन संरक्षण संस्थान में वैज्ञानिकों ने अब आनुवंशिक रूप से अनेक संकरों की जांच की है। उन्होंने दिखाया कि मूल जनकों की तुलना में संतति में कई अधिक सक्रिय जीन थे। ये परिणाम अधिक उपज देने वाली मक्का किस्मों की खेती में भी मदद कर सकते हैं। पादप प्रजनकों ने लंबे समय से जाना है कि विभिन्न अन्तःप्रजातों के संकरण से उपज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। हालांकि, इस तथाकथित ‘‘संकर ओज प्रभाव’’ के कारण काफी हद तक स्पष्ट नहीं हैं। प्रोफेसर डॉ. फ्रैंक होचोलडिंगर बताते हैं ‘‘हमने कुछ साल पहले एक विशिष्ट अन्तःप्रजात-संकर संयोजन पर करीब से नजर डाली। हम यह दिखाने में सक्षम थे कि संकर संतति में जनकों की तुलना में कई अधिक सक्रिय जीन हैं। लेकिन उस समय, हमें नहीं पता था कि क्या यह सिर्फ जनकों के इस विशिष्ट संयोजन पर प्रदर्शित होता है, या यह एक सामान्य तंत्र था?’’

वर्तमान अध्ययन में, वैज्ञानिकों ने इसलिए न केवल एक, बल्कि छह अलग-अलग अन्तःप्रजात-संकर संयोजनों की जांच की। चयन ऐसी पैतृक अन्तःप्रजातों का किया गया जो दूर से संबंधित थीं और समान रूप से पूरे मक्के के फायलोजेनेटिक वृक्ष में वितरित थीं। जुटा बलदौफ बताती हैं ‘‘हमने अब विश्लेषण किया है कि जनक पौधों में कौन से जीन अनुलेखित थे और कौन से संतति में थे।’’ इससे अपेक्षित निष्कर्षों की पुष्टि हुई।

मक्का के पौधों में प्रत्येक जीन के दो प्रकार होते हैं, जिन्हें एलील भी कहा जाता है। इनमें से एक एलील मादा जनक, दूसरा नर जनक से आता है। वे अक्सर समान रूप से सक्रिय नहीं होते हैं। एक प्रारूप को दूसरे की तुलना में अधिक बार प्रयोग में लिया जाता है। कुछ एलील पूरी तरह से अप्रभावी भी हो सकते हैं। जैसा कि अन्तःप्रजात के गुणन के समय, उनके अधिकांश जीनों के दो एलील समान होते हैं जिसमें कुछ असक्रिय भी होतो हैं। इसके कारण उन जीनों को स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, ये जीन एक अन्य अन्तःप्रजात में सक्रिय हो सकते हैं। यदि इन अन्तःप्रजातों को अब एक दूसरे के साथ संकरित किया जाता है, तो एक जनक के सक्रिय जीन दूसरे जनक के निष्क्रिय जीन के पूरक होते हैं और इन की संतती में प्रदर्शित होगें।

बलदौफ बताती हैं ‘‘हम संतति में अधिक सक्रिय जीनों की गिनती करते हैं।’’ वैज्ञानिकों ने आनुवंशिक लाभ को औसतन 500 से 600 अतिरिक्त सक्रिय जीनों में रखा। मक्का की आनुवांशिक सामग्री में कुल मिलाकर लगभग 40,000 जीन शामिल हैं। प्रोफेसर होचोलडिंगर कहते हैं, ‘‘एसपीई जीन की पूरकता, ऐसा कारक हो सकता है जिससे कि संकर अपने जनकों से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। एसपीई जीन की मदद से, हम उत्पादकों को आनुवंशिक मार्करों के साथ पौधे प्रदान करते हैं। इन मार्करों के आधार पर विशिष्ट संकरण जनक भागीदारों का चयन करना संभव हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप विशेष रूप से उच्च उपज देने वाले संकर हो सकते हैं।‘‘ बढ़ती दुनिया की आबादी के दीर्घकालिक पोषण के लिए ये बेहद महत्वपूर्ण हैं जिसमें विशेषज्ञों का अनुमान है कि कृषि पैदावार में 70 फीसदी की बढ़ोतरी हो सकती है।

सौजन्यः Current Biology, 2018

रबी मक्का की फसल में मँजरी निकलने के उपरांत तना गलन (*फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स*) का प्रकोप: दक्षिणी राजस्थान के परीदृश्य से

प्रशांत पी. जाम्भूलकर*, प्रमोद रोकडिया, रमेश बाबु, हरगिलास एवं आर. के. कल्याण
कृषि अनुसंधान केंद्र, बाँसवाड़ा, राजस्थान
*संवादी लेखक का ई-मेलः ppjambhulkar@gmail.com

मक्का खाद्यान्न फसलों में गेहूं व धान के बाद विश्व की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। औद्योगिक स्तर पर मक्का से कई उत्पाद बनाये जाते है साथ ही विकासशील देशों में यह एक मुख्य खाद्यान्न है। इस तरह विविध उपयोगिता वाली मक्का की फसल विभिन्न वातावरण तथा कृषि की भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में भी अधिक उत्पादन देती है। यह खूबी मक्का की अनुवांशिक उपज क्षमता को दर्शाती है। मक्का की फसल मुख्यतः खरीफ की फसल है जो संपूर्ण उत्तर भारत में उगाई जाती है। रबी के मौसम में मक्का प्रायद्वीपीय भारत, राजस्थान तथा बिहार में उगाई जाती है। भारत में रबी मक्का करीब 15 लाख हेक्टेयर में उगाई जाती है तथा 4134 किलो/हेक्टेयर उत्पादकता के साथ कुल उत्पादन 61.4 लाख टन है। रबी मक्का उत्पादकता के हिसाब से प्रमुख राज्य आंध्र प्रदेश (7203 किलो/हे.), पश्चिम बंगाल (5463 किलो/ हे.), तेलंगाना (4840 किलो/हे.), राजस्थान (4716 किलो/हे.), बिहार (3848 किलो/हे.) तथा कर्नाटक (3088 किलो/हे.), है (DACNET 2016)। राजस्थान में रबी मक्का मुख्यतः दक्षिणी राजस्थान के जनजातीय आबादी बाहुल बाँसवाड़ा जिले में उगाई जाती है। यहाँ के जलवायु उष्ण आर्द्र है व् शीत ऋतु में तापमान में अधिक गिरावट नहीं पाई जाती। इस मौसम में दिसम्बर से मार्च महीने तक निम्नतम तापमान 10^{0} से 14^{0} सेल्सियस के बीच रहता है। इस दौरान मौसम में आर्द्रता 80.85 % रहती है। यह जलवायु मक्का उत्पादन हेतु उपयुक्त है।

दक्षिणी राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले में रबी मक्का का बुवाई क्षेत्र करीब 50,000 हेक्टेयर है तथा औसत उत्पादकता 7.2 टन प्रति हेक्टेयर है। प्रति वर्ष रबी मक्का के अंतर्गत क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। बाँसवाड़ा जिले में रबी मक्का की फसल में मँजरी निकलने के उपरांत तना गलन रोग एक महतवपूर्ण समस्या है। इस रोग का कारक *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* नामक कवक है। इस रोग से प्रति वर्ष 15% नुकसान हो रहा है। समय पर उचित उपचार के अभाव में 100% तक फसल नष्ट हो जाती है।

बाँसवाड़ा में रबी मक्का पूर्णतया सिंचाई पर आधारित है। वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर मँजरी निकलने की अवस्था के दौरान फसल में सिंचाई की कमी तथा अधिक तापमान, तना गलन रोग को बढाता है। रोग के कारक कवक को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण मिलने के कारण बाँसवाड़ा में बोई जाने वाली कई किस्मों में इस रोग के प्रति प्रतिरोधकता का अभाव पाया गया है। स्थानीय कृषि अनुसन्धान केंद्र के पौध व्याधि वैज्ञानिक के आकलनानुसार *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* तना गलन रोग का मुख्य कारक है (चित्र 1) ।

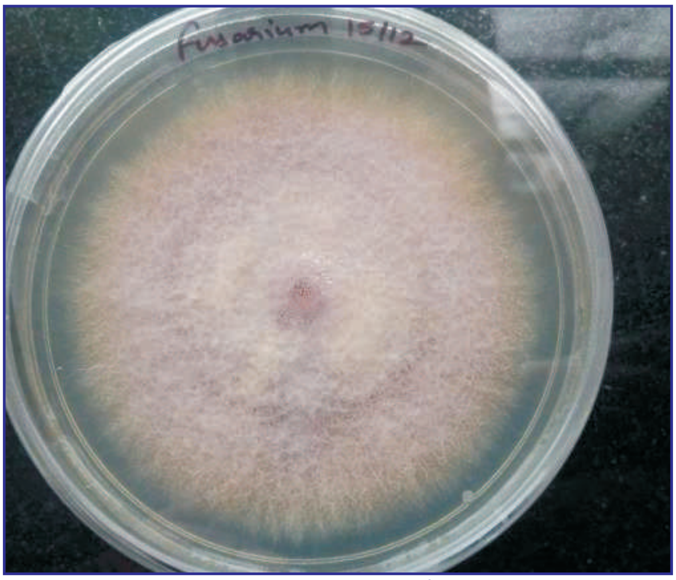

चित्र 1 : *फ्युसारियम वर्टिसिलोइड्स* कवक

फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स फ्युमोनिसिन नामक विषैला पदार्थ उत्सर्जित करता है जिसका मनुष्यों एवं जानवरों पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। फ्युमोनिसिन विषाक्तता से होने वाले नुकसान को रोकने हेतु विकसित देशों में पर्याप्त तकनीकी संसाधन उपलब्ध है परन्तु भारत जैसे विकसनशील देशों में एवं विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों में जीवन निर्वाह खेती की स्थिति में किसान एक ही फसल की उपज पर निर्भर रहते है

जिससे वह कवक ग्रसित फसल उपज निरंतर खाने से विषैले पदार्थों का दुष्प्रभाव हो सकता है। इन दुष्प्रभावों में भोजन नलिका का कैंसर तथा बच्चों में बौनापन शामिल है। *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* एवं मक्का के साहचर्य को देखते हुए उनके अनुवांशिक अनुकूलन कवक निर्मित विषाक्तता कम करने की कार्यनीति तैयार की जा सकती है।

फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स कवक मक्का के अवशेषों पर पनपता है तथा यह करीब 630 दिनों तक इन अवशेषों पर मिट्टी की सतह अथवा नीचे ($\leq$30 से.मी.) रह सकता है। मिट्टी की सतह के नीचे फसल अवशेषों पर *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* का कवक लगातार घटता जाता है परन्तु इसके विपरीत सतह पर कवक का धीरे धीरे क्षय होता है। इससे यह पता चलता है कि खेत में उपस्थित फसल अवशेष *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* के कवक बीजाणुओं का संग्रह स्थल है। कवक के बीजाणु रोग ग्रसित पौधे की जड़ो से होते हुए द्रव्य नलिका को संक्रमित करते हैं परन्तु 30 दिनों तक रोग के लक्षण उजागर नहीं होते, इसलिए इस रोग का प्रबंधन खड़ी फसल में कठिन है। साथ ही रोग के कवक बीजाणु मँजरी निकलने की अवस्था में भुट्टों के दानों पर भी संक्रमण करते हैं। मँजरी निकलने के पूर्व शुष्क वातावरण में शस्य क्रियाओं के दौरान होनेवाले आघात तथा तना छेदक कीट प्रकोप से कवक बीजाणु संक्रमण करते हैं। तना गलन रोग का कवक *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* कीट प्रकोप द्वारा निर्मित घाव से संक्रमित होकर प्रसारित होता है अतः बी.टी. मक्का की किस्म तैयार कर इस रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

चित्र 2 : तना गलन ग्रसित खेत

अनुकूल वातावरण एवं कवक बीजाणुओं का घनत्व मक्का में *फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स* का प्रकोप निर्धारित करता है। कवक बीजाणुओं के उत्सर्जन हेतु वातावरण का तापमान 30^{0} सेल्सिअस उपयुक्त होता है।

इस रोग का प्रकोप मँजरी निकलते समय होता है। यह कवक मृदा जनित है तथा जिन मक्का की किस्मों के बीज में रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी होती है उस फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देते है (चित्र 2) । यह कवक पौधे की द्रव्य एवं भोजन वाहिका पर आक्रमण करता है जिससे तने के अंतिम छोर से गलन की शुरुआत होती है (चित्र 3) ।

चित्र 3 : फ्युसारियम वर्टिसिलोइड्स कवक से ग्रसित मक्का का तना

पौधे को जल एवं पोषक तत्वों की आपूर्ति बाधित हो जाती है जिससे पौधा तुरंत सूख जाता है। खड़ी फसल में रोग का प्रबंधन अत्यंत कठिन है अतः बुवाई पूर्व कुछ बिन्दओं को ध्यान में रखते हुए इस रोग से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। कृषि अनुसन्धान केंद्र बाँसवाड़ा में जारी परीक्षणों के परिणामों के आधार पर इस रोग की रोकथाम हेतु किसानों के लिए प्रावेधिक सुचना जारी की है जो इस प्रकार है।

- सर्वप्रथम उन्नत किस्मों के रोग रोधी किस्मों का बुवाई हेतु उपयोग करें।
- सिफरिशानुसार पोटाश युक्त संतुलित उर्वरक देवें।
- फसल की क्रांतिक अवस्था में सिंचाई करें एवं खेत में पानी जमा न होने देवें।

साथ ही तना गलन रोग के प्रादुर्भाव को कम करने हेतु अन्य तथ्यों एवं सावधानियों का पालन अत्यावश्यक है। सामान्यतः जनजातीय क्षेत्र के किसान खाद्यान्न के रूप में मक्का पर सर्वाधिक निर्भर रहते है अतः वह प्रतिवर्ष निरंतर मक्का की खेती करते है। अतः फसल चक्र के अभाव में खेत में उपलब्ध फसल अवशेषों पर

- भूमि उपचार हेतु ट्राईकोडर्मा संवर्धित गोबर खाद का प्रयोग करें। एक हेक्टेयर खेत के ट्राईकोडर्मा संवर्धित गोबर खाद द्वारा भूमि उपचार हेतु 2 टन गोबर खाद में एक किलो ट्राईकोडर्मा फार्मूलेशन मिलाएं। नमी हेतु पानी छिडकें तथा अच्छी तरह से मिलाकर खाद के ढेर को प्लास्टिक तिरपाल से ढक देवें। 20-25 दिनों पश्चात् ट्राईकोडर्मा संवर्धित गोबर खाद को खेत में बिखेरें एवं ट्राईकोडर्मा फार्मूलेशन 8-10 ग्राम/किलो बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें।
- बुवाई के 50 दिन पश्चात् मक्का की कतारों में ट्राईकोडर्मा फार्मूलेशन 10 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर मक्का की कतारों में ड्रेन्चिंग कर रोग की रोकथाम की जा सकती है।
- इसके अलावा खड़ी फसल में कार्बेन्डाजिम 12:+ मेन्कोजेब 63: 2 ग्राम/लीटर पानी के घोल से मँजरी निकलने पर 10 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

फ्युजेरियम वर्टिसिलोइड्स कवक पनपता है तथा अनुकूल वातावरण प्राप्त होते ही प्रकोप बढ़ता जाता है। इसलिए किसानों को हर 3-4 वर्ष उपरांत फसल चक्र अपनाना चाहिए। यह फसल चक्र कम से कम दो वर्ष का होना चाहिए। ज्ञान के अभाव में या अधिक फसल उत्पादन की लालसा में किसान सघन खेती करता है। अनुसन्धान केंद्र के प्रावेधिक सूचनानुसार कतार से कतार की दूरी 60 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 सेंटीमिटर होनी चाहिए। सघन बुवाई करने से प्रति पौध अपर्याप्त रौशनी के साथ साथ अपर्याप्त पोषक तत्व प्राप्त होते है तथा पौधे के आसपास की सूक्ष्म जलवायु में अधिक तापमान एवं आर्द्रता से पौधे कमजोर एवं रोग के प्रति संवेदनशील हो जाते है।

फाल आर्मीवर्म की खेत में पहचान और किसानों के लिये तत्काल प्रबन्धन की उचित विधि

एस.बी. सूबी*, पी. लक्ष्मी सौजन्या, महासिंह जागलान, ज्वाला जिंदल, एम.एल.के. रैडी, शुशांत माहदीक, पुत्तरम नाईक, रवि केसवन, सुजय रक्षित एवं जे.सी. शेखर
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना
*संवादी लेखक का ई-मेलः subysb@gmail.com

फाल आर्मीवर्मः एक अर्न्तराष्ट्रीय कुख्यात कीट

फाल आर्मीवर्म (*स्पोडोपटेरा फरूजीपरडा़* जे. ई. स्मिथ), एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का काफी फसलों को नुकसान पहुँचाने वाला कीट है। परन्तु यह कीट मक्का को बहुत अधिक नुकसान पहुँचाता है। इस कीट ने भारत में भी प्रवेश कर लिया है और दक्षिण भारत में कोहराम मचा दिया है। भारत में सर्वप्रथम इस कीट का प्रकोप मई, 2018 में कर्नाटक में पाया गया था। फाल आर्मीवर्म मक्का की खेती करने वाले छोटे किसानों के लिए मुख्य समस्या बन सकता है। यह कीट मुर्गी फीड और मक्का प्रोसैसिंग उद्योगों के लिए, जिसमें मक्का की सर्वाधिक खपत होती है, के लिए आने वाले समय में खतरे की घंटी है। फाल आर्मीवर्म मूल रूप से अमेरिका का कीट है जो कि सभी पश्चिमी देशों (दक्षिणी कनाडा से चिल और अर्जेटिना) में फैल गया है। अफ्रीका में, यह कीट सर्वप्रथम 2016 में पाया गया था और मक्का पर इस कीट ने काफी नुकसान पहुँचाया। शुरू में यह कीट अफ्रीका के चार देशों में पाया गया और वर्ष 2018 तक यह कीट उप सहारा अफ्रीका के 44 देशों में मक्का और धान में फैल गया। एक अनुमान के अनुसार, अफ्रीका में अगर इस कीट के नियन्त्रण के लिए अगर कोई ठोस उपाय न अपनायें जायें तो इस स्थिति में फाल आर्मीवर्म मक्का में 21-53 प्रतिशत नुकसान पहुँचा सकता है। फाल आर्मीवर्म एक बहु भक्षी कीट है जो कि 27 वर्गीय फसलों में 80 से भी अधिक फसलों को नुकसान कर सकता है। यह कीट ग्रेमीनी कुल (वर्ग) की फसलों पर विषेष रूप से मक्का और अन्य महत्वपूर्ण फसलों जैसे धान, ज्वार, गन्ना, गेहूँ, लोबिया, आलू, मूंगफली व सोयाबिन को नुकसान करता है। फाल आर्मीवर्म की दो उप-प्रजातियां हैं। एक उप-प्रजाति मक्का पर नुकसान करने वाली है जो कि मुख्य रूप से मक्का, कपास, ज्वार की फसलों को नुकसान करती है और दूसरी धान पर नुकसान पहुँचाने वाली है जो कि धान, चरागाह और घास वाली फसलों को नुकसान पहुँचाती है।

कीट की पहचान कैसे करें

इस कीट की सूण्डी अवस्था ही पौधों को नुकसान पहुँचाती है और सूण्डी को किसान आसानी से पहचान सकते हैं। फाल आर्मीवर्म सूण्डी की चमड़ी समतल व चिकनी होती है। सूण्डी कई रंग की होती है जो कि हल्के पीले भूरे या हरे से लगभग काला होता है। सूण्डी के शरीर पर हल्के भूरे से पीले रंग की तीन धारियां होती है (चित्र 1, अ, ब, स)। इस कीट की सूण्डी के सिर पर साफ दिखाई देने वाला सफेद, अंग्रेजी के अक्षर उल्टी 'Y' के आकार का निशान आँखों के बीच में दिखाई देता है (चित्र 1, डी)। फाल आर्मीवर्म की सूण्डी को दूसरे आर्मीवर्म की प्रजातियों से अलग पहचान के लिए, इस कीट की सूण्डी के 8 वें व 9 वें उदरीय खण्ड पर धब्बों के आधार पर पहचान कर सकते हैं। इस कीट की सूण्डी के 8 वें व 9 वें उदरीय भाग पर धब्बे दूसरे उदरीय भाग की बजाये बड़े होते हैं। 8 वे भाग पर चकोर चतुर्भुज के आकार में होते हैं और 9वें उदरीय भाग पर विषम चतुर्भुज के आकार में होते हैं (चित्र 1 ई, एफ)।

इस कीट को किसान फिरोमोन पिंजरे में पकड़ी गई नर प्रौढ़ तितली की निम्न विशेषता के आधार पर भी पहचान सकते हैं। प्रौढ़ के पंख पर हल्के पीले रंग का धब्बा और पंख पर सफेद पट्‌टी पाई जाती है (चित्र 2 अ)। फाल आर्मीवर्म के अण्डे का गुच्छा पीले भूरे रंग के बालों से ढ़का हुआ होता है (चित्र 2 ब) । परन्तु यह दूसरे स्पोडोपटरा प्रजाति के कीटों का भी आम गुण है।

फसल पर कीट के प्रकोप के लक्षण व क्षति रूप

सूण्डी मक्का के पत्तों को नुकसान करती है और नर मजंरी या भूट्टे पर भी नुकसान कर सकती है। शुरूआत में पत्तों पर पिन के आकार के छोटे-छोटे सुराख दिखाई देते हैं। इसके इलावा छोटी सूण्डियों द्वारा ग्रसित पत्तों पर पारभासी झिल्ली जैसे या कागज जैसे लम्बे सुराख पाये जाते हैं (चित्र 3 अ)। बड़ी सूण्डियों द्वारा पत्तों पर ग्रसित अनियमित

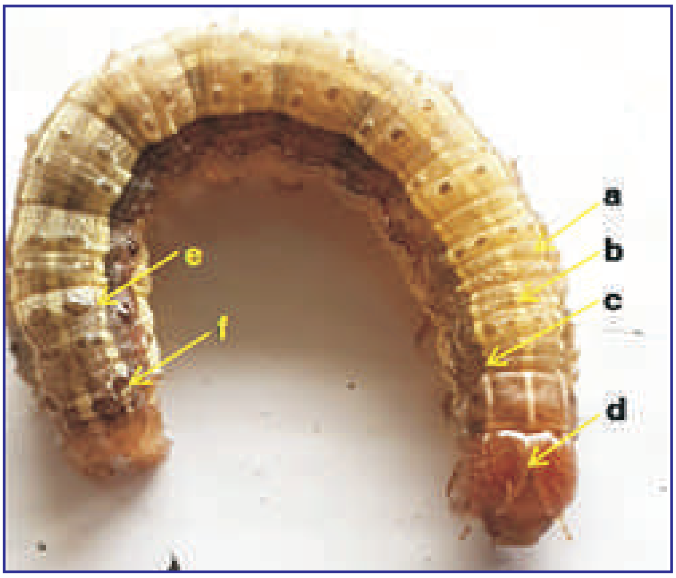

चित्र 1 : फाल आर्मीवर्म की पांचवी अवस्था की सूण्डी जिस पर तीन हल्के भूरे से पीले रंग की धारियां (चित्र 1, अ, ब, स), सिर पर अंग्रेजी के अक्षर उल्टी 'Y' के आकार का सफेद निशान (चित्र 1, डी), बड़े निशान चकोर चतुर्भुज(चित्र 1, ई), विषम चतुर्भुज (चित्र 1, एफ)

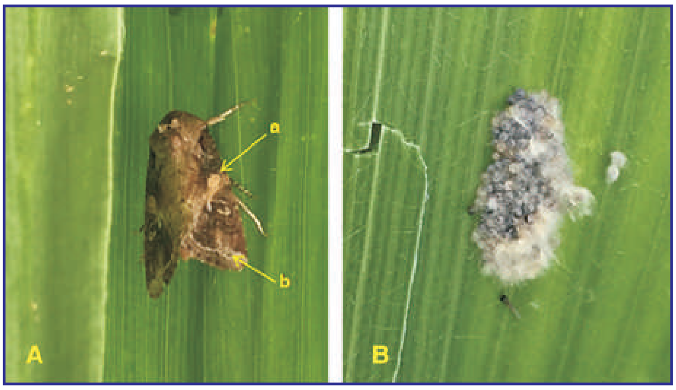

चित्र 2 : फाल आर्मीवोर्म का प्रौढ़ (अ) व अण्डे का समूह (ब)

चित्र 3 : छोटी सूण्डियों द्वारा ग्रसित पत्तों (चित्र 3 अ), बड़ी सूण्डियों द्वारा पत्तों टेढ़े-मेढ़े सुराख मिलते हैं (चित्र 3 ब)।

टेढ़े-मेढ़े सुराख मिलते हैं (चित्र 3 ब)। सूण्डी पौधों की गोभ में भी काफी मात्रा में मलमूत्र छोड़ती है।

फाल आर्मीवर्म कीट को कब और कैसे नियन्त्रण करें

उचित प्रबन्धन के लिए इस कीट का निरिक्षण फसल उगने के तुरन्त बाद ही शुरू कर देना चाहिये और रोकथाम का मकसद शुरूआती प्रकोप दिखाई देते ही होना चाहिये। इस कीट के प्रौढ़ मक्का के उगने के तुरन्त बाद ही छोटे-छोटे पौधों पर अण्डे देती है। फसल की छोटी अवस्था में ही यह कीट अधिक नुकसान करता है। इसलिए इस कीट के प्रकोप का जल्दी से जल्दी पता लगाने के लिए मक्का के खेत में फिरोमोन पिंजरा 5 नग प्रति एकड़ बिजाई के तुरन्त बाद लगाएं। इस कीट का प्रकोप भारत में हाल ही में देखा गया है और दक्षिण भारत में आर्थिक नुकसान करते हुए पाया गया है इसलिए फिरोमोन पिंजरे से सभी क्षेत्रों में निरिक्षण के लिए अधिक समय लग सकता है। परन्तु फाल आर्मीवर्म का निरिक्षण मक्का के सभी कास्त क्षेत्रों में आवश्यक है।

शोध से ज्ञात हुआ है कि अगर तीन प्रौढ़ प्रति पिंजरा लगातार तीन दिन तक पाए जाते हैं तो पहला स्प्रे दस दिन के अन्दर अवश्य करें। खेत में कीट का निरिक्षण दूसरा तरीका है, जिसमें प्रति एकड़ पाँच अलग-अलग स्थानों पर 20 पौधे प्रति स्थान पर फाल आर्मीवर्म द्वारा ग्रसित पौधों की गिनती करें। अगर 10 प्रतिशत पौधों पर पिन के आकार के छोटे-छोटे या पारभासी झिल्ली जैसे सुराख पायें जायें तो 10 दिन के अन्दर स्प्रे अवश्य करें। इस अवस्था पर इस कीट को पर्यावरण हितैषी कीटनाशकों से आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है। इस अवस्था पर नीम की निबोली का घोल 5 प्रतिशत या अजडेरेक्टीन 1500 पी.पी.एम. (नीम तेल), 5 मि.ली. प्रति लीटर की दर से पानी में मिला कर स्प्रे करें। नीम की निबोली का घोल या तेल फाल आर्मीवर्म के अण्डों को मारता है और नवजात सूण्डी को भी मारता है। अगर पत्तों पर बड़े-बड़े सुराख, टेढ़े-मेढ़े सुराख और गोभ में भी कीट का आक्रमण दिखाई दे तो नियन्त्रण के उपाय बदलने की आवश्यकता है। हमारे कीट नियन्त्रण विशेषज्ञों ने किसानों के परामर्श से इस कीट के उचित प्रबन्धन के लिए विभिन्य कीट नियन्त्रण विधि तैयार की हैं जो कि प्रभावकारी और कम खर्चीली है और निम्नलिखित हैं (तालिका 1)।

जैविक कीट नियन्त्रण: मित्र कीट की पहचान कैसें करें

फाल आर्मीवर्म कीट का प्रकोप जिस भी क्षेत्र में होता है वहीं पर एक कीटनाशी फफूंदी, नामूरैया रिल्ली, इस कीट पर पाई गई है (चित्र 4)।

तालिका 1: फाल आर्मीवर्म के नियन्त्रण उपायों की वैद्यता और उनकी आर्थिक व पर्यावरण विशेषता

नियन्त्रण उपाय	कीट प्रकोप के लक्षण और फसल अवधि के अनुसार उपचार	कीटनाशक के कार्य का तरीका	प्रभावकारिता	उपलब्धता	मात्रा प्रति एकड़ व खर्च प्रति एकड़	पर्यावरण हितैषी
रेत/रेतली मिट्टी/मिट्टी के घोल का प्रयोग	फसल के उगने के तुरन्त बाद से घुटने तक फसल होने पर (नर मजंरी अवस्था से पहले तक)। कीट प्रकोप से पहले और कागजी सफेद सुराख से पत्तियों पर लम्बे सुराख दिखाई देने पर	छोटी सूण्डी की कोमल त्वचा पर रगड़ व शुष्कता के कारण	छोटी सूण्डी पर बहुत प्रभावशाली है	खेत में ही उपलब्ध	केवल श्रमिक खर्च	*****
5% नीम की निबोली का घोल	फसल की किसी भी अवस्था में कीट प्रकोप का लक्षण दिखाई देने पर या पत्तियों पर सफेद कागजी छोटे सुराख दिखाई देने पर	अण्डे, नवजात सूण्डी और सूण्डी की छोटी अवस्था को मारती है	सूण्डी की छोटी अवस्था पर बहुत प्रभावशाली है	नीम की निबोली की उपलब्धता और घोल बनाने का समय	नीम की निबोली की कीमत, दर 10 किलो प्रति एकड़+ श्रमिक खर्च	****
एजेडिरेक्टीन 1500 पी.पी.एम.	फसल की किसी भी अवस्था में कीट प्रकोप का लक्षण दिखाई देने पर या पत्तियों पर सफेद कागजी छोटे सुराख दिखाई देने पर	अण्डे, नवजात सूण्डी व सूण्डी की छोटी अवस्था को मारती है	सूण्डी की छोटी अवस्था पर बहुत प्रभावशाली है	अधिकृत कीटनाशक विक्रेता	एक लीटर प्रति एकड़, कीमत रू. 500+श्रमिक खर्च	****
डेलफिन 5 डब्लयू.जी. (बेसिलस थूयरी जिनेसिस किस्म कुरस्टाकी)	फसल की किसी भी अवस्था पर या शुरूआती लक्षण से पत्तों पर बड़े अनियमित टेड़े-मेढ़े सुराख होने पर	सूण्डी की सभी अवस्थाओं को मारती है	सूण्डी की सभी अवस्थाओं पर प्रभावशाली व लम्बे समय तक असरदार है	अधिकृत कीटनाशक विक्रेता	400 ग्राम प्रति एकड़, कीमत रू. 1400 + श्रमिक खर्च	****
थाओडिकार्ब 75% घु.पा. से लेपित जहरीली गोली	गोभ की अवस्था से नर मजंरी अवस्था से पहले तक व गोभ में अधिक प्रकोप होने पर प्रभावी	गोभ में दवाई डालने पर सूण्डी की सभी अवस्थायें खासकर बड़ी सूण्डियां भी मर जाती है	बहुत प्रभावशाली है। जिन खेतों में स्प्रे से उचित कीट नियन्त्रण नहीं हो पाता, उस अवस्था के लिए सूण्डी की बड़ी अवस्था पर प्रभावशाली है या जब कीट प्रकोप छोटे-छोटे टुकड़ों में है	--	100 ग्राम प्रति एकड़, कीमत रू.360+800 धान छिलका, गुड़+श्रमिक खर्च	****

सपाईनोसेड 48 एस.सी., 45 एस.सी.	फसल की किसी अवस्था पर व पत्तों पर बड़े अनियमित टेड़े-मेढ़े सुराख होने पर अधिक कारगर	सूण्डी की सभी अवस्थाओं को मारती है	सूण्डी की छोटी अवस्था पर बहुत प्रभावशाली है	अधिकृत कीटनाशक विक्रेता	60-75 मि.ली. प्रति एकड़, दर 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी, कीमत रू.1400+श्रमिक खर्च	***
ईमामैक्टिन बैनजोएट 5 एस.जी.	फसल की किसी अवस्था पर व पत्तों पर बड़े अनियमित टेड़े-मेढ़े सुराख होने पर अधिक कारगर	सूण्डी की सभी अवस्थाओं को मारती है	सूण्डी की छोटी अवस्था पर बहुत प्रभावशाली है		80 ग्राम प्रति एकड़, दर 0.4 मि.ली. प्रति लीटर पानी, कीमत रू. 350, श्रमिक खर्च	***
थाआमिथोक्जाम 12.6%+लैमडा साईहैलोथ्रीन 9.5%	फसल की किसी अवस्था पर व पत्तों पर बड़े अनियमित टेड़े-मेढ़े सुराख होने पर अधिक कारगर	सूण्डी की सभी अवस्थाओं को मारती है	सूण्डी की छोटी अवस्था पर बहुत प्रभावशाली है	अधिकृत कीटनाशक विक्रेता	100 मि.ली. प्रति एकड़, दर 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी, कीमत रू. 315+श्रमिक खर्च	***
क्लोरनटेरनीलीपरोल 18.5 एस.सी.	फसल की किसी अवस्था पर व पत्तों पर बड़े अनियमित टेड़े-मेढ़े सुराख होने पर अधिक कारगर	सूण्डी की सभी अवस्थाओं को मारती है	सूण्डी की छोटी अवस्था पर बहुत प्रभावशाली	अधिकृत कीटनाशक विक्रेता	60 मि.लि. प्रति एकड, दर 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी, कीमत रू. 900+श्रमिक खर्च	

***** गोभ में पाए जाने वाले मित्र कीटों के लिए सुरक्षित

*** मित्र कीटों व खेत में दूसरे जन्तुओं (मकड़ी, केचुआ आदि) के लिए कुछ हद तक सुरक्षित

** गोभ में पाए जाने वाले मित्र कीट व परागण वाले कीटों के लिए नुकसानदायक

10 किलो धान का चोकर, 2 किलो गुड़, 2 से 3 लीटर पानी में मिलाएं। इस घोल को 24 घण्टे खमीर बनने के लिए रखें व इसमें 100 ग्राम थायोडिकार्ब 75 प्रतिषत घु.पा. खेत में प्रयोग करने से आधे घण्टे पहले मिलाएं और छोटी-छोटी गोली बनाएं। गोली पौधों की गोभ में रखें।

आर्थिक व पर्यावरण विशेषता के आधार पर किसानों के लिए तत्काल प्रबन्धन की उचित विधि निम्न है:

कीट प्रकोप के लक्षण और फसल अवधि अनुसार उपचार	तत्काल प्रबन्धन विधि
1) बिजाई के बाद, तीन प्रौढ़ प्रति एकड़ ट्रैप में पहली बार मिलने पर या फसल की छोटी अवस्था में पौधों पर 10% कीट आक्रमण होने पर	1) 5% नीम की निबोली का घोल या एजेडेरेक्टिन 1500 पी.पी.एम. दर 5 मि. ली. प्रति लीटर पानी में स्प्रे करें। यह स्प्रे अण्डे व नवजात सूण्डी के मारने के लिए कारगर है। मक्का उगने से घुटने तक अवस्था में रेत/रेतली मिट्टी डालें।
2) 10% नुकसान बिजाई के बाद, अनियमित टेड़े-मेढ़े सुराख होने पर	2) इमामेक्टिन बैनजोएट 5 एस.जी. 80 ग्रामध्एकड़ या डेलफिन डब्लयू.जी. 400 ग्रामध्एकड़ और गोभ में रेतध्रेतली मिट्टी डालें। यह कीटनाषकों के असर को बढ़ाएगा।
3) मक्का की घुटने तक अवस्था से नर मंजरी बनने की अवस्था तक, 10-20% नुकसान होने पर या जब कीट का प्रकोप छोटे-छोटे टुकड़ों में हो	3) गोभ में जहरीली गोली (थायोडिकार्ब 75 डब्लयू.पी. से बनी) डालें। यह विधि मित्र कीटों के लिए अधिक हानिकारक नहीं है।

कीटनाशी फफूंद द्वारा ग्रसित मरी हुई सूण्डी सख्त, कठोर व शरीर पर हरी सफेद चूर्णीत परत पाई जाती है। किसान इन सूण्डियों को इक्कट्ठा करके, पीसकर और पानी में मिलाकर (1 सूण्डी/लीटर पानी) स्प्रे कर सकते हैं। इस कीट को काफी परजीवी भी नियंत्रित करते हैं। जैसे *ट्राइकोर्डामा परीटियोसम* और *टैलिनोमस रिमस* इस कीट के अण्डे को मारते हैं। *गलिपटापन्टलिस करिटोनोटी* और *कमपोलिटिस क्लोरीडी* सूण्डी को मारती है। अगर इन्हें ध्यान से देखें तो मरे हुए अण्डे के समूह काले रंग के मिलेंगे और अण्डों से सूण्डी निकली मिलेगी। सूण्डी के शरीर पर सफेद कवच एकत्र हुआ मिलेगा। जब कीट की संख्या खेत में कम हो और परजीवी मित्र कीट सक्रिय हो तब रासायनिक कीटनाशकों का स्प्रे न करें और नीम के घोल से प्राकृतिक नियन्त्रण करें। इस समय बैक्टीरिया व फफूंद से बनी कीटनाशक दवाओं जैसे *बेसिलस थयुरिजैनिसिस* किस्म कुरस्टाकी और *नामूरैया रिल्ली* का स्प्रे कर सकते हैं।

चित्र 4: फाल आर्मीवर्म की सूण्डी पर *नोमुराई रिलेयी* फफूंद का हमला

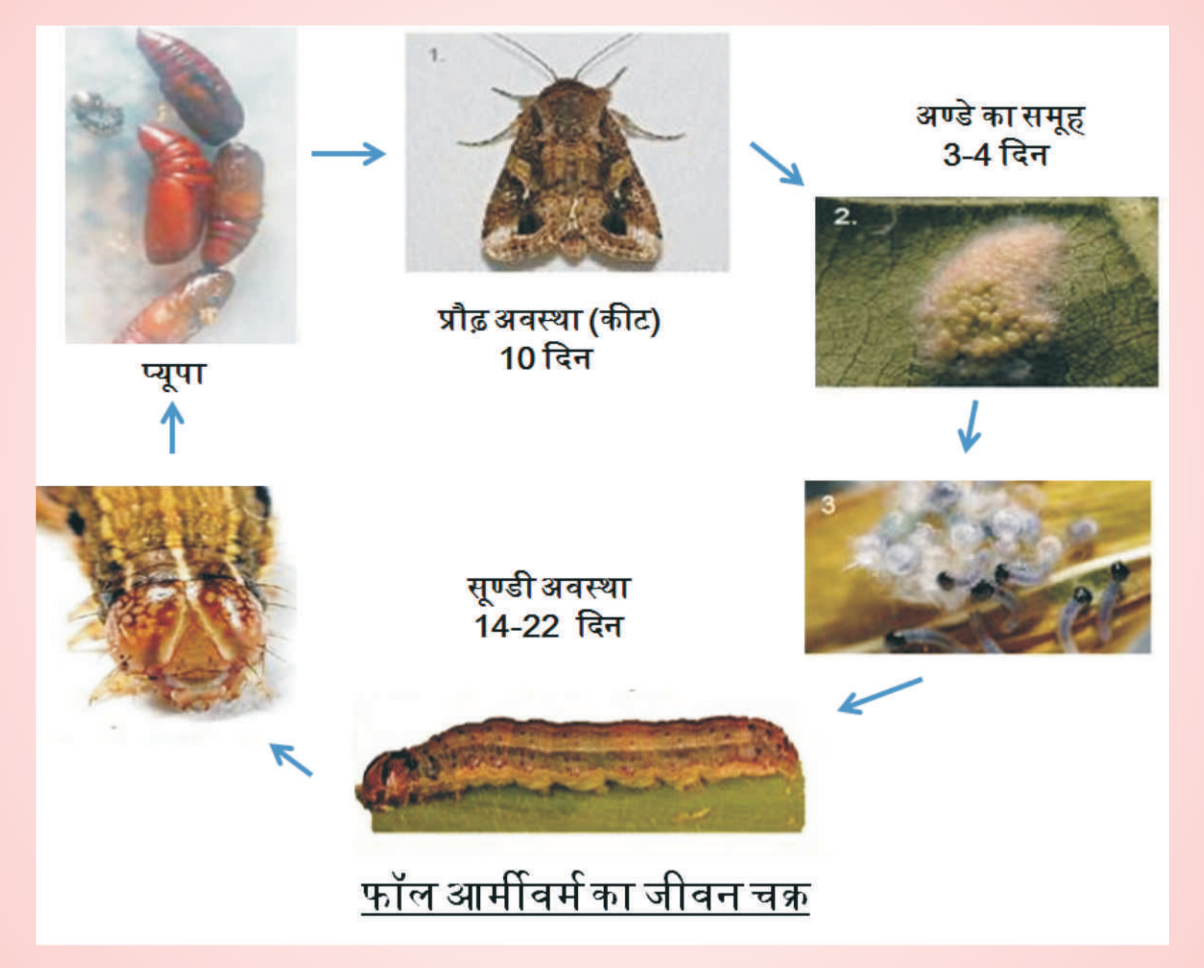

भविष्य में संरक्षण कृषिः चुनौतियाँ एवं संभावनाएं

सीमा भारद्वाज*, आर.एस.चौधरी, जे. सोमसुंदरम, एम.मोहंती, प्रभात त्रिपाठी, आर.के. सिंह, एवं एन.के सिन्हा

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

*संवादी लेखक का ई-मेलः sseema26@rediffmail.com

विश्व में जनसंख्या वृद्धि से खाद्यान्न सुरक्षा एक चिंता का विषय बनी हुयी है। गत दशकों में फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती में संसाधनों का अत्यधिक, असंतुलित और अनुचित उपयोग किया जा रहा है। परिणामस्वरूप आज स्थिति यह है कि संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । परंपरागत खेती के कारण भूमि के उपजाऊपन एवं फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की कमी, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट, खेतों में खरपतवारों का बढ़ता प्रकोप, बिगड़ती मृदा समतलता, मृदा लवणीयता, खाद्य पदार्थों में हानिकारक कृषि रसायनों की उपस्थिति, बिगड़ता मृदा स्वास्थ्य, मौसम की विषमताएं तथा उत्पादकता में स्थिरता अथवा कमी जैसी समस्याएं सामने आ रही हैं। साथ ही संसाधनों के असंतुलित उपयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में लगातार वृद्धि हो रही है। जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय में एक चिंतनीय विषय बनता जा रहा है जिसके कारण असमय वर्षा, अनियमित वर्षा जल का वितरण,असमय तापमान का एकाएक से बढ़ना, ओलावृष्टि, अतिवृष्टि, कीट व बीमारियों का प्रकोप इत्यादि जैसी कई गंभीर समस्याएं विश्वव्यापी हैं। भारत में भू-जल का दोहन अधिक होने से अधिकांश हिस्सों में भू-जलस्तर वर्ष दर वर्ष नीचे जाता जा रहा है जो कि भविष्य में कृषि हेतु एक गंभीर समस्या हैं । कई राज्यों में भू-जलस्तर खतरे के निशान से नीचे जा चुका है फिर भी वहां ज्यादा पानी की मांग वाली फसलें जैसे धान एवं गन्ना इत्यादि की खेती निरन्तर की जा रही है जिससे हरियाणा,पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश भी अछूता नहीं है। फलस्वरूप मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसके अलावा खेती में बढ़ती उत्पादन लागत और किसानों की घटती आय चिंता का विषय बनी हुई है। बढ़ते शहरीकरण,उद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण की वजह से कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनों-दिन घटता जा रहा है। भविष्य में इसके बढ़ने की सम्भावना नगण्य है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु यह अत्यधिक आवश्यक हैं कि खेती की ओर ध्यान देना चाहिए जिससे प्राकृतिक संसाधनों का इष्टत्म उपयोग हो एवं मृदा का स्वास्थ्य बना रहे। अतः भविष्य में कृषि के स्थायित्व हेतु आवश्यक हैं कि प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रबन्धन किया जाए।

संरक्षण कृषि

यह कृषि की वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत संसाधन संरक्षण तकनीक की सहायता से टिकाऊ उत्पादन स्तर के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुये फसल उत्पादन लिया जाता है। संरक्षण खेती मृदा की ऊपरी व निचली सतह के अन्दर प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है।

संरक्षण कृषि तीनों सिद्धान्तों पर आधारित है जिसमे न्यूनतम जुताईं, स्थायी रूप से मिट्टी को आच्छादित करना तथा फसल विविधिकरण द्वारा फसल उत्पादन के स्तर को स्थायी रखना सम्मिलित है। संरक्षण खेती प्रणाली में किसी स्थान की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार उपलब्ध संसाधनों का ईष्टतम उपयोग एवं संरक्षण करते हुये स्थायी फसल उत्पादन लेने के लिए नवीनतम तकनीकें विकसित की जा रही हैं।

संरक्षण कृषि में न्यूनतम जुताई की जाती है जिससे फसल अवशेष मृदा की सतह पर बने रहते हैं। यह आवरण मृदा को वर्षा, धूप इत्यादि के हानिकारक प्रभावों से रक्षा करता है जिससे मृदा क्षरण बहुत कम हो जाता है। मृदा में फसल अवशेषों के जमाव से सूक्ष्मजीवों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मृदा पर फसल अवशेष आवरण की वजह से मृदा सतह पर सूक्ष्म वातावरण ,जीवाणुओं, शैवालों, कवकों एवं केंचुओं के अनुरूप हो जाता है जिससे उनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी होती है एवं जैव भार में वृद्धि हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप फसल अवशेषों का विघटन होता है और एक अच्छी ह्यूमस तैयार हो जाती है। ह्यूमस मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बढ़ाती है, साथ ही साथ फसल के लिए उपयुक्त वातावरण और पोषण प्रदान करती है। मृदा गुणवत्ता में सुधार से सूक्ष्मजीव विविधता में वृद्धि होती है जिससे फसलों पर कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है। इस खेती की प्रणाली में पानी का रिसाव बढ़ जाता है जिसकी वजह से पानी का सतही अपवाह बहुत हद तक कम हो जाता है जो कि मृदा क्षरण को कम करके भूजल संसाधनों को बढ़ाने में सहायक है। संरक्षण खेती में केंचुए और पौधों की जड़ें

जैविक जुताई का काम करते हैं जिससे कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण (Recycling) अच्छा होता है। खेत में फसलों को अदल बदल कर लगाने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ एवं जीवाणुओं की संख्या में बढ़ोतरी होती है जिसके फलस्वरूप फसल को पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। फसल विविधीकरण मृदा की उर्वरता बनाए रखता है तथा फसल सम्बंधित कीटों एवं रोगों के रोगजनक ध्वंसावशेष (केरी ओवर) प्रभाव को तोड़ता है। इसको अपनाने से पानी, पोषक तत्वों, कार्बनिक पदार्थों इत्यादि का मृदा प्रोफाइल में बेहतर वितरण होता है जिसका परिणाम मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर सीधा पड़ता है।

पिछले कई दशकों से सघन खेती करने से, एक वर्ष में 2-3 फसलें और लगातार एक ही तरह की फसलें उगाने से रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक व अनुचित उपयोग, जैविक खादों के प्रयोग की अनदेखी करने के कारण कृषि में ज्यादा उत्पादन लागत और कम फायदा हो रहा है। संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी होने से आज विश्व के कई देशों में संरक्षण खेती बड़े व्यापक स्तर पर अपनाई जा रही है(चित्र 1)। विश्व में लगभग 100 मिलियन हेक्टेयर से ज्यादा जमीन पर संरक्षण खेती की जा रही है। संरक्षण खेती करने वाले देशों में अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजील और अर्जेन्टीना प्रमुख हैं (तालिका 1)। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी को न्यूनतम हिलाया जाए, उसकी जुताई न के बराबर की जाए, भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पति आवरणों से ढककर रखा जाए। हरी खाद या जमीन को ढकने वाली अन्य फसलों को फसल चक्र में अपनाया जाए। ऐसा करने से बहुत सारे फायदे पाए गए हैं जिनमें फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ-साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ी है जोकि कृषि की लगातार अच्छी हालत के लिए बहुत जरूरी है।

संरक्षण कृषि के लाभ

मृदा स्वास्थ्य में लाभ

संरक्षण खेती में मृदा स्वास्थ्य तथा उसकी पैदावार बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि मृदा की सतह पर फसल अवशेषों का पर्याप्त आवरण हो। मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल को समुचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं।

मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर प्रभावः कार्बनिक पदार्थ का मृदा के भौतिक गुणों जैसे मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, मृदा घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय, मृदा पारगम्यता दर, पोषक तत्व प्रतिधारण को फसल के जड़ीय क्षेत्र (राइज़ोस्फियर) में बढ़ाने में मुख्य भूमिका है।

केंचुए की संख्या में वृद्धिः संरक्षण खेती के अन्दर किसान का मित्र कहे जाने वाले केंचुए की संख्या में वृद्धि होती है। फसलों की जड़ों एवं केंचुए द्वारा बनाये हुये छिद्रों में पानी एवं हवा का अनुपात बना रहता है जिससे फसलों की वृद्धि एवं विकास ठीक ढंग से होती है।

प्राकृतिक संसाधानों का संरक्षण एवं समुचित उपयोग

संरक्षण खेती प्रणाली को अपनाने से पर्यावरण एवं संसाधन दोनों का संरक्षण होता है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष का स्थायी आवरण तथा फसल विविधिकरण अपनाने से मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता और फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ती है। फसल अवशेष जैव विविधता, जैविक गतिविधियों एवं वायुवीय गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी करते हैं। यह कार्बन को संचय (सिक्वेस्ट्रेशन) करने एवं मृदा तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष मृदा सतह पर बहने वाले पानी (रन ऑफ) और हवा की गति को कम कर देते हैं जिससे मिट्टी के महीन कणों का उपरी सतह से विस्थापन एवं मृदा कार्बनिक पदार्थों का क्षरण बहुत कम हो जाता है। फसल अवशेष मृदा सतह से पानी का वाष्पीकरण कम करने में सहायक होते हैं जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है।

पर्यावरणीय लाभ

फसल अवशेषों में बुआई करने वाली मशीनों के अभाव एवं किसानों के साफ-सुथरा खेत रखने की सोच के कारण सिंधु-गंगा के उत्तर-पश्चिमी मैदानी इलाकों में फसल अवशेषों से छुटकारा पाने के लिए फसल अवशेषों को पूरी तरह से जलाने की परम्परा बनी हुयी है। धान के अवशेषों को जलाने से इनमें से विषैली गैसें जैसेः कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (NO_2), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) आदि निकलती हैं जिनसे समूचा वातावरण प्रदूषित हो जाता है एवं मृदा के पोषक तत्वों तथा जैव पदार्थों को नुकसान होता है।

संरक्षण कृषि आधारित फसल प्रणालियों को अपनाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है तथा साथ ही उपलब्ध संसाधनों को समुचित उपयोग में भी लाया जा सकता है। संरक्षण खेती में हैप्पी टर्बो सीडर तथा रोटरी डिस्क ड्रिल की मदद से गेहूँ को धान के अवशेषों के मध्य (10 टन फसल अवशेष भार के साथ) सफलतापूर्वक बोया जा सकता है।

सीमान्त ताप (Terminal Heat) प्रभाव

मृदा की सतह पर अवशेषों को रखने से मिट्टी में नमी का संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। अवशेषों को मिट्टी पर बनाए रखने से न केवल मृदा सुधार होगा बल्कि सूक्ष्म वातावरण भी फसल के अनुकूल होगा। गेहूँ की फसल में प्रकाश संश्लेषण की दर 20–25 डिग्री सैल्सियस पर अधिकतम होती है तथा यह 30 डिग्री सेल्सियस के बाद तेजी से गिरने लगती है। गेहूँ की फसल में मार्च के महीने में तापमान के 35 डिग्री सैल्सियस से अधिक होने पर इसका सीधा प्रभाव गेहूँ की उत्पादकता पर पड़ता है जिसे हम सीमान्त ताप प्रभाव के नाम से जानते हैं। इस तापक्रम के बाद प्रत्येक डिग्री सेल्सियस की बढोत्तरी पर 4–5 प्रतिशत उपज में कमी आती है। संरक्षण आधारित खेती करने से सीमान्त ताप प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है एवं इसकी वजह से गेहूँ की फसल में होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष तापमान को 1–3 डिग्री सैल्सियस तक कम करने में सक्षम होते हैं जिससे फसल के सूक्ष्म पर्यावरण में तापमान गेहूँ की जरुरत के अनुसार बना रहता है। फसल अवशेषों की वजह से कम होने वाला तापमान मृदा सतह पर उपस्थित अवशेष भार पर निर्भर करता है। सीमान्त ताप की वजह से समय पूर्व परिपक्वता के कारण गेहूँ के दाने सिकुड़ जाते है जिसकी वजह से कम उत्पादन प्राप्त होता है। दानों की गुणवत्ता एवं आकार खराब होने से अच्छे बाजार भाव नहीं मिलते हैं जिसकी वजह से किसान को भारी नुकसान भुगतना पड़ता है।

आर्थिक लाभ

फसल सघनीकरण के कारण भूमि में मुख्य पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, लोहा, मैंगनीज इत्यादि की कमी के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति का गिरना, भू-जलस्तर में गिरावट, कृषि मजदूरों में कमी व कृषि आयातों की बढ़ती कीमतों की वजह से पारम्परिक खेती के अन्तर्गत उत्पादन खर्च में वृद्धि व शुद्ध मुनाफे में कमी हो रही है। जबकि दूसरी ओर संरक्षण खेती को अपनाकर पारम्परिक खेती की तुलना में 25-30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मजदूरी की बचत की जा सकती है। पारम्परिक खेती की मौजूदा कृषि पद्धतियों में मजदूरों की उपलब्धता दिन प्रतिदिन घटती जा रही है व इस पर होने वाले खर्च में भी निरतर वृद्धि हो रही है। संरक्षण खेती में बुआई पर होने वाले खर्च को 5000 रुपये प्रति हैक्टेयर तक आसानी से कम किया जा सकता है।

तालिका 1: विभिन्न देशों का संरक्षण कृषि के अंतर्गत क्षेत्रफल

देश	संरक्षण कृषि के अन्तर्गत क्षेत्रफल (000, हेक्टेयर)
संयुक्त राज्य अमेरिका	26,500
अर्जेन्टीना	25,553
ऑस्ट्रेलिया	17,000
कजाकिस्तान	1600
स्पेन	650
दक्षिण अफ्रीका	368
फ्रांस	200
चिली	180
इटली	80
मैक्सिको	41
पुर्तगाल	32
सीरिया	18
टुनिशिआ	8
मोरक्को	4
लेबनान	1
कुल क्षेत्रफल	72,235

स्त्रोतः Aquastat http://www.fao.org/ag/ca/6c.html

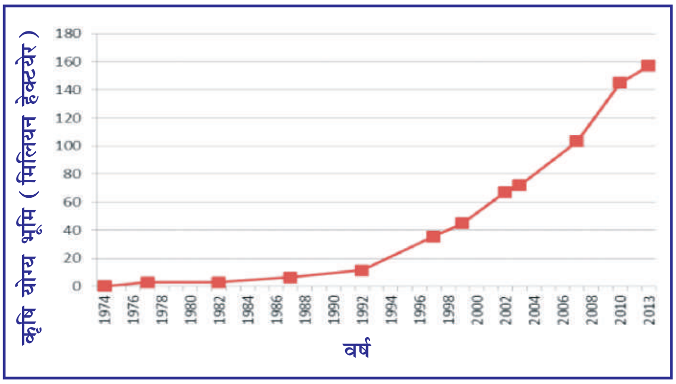

चित्र 1. विश्व स्तर पर संरक्षण कृषि के अंतर्गत कृषि योग्य भूमि में गत वर्षों में वृद्धि (मिलियन हेक्टेयर)

संरक्षण कृषि अपनाने हेतु मुख्य बाधाएं

संरक्षण कृषि एक ओर बहुत लाभदायक है वही कई कारण ऐसे भी हैं जो इसे अपनाने में बाधा लाते हैं इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

विशेष रूप से छोटे और मध्यम पैमाने पर किसान के लिए उचित सीडर की कमी होना: अधिकांश रूप से संरक्षण खेती में उपयोग कृषि यंत्र अधिक कृषि भूमि वाले कृषको के लिए लाभदायक हैं, यह एक प्रमुख बाधा है जिसके कारण किसान इसे अपनाते नहीं हैं। विभिन्न कृषि यंत्रों द्वारा विभिन्न फसल और फसल अनुक्रमों में छोटे और मध्यम पैमाने के किसानो हेतु मशीनरी की गुणवत्ता, मानकीकरण और प्रचार का विकास करना एक बहुत बड़ा फासला ला देता है जो संरक्षण कृषि अपनाने में बहुत बड़ी बाधा है।

पशु आहार और ईंधन के लिए फसल अवशेषों का उपयोग: वर्षा आधारित क्षेत्रों में यह आवश्यक है यह चयन किया जाए फसल अवशेषों का किस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए क्यूंकि बारानी खेती में फसल अवशेष सीमित मात्रा में उपलब्ध होते है और पशु आधारित अर्थव्यवस्था के कारण पशु भोजन के रूप में दिया जाना व् ईंधन के रूप में प्रयोग किसानो की आवश्यकता होती है जिसके कारण संरक्षण कृषि को अपनाना उनकी आवश्यकतानुसार संभव नहीं हैं।

फसल अवशेषों को जलाना: किसानो के लिए यह परम आवश्यक है कि पहली फसल के बाद दूसरी फसल हेतु समय पर बिजाई करें अपितु कृषि यंत्रों के आभाव में यह संभव नहीं हैं कि वे संरक्षण कृषि प्रणाली को अपना पाएँ इसलिए वे फसल अवशेषों को जला डालते हैं ।

संरक्षण कृषि की क्षमताओं से सम्बंधित प्रसार: किसानों हेतु यह आवश्यक है की संरक्षण कृषि को किसानो की आवश्यकता अनुसार समझे जिसमे पौधरोपण,फसल की कटाई, जल प्रबंधन रोग एवं व्याधि प्रबंधन के साथ नाशी जीव प्रबंधन आदि को भी सम्मिलित कर उसका आंकलन भी करें इस हेतु आवश्यक है कि कृषि तकनीक का प्रसार सही तरीके से हो।

सारांश

संरक्षण कृषि वर्तमान परिदृश्य में पारम्परिक खेती से भिन्न अनुसंधान एवं कृषि विकास का नवीन रूप प्रस्तुत करती हैं जिसका मुख्य उद्देश्य भारत में खाद्यान उत्पादन को एक स्तर तक बढ़ावा देना है। साथ ही पारम्परिक कृषि से होने वाले संसाधनों के दोहन पर्यावरण प्रदूषण व मृदा गुणवत्ता में गिरावट को रोकना व स्थिर उत्पादकता में वृद्धि करना है। संरक्षण खेती से सम्बन्धी प्रणालियों पर विकास व अनुसंधान ज्ञानार्जन में भी योगदान करता है। अतः भविष्य में संरक्षण कृषि संसाधनों के दोहन को रोककर, बढ़ती कृषि लागत को कम कर के कृषि को अधिक कुशल, संसाधन संपन्न, प्रतिस्पर्धी व टिकाऊ बनाने के अवसर प्रदान करती है।

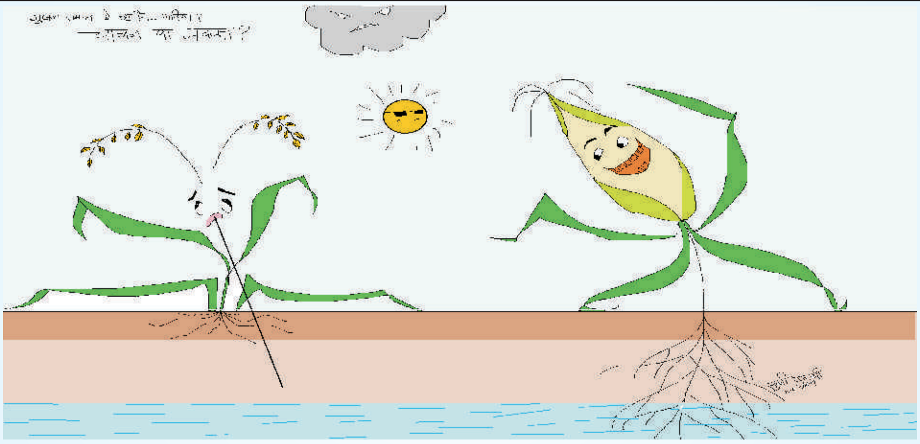

गिरते भू-जल स्तर में भी खुशहाल मक्का (आदानः डॉ. सुबी एस.बी)

पीड़कनाशी रसायनः फसल उत्पादन में भूमिका, उपयोग एवं सावधानियाँ

मनेश चन्द्र डागला*, भारत भूषण, प्रदीप कुमार, विशाल सिंह एवं प्रवीण कुमार बगड़िया
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
पं.कृ.वि. परिसर, लुधियाना 141004, पंजाब, भारत
*संवादी लेखक का ई-मेलः manu9322gen@gmail.com

कृषि-रसायन में वे सभी रसायन शामिल हैं, जो कीटों और बीमारियों को नष्ट करने के अलावा फसलों की वृद्धि और उपज को बढ़ाते हैं। पीड़कनाशक रसायन फसलों पर विभिन्न कीटों एवं बीमारियों की रोकथाम हेतु प्रयोग में लाये जाते है। हरित क्रांति ने भारत में फसल उत्पादन बढ़ोतरी के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग को भी बढ़ावा दिया है। साल-दर-साल, कृषि रसायनों के उपयोग में वृद्धि हुई है। इस आलेख में पीड़कनाशी रसायनों के बारे में चर्चा की गयी है। आलेख में पीड़कनाशी शब्द का उपयोग किया गया है जिसमें कीटनाशी, खरपतवारनाशी, कवकनाशी, सूत्रकृमिनाशी, तथा अन्य नाशी रसायन शामिल है।

कृषि में कीटों एवं बीमारियों का रासायनिक नियंत्रण एक व्यापक प्रचलन है। फसल के नुकसान को कम करने के लिए रासायनिक और जैविक दोनों प्रकार के पीड़कनाशी उपलब्ध हैं। भारत में, कीटों के कारण अनुमानित वार्षिक उत्पादन नुकसान 42.66 मिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर है। रासायनिक कीटनाशक, कवक और जड़ी-बूटियों का आमतौर पर कृषि में कीट नियंत्रण के लिए उपयोग किया जाता है। भारत में कुल पीड़कनाशकों के उपयोग में रासायनिक कीटनाशकों का सबसे ज्यादा अनुपात हस्त-चालित खरपतवार नियंत्रण की बढती लागत के कारण बढ़ा है जिसके कारण कृषि में कुल पीड़कनाशकों के उपयोग में वृद्धि हुई है। हालांकि, भारत में पीड़कनाशियों का उपयोग अन्य देशों की तुलना में काफी कम है जो कि 0.6 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर उपयोग होता है, जबकि चीन में 13.06, जापान में 11.85, संयुक्त राज्य अमेरिका में 7, तथा ब्राजील में 4.57 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। भारत में लगभग कुल खेती क्षेत्र का 35-40 प्रतिशत क्षेत्र में ही फसल सुरक्षा रसायनों का उपयोग किया जाता है। भारत में कुल फसल सुरक्षा उत्पादों में सबसे ज्यादा उपयोग कीटनाशकों (60%) का किया जाता है, उसके बाद कवकनाशी (18%), शाकनाशी (16%), तथा जैव-पीड़कनाशी (3%) का उपयोग किया जाता है जबकि फसल सुरक्षा उत्पाद के मूल्य में बाजार में शाकनाशी का 58%, कीटनाशी का 35% एवं कवकनाशी का 7% हिस्सा है।

मनुष्यों या जानवरों के जोखिम को रोकने के लिए कीटनाशक अधिनियम (1968) और कीटनाशक नियम (1971) कीटनाशकों के आयात, पंजीकरण, उत्पादन, बिक्री, परिवहन, वितरण और उपयोग को नियंत्रित करते हैं। वर्ष 2016-17 के लिए केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीईसी) द्वारा प्रदान किए गए आंकड़ों के मुताबिक, भारत से निर्यात की गई शीर्ष पांच कीटनाशकों में मोंकोजेब, साइपरमेथ्रिन, सल्फर एसीफेट और क्लोरोपायरिफॉस थे, जबकि आयातित प्रमुख उत्पाद ग्लाइफोसेट और एट्राजिन थे। उत्पादन या बिक्री से पहले सभी कीटनाशकों को केन्द्रीय कीटनाशक बोर्ड और पंजीकरण समिति (सीआईबी और आरसी) के साथ पंजीकरण प्रक्रिया से गुजरना होता है। भारत में कीटनाशक कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य और घरों में उपयोग के लिए पंजीकृत हैं। विनिर्माण या आयात के लिए, आवेदक सीआईबी और आरसी को रासायनिक संरचना, विषाक्तता, जैव-क्षमता आदि सहित विभिन्न पहलुओं पर आंकड़े प्रस्तुत करता है। आवेदन की वैधता सुनिश्चित करने के बाद समिति एक पंजीकरण संख्या और प्रमाण पत्र प्रदान करती है। पीड़कनाशकों को उनकी गतिविधि और लक्षित समूहों के आधार पर कीटनाशक, कवकनाशक, जड़ी बूटी (खरपतवारनाशक) और पादप-विकास-नियामकों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. कीटनाशकः यह रसायन कीटों को मारने के लिए उपयोग में लिये जाते है।
2. शाकनाशी/खरपतवारनाशीः इन रसायनों का उपयोग खरपतवारों को नष्ट करने के लिए किया जाता है।
3. कवकनाशीः यह रसायन कवकजनित बीमारियों के नियंत्रण हेतु उपयोग में लिए जाते है।
4. सूत्रकृमिनाशीः यह रसायन सूत्रकृमि जनित बीमारियों के नियंत्रण हेतु उपयोग में लिए जाते है।

भारत में प्रतिबंधित और वर्जित कीटनाशक

भारत में निर्माण, आयात और उपयोग के लिए कुल 28 पीड़कनाशकों और चार पीड़कनाशक फार्मूलेशन के लिए प्रतिबंध लगा दिया गया है। कुछ पीड़कनाशक कुछेक उपयोग के लिए प्रतिबंधित है। कुछ पीड़कनाशकों का उपयोग करना मना है लेकिन उनका विनिर्माण निर्यात के लिए स्वीकृत है। प्रतिबंधित पीड़कनाशकों का उपयोग कभी भी नहीं करना चाहिए।

पीड़कनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोगः स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के सन्दर्भ में

यद्यपि रासायनिक पीड़कनाशी उनकी प्रभावशीलता के लिए जाने जाते हैं, फिर भी मृदा और पर्यावरण पर उनके दुष्प्रभाव, और खाद्य उत्पादों में अवशेष की उपस्थिति चिंता का विषय हैं। कृषि में रसायनों के बढ़ते प्रयोग से कृषि, पर्यावरण, जैव विविधता, और सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र पर बहुआयामी प्रभाव पड़ता है। कई स्थानों पर मृदा निष्क्रिय एवं लवणीय हो गई है। कीटनाशकों के अधिक उपयोग से मानव स्वास्थ्य में कैंसर और हार्मोनल विकारों की संभावना के साथ-साथ प्रजनन और वृद्धि भी प्रभावित होते है। पीड़कनाशकों के कारण मानव स्वास्थ्य पर लंबे समय तक प्रभाव एक चिंता का विषय है। बाजार में उपलब्ध पीड़कनाशी रसायनों में वास्तविक पीड़कनाशकों का एक निश्चित प्रतिशत होता है जिसे सक्रिय तत्व कहा जाता है। कीटनाशक कीटों की विभिन्न अंग प्रणालियों में एंजाइमों, न्यूरोट्रांसमीटर अथवा/एवं हार्मोन को अवरुद्ध करके कीट को मारते हैं या उनकी वृद्धि को रोकते हैं। असल में, कीटनाशकों में न केवल कीटों को मारने की क्षमता है, बल्कि यह हवा, भोजन और पानी के माध्यम से अन्य जानवरों एवं मनुष्यों को भी प्रभावित करने में सक्षम है।

कीटनाशकों के सुरक्षित उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए नियोजित प्रयासों की आवश्यकता है। सबसे पहले, कम लागत वाले और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित कीटनाशकों के उपयोग को विनियमित और प्रोत्साहित करने की जरुरत है। प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए परीक्षण प्रक्रियाओं में एकरूपता और पुरानी एवं हानिकारक कीटनाशकों का अपघटन आवश्यक है। किसानों के बीच सुरक्षित अनुप्रयोग तरीकों और जागरूकता को बढ़ावा देना चाहिए। किसानों को कीटनाशकों के खतरनाक प्रभावों से अवगत कराना अति आवश्यक है। किसान रसायनों के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए आवश्यक सुरक्षा उपायों का उपयोग नहीं करते हैं। रसायनों के प्रभाव को कम करने हेतु हानिकारक रासायनिक कीटनाशकों को अपेक्षाकृत सुरक्षित विकल्पों से प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जैव कीटनाशी इस क्रम में एक महत्त्वपूर्ण विकल्प है, इसमें जैविक कारकों का प्रयोग हानिकारक कीटों के प्रकोप को कम करने में किया जाता है। जैव-कीटनाशकों में फसल के नुकसान को नियंत्रित करने और नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने की क्षमता है। देश में कीटनाशक बाजार का लगभग 3 प्रतिशत जैव-कीटनाशक हैं। अब तक भारत में कीटनाशक अधिनियम 1968 के तहत 14 जैव-पीड़कनाशकों का पंजीकरण किया जा चुका है। जैव-पीड़कनाशकों की खपत 1996-97 में 219 टन से बढ़कर 2000-01 में 683 टन हो गई थी, जो 2015-16 में 3000 टन तक बढ़ी है। इस प्रकार पर्यावरण और स्वास्थ्य के संरक्षण के मद्देनजर जैव-पीड़कनाशी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जैव-पीड़कनाशकों के भंडारण हेतु विशेष सुविधाओं और कौशल की आवश्यकता होती है, जिसे आपूर्ति श्रृंखला में सभी स्तरों पर विकसित किया जाना आवश्यक है।

कीटनाशकों/अन्य विषाक्त पदार्थों से उत्पन्न पुरानी बीमारियों और विकारों को ठीक करना जटिल है। भोजन से संबंधित जोखिम से बचने के लिए ताजा, कार्बनिक खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता देनी चाहिए। मानव बस्तियों, आवासीय क्षेत्रों, स्कूलों, आंगनवाड़ियों, स्वास्थ्य केंद्रों, सार्वजनिक स्थानों एवं जल संसाधनों के पास कीटनाशकों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

कीटनाशकों पर विषाक्तता लेबलः

भारत में कीटनाशक कंटेनरों पर एक रंग चिन्ह चतुर्भुज आकार का बना हुआ होता है, जिसे विषाक्तता लेबल कहते है जिसमें सम्बंधित कीटनाशक की विषाक्तता (अर्थात विषाक्तता वर्ग) के स्तर की पहचान होती है। लेबलिंग में चार अलग-अलग रंग के लेबल प्रस्तावित किए गए हैं। लाल, पीला, नीला और हरा। लाल लेबल वाले कीटनाशक "अत्यंत विषैला" श्रेणी में आते है, पीला लेबल वाले कीटनाशक "अत्यधिक विषैला" श्रेणी में आते है, और नीला लेबल वाले कीटनाशक "औसतन विषैला" श्रेणी में आते है, जबकि हरा लेबल वाले कीटनाशक "सामान्य विषैला" श्रेणी में आते है। अतः कीटनाशकों का उपयोग करते समय लेबल को देखकर उपयुक्त सावधानी रखना अत्यंत आवश्यक है।

पीड़कनाशियों के उपयोग सम्बंधित महत्त्वपूर्ण सावधानियां:

1. एक निर्दिष्ट क्षेत्र में एकल ऑप्रेशन के लिए कीटनाशकों की केवल आवश्यक मात्रा ही खरीदें। पूरे वर्ष के लिए थोक में कीटनाशक खरीद न करें।

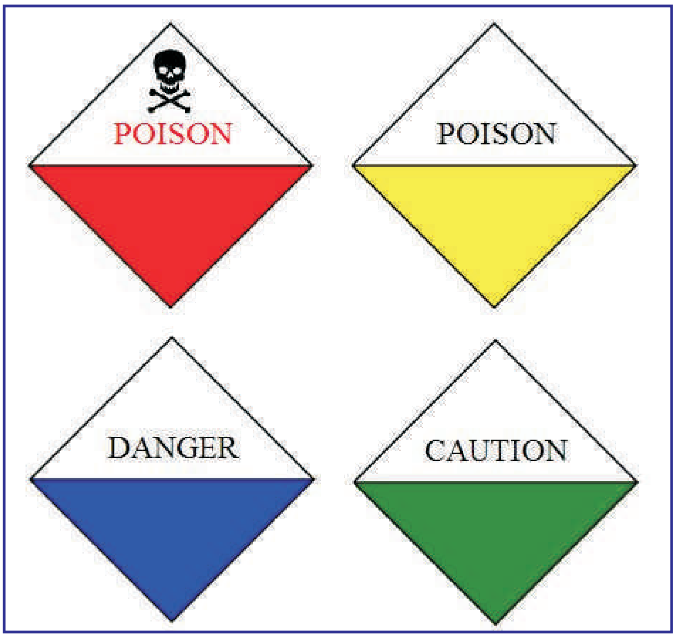

पीड़कनाशकों की पैकेजिंग पर विषाक्तता लेबल

2. केवल वैध लाइसेंस वाले पंजीकृत डीलरों से कीटनाशकों/जैव-कीटनाशकों की खरीद करें। अपंजीकृत डीलरों से या गैर-लाइसेंस प्राप्त व्यक्ति से कीटनाशकों की खरीद न करें।

3. कीटनाशक के कंटेनर/पैकेट पर अनुमोदित लेबल देखें, कंटेनरों पर अनुमोदित लेबल के बिना कीटनाशक खरीद कभी भी न करें।

4. कीटनाशकों को खरीदते समय ब्रांड का नाम, तकनीकी नाम एवं सक्रीय घटक पैकिंग पर अच्छे से देख लें। बैच संख्या, पंजीकरण संख्या, लेबल की तारीख / समाप्ति की तिथि देखें। समाप्ति तिथि (एक्सपायरी डेट) के पश्चात कीटनाशकों की खरीद न करें।

5. कीटनाशकों की पैकिंग उचित होनी चाहिए। उन कीटनाशक उत्पादों की खरीद न करें जिनके कंटेनर लीक / ढीले / खुले हैं।

6. डीलर या दूकानदार से सही बिल अवश्य लें एवं बिल को संभाल कर रखें।

7. परिवहन के दौरान कीटनाशकों को सुरक्षित रखें। भोजन, चारा व अन्य खाने योग्य सामान के साथ कीटनाशकों को कभी भी न ले जायें।

8. कीटनाशकों को प्रयोग की जगह पर कुशलतापूर्वक ले जाना चाहिए। कभी भी सिर, कंधे या पीठ पर कीटनाशक नहीं ढोने चाहिए।

9. कीटनाशकों को घर परिसर से दूर रखें, घर परिसर में कीटनाशक कभी भंडारित न करें।

10. मूल कंटेनर में ही कीटनाशक रखें। कीटनाशकों को अपने मूल कंटेनर से दूसरे कंटेनर में कभी भी स्थानांतरित न करें।

11. कीटनाशक एवं खरपतवारनाशक रसायनों को अलग-अलग संग्रहित किया जाना चाहिए, खरपतवारों के साथ कीटनाशकों को भंडारित ना करें।

12. जहां कीटनाशकों को संग्रहित किया गया है, वह स्थान चेतावनी संकेतों के साथ चिहित किया जाना चाहिए।

13. कीटनाशकों को बच्चों और पशुधन की पहुंच से दूर रखा जाना चाहिए, बच्चों को भंडारण स्थल में प्रवेश करने की अनुमति न दें।

14. भंडारण स्थान सीधे सूर्य की रोशनी और बारिश से समुचित बचाव युक्त होना चाहिए।

15. उपयोग से पहले सावधानी से कीटनाशक कंटेनर लेबल पर निर्देश पढ़ें। उपयोग करने से पहले पैकेजिंग पर लिखी सावधानियां भी पढ़ लें।

16. केवल अनुशंसित मात्रा एवं सांद्रता का ही प्रयोग करें, अनुशंसित मात्रा से ज्यादा प्रयोग ना करें, जो पौधे के स्वास्थ्य और पर्यावरण को प्रभावित कर सकता है।

17. आवश्यकता के अनुसार घोल तैयार करें। इसकी तैयारी के 24 घंटों के बाद कभी भी बचे हुए घोल का उपयोग न करें।

18. हमेशा साफ पानी का प्रयोग करें, गंदे या स्थिर पानी का प्रयोग न करें, अन्यथा स्प्रेयर का नोजल खराब हो सकता है।

19. पूरे शरीर को ढकने के लिए सुरक्षात्मक कपड़े जैसे हाथों के दस्ताने,

टैम्बोट्रीओन शाकनाशी का खरपतवारों पर प्रभाव

चेहरे के मुखौटे, टोपी, एप्रन, पूर्ण पतलून आदि का प्रयोग करें। सुरक्षात्मक कपड़े पहने बिना कभी स्प्रे घोल तैयार न करें।

20. यदि हवा तेज चल रही हो तो उस दिन कीटनाशकों का छिडकाव ना करें।
21. छिड़काव या तो ट्रेक्टर द्वारा किया जाता है या मैन्युली किया जाता है। दोनों ही तरीकों में छिड़काव करने वाले व्यक्ति मुंह पर मास्क कपड़ा एवं हाथों में दस्ताने का प्रयोग करें।
22. घोल के फैलाव से हमेशा अपनी नाक, आंखों, कानों, हाथों आदि की रक्षा करें। शरीर के किसी भी अंग पर कीटनाशक या इसका घोल न गिरने दें।
23. दानेदार कीटनाशकों का उपयोग यथावस्था ही किया जाना चाहिए। पानी के साथ दानों का मिश्रण नहीं करना चाहिए।
24. स्प्रे टैंक भरते समय कीटनाशक घोलों को फैलाने से बचें। स्प्रे टैंक को कभी भी न सूंघे।
25. कीटनाशकों के पूरे ऑपरेशन के दौरान खाना, पीना, चबाना इत्यादि बिल्कुल भी न करें।
26. सही तरह के उपकरणों का चयन करें। रिसावयुक्त या दोषपूर्ण उपकरणों का उपयोग न करें।
27. सही आकार के नोजल्स का चयन करें। दोषपूर्ण या गैर अनुशंसित नोजल का उपयोग न करें। छिद्रित नोजल को मुंह से फूंक कर साफ न करें। इसके बजाय स्प्रेयर के साथ ब्रश का उपयोग करें।
28. कीटनाशकों और खरपतवारनाशी के लिए अलग-अलग स्प्रेयर का प्रयोग करें, कभी भी शाकनाशी और कीटनाशकों दोनों के लिए एक ही स्प्रेयर का उपयोग न करें।
29. उपयोग के बाद खाली डिब्बों, बोतलों और पैकेट को गहरा खड्डा खोदकर जमीन में दबा दें, और इनका प्रयोग किसी भी प्रकार के पदार्थ भरने के लिए ना करें।
30. स्प्रे ऑपरेशन ठंडे और शांत दिन पर किया जाना चाहिए। स्प्रे करने के लिए सामान्य धूप का होना आवश्यक है। बारिश से पहले और बारिश के तुरंत बाद स्प्रे नहीं करनी चाहिए।
31. स्प्रे ऑपरेशन हवा की दिशा में किया जाना चाहिए, हवा की दिशा के विपरीत स्प्रे नहीं करनी चाहिए। गर्म धूप वाले दिन या तेज हवादार परिस्थितियों में स्प्रे न करें।
32. बैटरी संचालित यूएलवी स्प्रेयर के साथ छिड़काव के लिए पायसीकृत सांद्रता (EC) फार्मूलेशन का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।
33. स्प्रे ऑपरेशन के बाद, स्प्रेयर और बाल्टी को डिटर्जेंट/साबुन का प्रयोग करके साफ पानी से धोया जाना चाहिए। पीड़कनाशक मिश्रण के लिए उपयोग किए जाने वाले कंटेनर और बाल्टी को पूरी तरह से धोने के बाद भी घरेलू उद्देश्य के लिए उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।
34. स्प्रे के तुरंत बाद खेत में जानवरों या श्रमिकों को प्रवेश न करने दें, और आवश्यक हो तो सुरक्षात्मक कपड़े पहने बिना स्प्रे के तुरंत बाद छिडकाव किये गए क्षेत्र में प्रवेश न करें।
35. बचे हुए स्प्रे घोल को सुरक्षित जगह जैसे कि अलग बंजर जमीन पर नष्ट किया जाना चाहिए। बचे हुए स्प्रे घोल को तालाबों या पानी की नालियों आदि में या उसके पास नहीं निकाला जाना चाहिए।
36. खाने-पीने से पहले साफ पानी और साबुन के साथ हाथ और चेहरा धोएं। कपड़ों को धोने और स्नान करने से पहले कभी भी खाना –पीना न करें।
37. जहरीले लक्षणों को देखते हुए प्राथमिक चिकित्सा करें और रोगी को डॉक्टर के पास तुरंत ले जाएँ, तथा डॉक्टर को खाली कंटेनर भी दिखाएं। जहरीले लक्षणों को डॉक्टर को नहीं दिखाकर जोखिम न लें क्योंकि यह रोगी के जीवन को खतरे में डाल सकता है।

हमें कृषि क्षेत्र में कीटनाशकों के उपयोग के सकारात्मक प्रभाव में कृषि उत्पादन को बढाना है। कीटनाशकों का उपयोग हरित क्रांति का अभिन्न अंग था। भारत में खरपतवारों, बीमारियों और कीटों से होने वाले नुकसानों को कम करके खाद्य उत्पादन में क्रांति आई है। कीटनाशकों का उपयोग उन कीटों से बचने के लिए किया जाता है जो कि फसल की उपज की मात्रा को कम कर सकते हैं। हालांकि, कीटनाशकों के उपयोग के ये सकारात्मक पहलू कभी-कभी अपने उच्च मूल्यों के कारण महंगे हो जाते हैं। इसके अलावा, कीटनाशकों के उपयोग के पर्यावरणीय परिणाम प्रमुख विचारणीय बिंदु हैं। अतः कृषि उत्पादन के साथ-साथ स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए ये अति आवश्यक है कि कृषि-रसायनों का उपयोग विवेकपूर्ण किया जाना चाहिए।

खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्प्रे तकनीक प्रबंधन

नरेन्द्र सिंह*, मेहर चन्द, समर सिंह, धर्मबीर यादव एवं मेहर चन्द कम्बोज
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
*संवादी लेखक का ई-मेलः narendersingh.bagri@gmail.com

फसलों के उत्पादन में शाकनाशियों का विशेष महत्व है क्योंकि खरपवार उनके प्रकार व घनत्व के आधार पर फसलों की पैदावार 15-90 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं। शाकनाशियों की मात्रा फसल की अवस्था, क्षेत्रफल के अनुसार एवं खरपतवार की अवस्था पर सिफारिश की जाती है और मात्रा सिफारिश करते समय यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि शाकनाशी के अवशेषों का अगली फसल पर कोई दुष्प्रभाव न पडे और खरपतवारों का पूरी तरह नियंत्रण हो। आमतौर पर कीटनाशक व फफूँद नाशक दवाओं का फसल पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। शाकनाशियों की कम व ज्यादा मात्रा से खरपतवार नियंत्रण के लिए मुसीबत पैदा हो जाती है।

वैज्ञानिक रुप से यह साबित हो चुका है कि खरपतवार नियंत्रण प्रक्रिया में 50 प्रतिशत केवल दवाई का सहयोग होता है और बाकी 50 प्रतिशत स्प्रे संबंधित प्रणाली का होता है। इसीलिए स्प्रे संबंधित प्रबंधन की जानकारी खरपतवार नियंत्रण के लिए अति महत्वपूर्ण है। उचित दवाई के चुनाव के बाद तीन बातें जरुर ध्यान रखनी चाहिए।

- दवाई की उचित व एकसार मात्रा पौधों के उपर गिरनी चाहिए।
- दवाई पौधों के उपर ठहरनी चाहिए।
- दवाई की पूरी मात्रा पौधों के अन्दर तक जानी चाहिए।

उपरोक्त तीनों बातें स्प्रे संबंधित 50 प्रतिशत हिस्सेदारी की भूमिका सुनिश्चित करती है। स्प्रे करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना बहुत जरुरी है ताकि फसल को बिना किसी नुकसान के संतोषजनक खरपतवार नियंत्रण हो सके।

1. खेत में नमी:

खरपतवार उगने से पहले व उगने के बाद करने वाले शाकनाशियों के लिए खेत में नमी होना अति आवश्यक है। खरपतवार उगने से पहले स्प्रे करने वाले शाकनाशी की सफलाता केवल खेत में नमी पर निर्भर करती है। जैसे एट्राजीन, पेंडीमिथेलीन, मैट्रीब्यूजीन या अन्य शाकनाशी जो भी खरपतवार आने से पहले स्प्रे किए जाते हैं। उनके लिए नमी अत्यंत आवश्यक है। घास उगने के बाद के प्रयोग में लाए गए शाकनाशियों के लिए भी खेत में नमी महत्वपूर्ण है। नमी की स्थिति में खरपतवारों की बढवार तेजी से होती है और दवाई पूरी तरह पौधे के अन्दर पहुंचकर अच्छा नियंत्रण करती है।

2. खरपतवार की अवस्था:

शाकनाशी हमेशा वैज्ञानिकों द्वारा बताई गई समय सीमा के अन्दर ही स्प्रे करने चाहिए या खरपतवार की बढवार की स्थिति को ध्यान में रखकर स्प्रे करना चाहिए। जैसे गेहूँ में खरपतवार उगने के बाद शाकनाशियों का स्प्रे बीजाई के 30-35 दिन बाद स्प्रे करना चाहिए। गन्ने में मोथा घास के नियंत्रण के लिए सिफारिश दवा सैम्परा (हैलोसल्फयूरान मिथाईल) का स्प्रे बसंतकालीन व पछेती बीजाई के लिए पहले पानी के बाद या मोथा घास की 3-5 पत्ती अवस्था में ही स्प्रे करना चाहिए। इसके बाद स्प्रे करने से पूरा नियंत्रण नहीं होगा। मक्का के लिए सिफारिश दवा लोडिस (टैबोट्रीन) को बीजाई के 20-25 दिन बाद या खरपतवार की 3-4 पत्ती अवस्था में स्प्रे करना उचित पाया गया है। खरपतवार की बढवार ज्यादा होने से दवाई का पौधे में संचरण पूरी तरह नहीं होता और पूरी दवाई सही जगह पर नहीं पहुंचने के कारण खरपतवारों का पूरा नियंत्रण नहीं हो पाता तथा प्रतिरोधिता उत्पन्न होने का खतरा बढता है।

3. खरपतवारों की संख्या व प्रकार से खरपतवारनाशक का चुनाव:

खेत मे मौजूद खरपतवारों की संख्या व प्रकार के हिसाब से ही दवाई का चयन करना चाहिए। संकरी व चौड़ी पत्ती वाले तथा सैजिज के लिए अलग-अलग दवाईयों की सिफारिश की गई है। अगर खेत में संकरी व चौड़ी पत्ती वाले दोनों तरह के खरपतवार है तो उनके लिए मिश्रित शाकनाशी सिफारिश किए गए है। गेहूं में संकरी पत्ती वालों के लिए फिनोक्सापरोप, क्लोडीनाफोप, पिनोकसाडेन व सल्फोस्लफयूरान तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए 2, 4-डी, मैटसलफ्यूरान व कारफैन्टराजोन तथा दोनों तरह के खरपतवारों के लिए टोटल, एटलांटिस, वैस्टा, अकोरडप्लस व पैंडीमिथेलीन सिफारिश किए गए है।

अगर खेत में किसी हिस्से में ही खरपतवारों की समस्या है तो स्प्रे केवल उसी हिस्से में करें। गन्ने व मक्की में क्रमशः संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए एट्राजीन व 2, 4-डी की सिफारिश की गई है। अगर मोथा घास की समस्या है तो केवल *सैम्परा* की ही सिफारिश की गई है।

4. फसल खरपतवार प्रतियोगिता की अवधि की जानकारीः

किसी भी तरह के संतोषजनक खरपतवार नियंत्रण के लिए उस फसल की खरपतवार प्रतियोगिता की अवधि की जानकारी होना अति महत्वपूर्ण है। क्योंकि फसल की पूरे फसलकाल की बजाय एक निश्चित अवधि के दौरान खरपतवार मुक्त रखकर कर अच्छी पैदावार ली जा सकती है। विभिन्न फसलों के लिए निम्नलिखित प्रतियोगिता अवधि दी गई है

गेहूंः 50 दिन, धानः 50 दिन, मक्काः 35 दिन

गन्नाः बसंतकालीन-120 दिन, मोढी फसल-90 दिन, पछेता गन्ना-60 दिन

कपासः 60 दिन, सरसोंः 50 दिन

इस अवधि के बाद कोई गुड़ाई व शाकनाशी का स्प्रे करने की जरुरत नहीं है।

5. अन्तः फसलीकरण में शाकनाशी का चुनावः

अन्तः फसलीकरण में वही शाकनाशी प्रयोग में लाया जाना चाहिए जो दोनों फसलों के लिए सुरक्षित हों। जैसे मक्का के साथ अन्तःफसलीकरण में पैंडीमिथेलीन, बीजाई के 2-3 दिन के अन्दर ही स्प्रे करना चाहिए। मक्का के साथ अन्तः फसलीकरण में एट्राजीन व सैम्परा लोडिस दवाई का प्रयोग न करें। इसी प्रकार गेहूं व गन्ना अन्तः फसलीकरण में केवल सल्फोसल्फयूरान व एलग्रिप दवाई का प्रयोग करें और गेहूं के अन्य सिफारिश किए गए अन्य किसी शाकनाशी का प्रयोग न करें।

6. दवाई की सही मात्रा व सही समय पर स्प्रे करनाः

सही खरपतवार नियंत्रण के लिए दवाई की सिफारिश मात्रा से न ही कम व ज्यादा मात्रा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। दवाई की मात्रा फसलों के अनुसार व फसल चक्र को ध्यान में रखकर की जाती है। स्प्रे करने का समय गर्मियों में सुबह 7 से 10 बजे तक तथा शाम को 5 से 7 बजे तथा सर्दियों मे सुबह 11 बजे से शाम 4 बजे तक उचित पाया गया है। इस दौरान पत्तों के सुराख खुले रहते है।

7. चिपचिपा पदार्थ मिलानाः

शाकनाशी को पत्तों पर ज्यादा समय ठहरने के लिए काफी शाकनाशकों के साथ चिपचिपा पदार्थ मिलता है और वह दवाई के साथ सिफारिश मात्रा में जरुर डालना चाहिए अन्यथा शाकनाशी पत्तों पर नहीं रुकेगा और बहकर नीचे जमीन पर गिर जायेगा तथा दवाई की पूरी मात्रा पौधों के अन्दर नहीं जा पायेगी। निम्नलिखित फसलों में दवाई के साथ चिपचिपा पदार्थ की सिफारिश की गई है।

मक्काः लोडिस (टैंबोट्रायोन)

गेहूंः फिनोक्साप्रोप, सल्फोसल्फयूरान, एटलांटिस व टोटल

बिना चिपचिपा पदार्थ के खरपतवार नियंत्रण

चिपचिपा पदार्थ से खरपतवार नियंत्रण

8. सही घोल बनाना:

दवाई को कभी भी सीधे स्प्रे पंप में नहीं मिलाना चाहिए। क्षेत्रफल के हिसाब से जितनी टंकी लगानी है। एक लीटर पानी के उतने माप एक अलग बाल्टी में डाले तथा बाल्टी में दवाई घोलें। दवाई वाली बाल्टी में से एक नाप स्प्रे टंकी में डालें और हर बार दवाई वाली बाल्टी के घोल को अच्छी तरह मिलायें। इससे हर टंकी में दवाई की सही मात्रा अपने आप डल जायेगी। उचित मात्रा (200 लीटर प्रति एकड) में पानी का उपयोग करें।

9. नोजल का चुनाव:

स्प्रे तकनीक का सबसे मुख्य अंग नोजल का चुनाव बताया गया है। कीटनाशकों व फफूंदनाशक के स्प्रे के लिए होलोकोन नोजल या गोल नोजल सही पाई गई है। खरपतवार उगने से पहले फलड कट नोजल या फसवित नोजल तथा खरपतवार उगने के बाद फलैटफैन नोजल उचित पाई गई है। इन नोजलों से स्प्रे करते समय कुछ सावधानियां जरुरी हैं। फलडकट नोजल से स्प्रे असमान होता है और किनारों पर छिडकाव कम होता है जिससे किनारों पर 50 प्रतिशत क्षेत्र में दोबारा छिड़काव संभव होना चाहिए। फलैट फैन नोजल से भी किनारों पर स्प्रे कम होता है। अतः एक समान छिडकाव करने के लिए किनारों के साथ 30 प्रतिशत क्षेत्र में दोबारा छिडकाव करना जरुरी है। इसका उपयोग एक से ज्यादा नोजलों वाले बूम के साथ करना उपयुक्त है। ईवन फलैट नोजल के द्वारा स्प्रे बराबर होता है और इस नोजल का प्रयोग मुख्यतः कतारों वाले पौधे, फसलों और सब्जियों में एक बार स्प्रे करने के लिए होता है।

चित्र.1. विभिन्न आकार के नोजल।

10. छिड़काव करते समय बूम की स्थिति:

अक्सर यह देखा गया है कि स्प्रे करने वाला व्यक्ति अकेले नोजल वाले बूम को लहराकर छिड़काव करते हैं। ऐसा करने से दवाई का छिड़काव समान रुप से नहीं होता और छिड़काव की मात्रा कहीं कम व कहीं ज्यादा होती है। इससे फसल पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है तथा खरपतवारों में प्रतिरोधकता की समस्या बढने की आशंका बढ जाती है। इसीलिए स्प्रे करते समय यह ध्यान रखें कि दवाई का छिडकाव समान व एकसार होना चाहिए।

11. स्प्रे की उचांई:

स्प्रे की उचांई लक्ष्य पर स्प्रे करने के अनुरुप होनी चाहिए। शाकनाशी के अच्छे नतीजे के लिए स्प्रे उँचाई का बहुत महत्व है। अगर बूम की उचांई भूमि के ज़्यादा नजदीक है तो स्प्रे बराबर नहीं होता। उपयुक्त उचांई नहीं होने की स्थिति में कही पर दवाई की मात्रा ज्यादा होने से फसल जल सकती है और कहीं खरपतवारों पर कोई असर नहीं पड़ता। अगर फलैट फैन नोज़ल के साथ अनेक नोज़लों वाली बूम का प्रयोग कर रहे हैं तो उचांई और नोजल के कोण का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अगर नोजल का कोण 80 डिग्री हो तो नोजल को 45 सैमी. की उचाईं पर रखने पर फासला 50 सैमी. होना चाहिए। जिस नोजल का कोण 110 डिग्री हो तो नोजल को 50 सैमी. की उचाईं पर रखने पर फासला 75 सैमी. होना चाहिए।

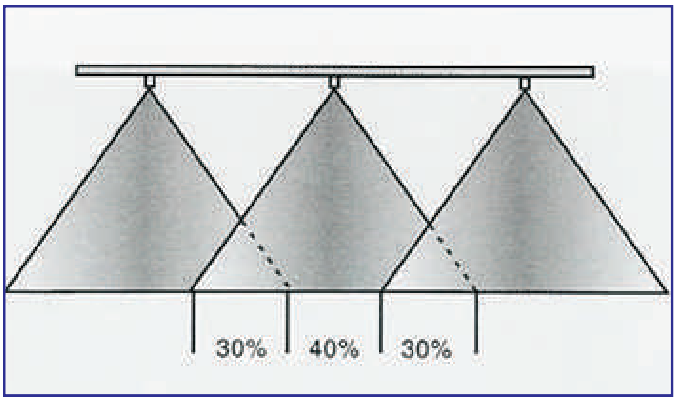

चित्र.2. निकटवर्ती नोजलों के स्प्रे दायरे का 30 प्रतिशत क्षेत्र कवर करना।

12. स्प्रे के माप-तोल को प्रभावित करने वाले कारक:

छिड़काव की मात्रा, छिड़काव की गति व नोजल की कार्यक्षमता स्प्रे यंत्र, दबाव पर आधारित होती है। स्प्रे की मात्रा गति के विपरीत अनुपात

में होता है। गति के बढने पर शाकनाशी की मात्रा घट जाती है। नोजल क्षमता, समान दबाव, गति होने पर शाकनाशी की मात्रा सही अनुपात में खरपतवार पर पड़ती है। नोजल से निकास होने वाली शाकनाशी की मात्रा इसकी क्षमता के साथ बढती है। समान बहाव के साथ स्प्रे हेतु पम्प पर समदाब वाल्व लगाएं।

13. स्प्रे करने की दिशाः

सीधी दिशा में एक सार स्प्रे करें। आडा-तिरछा छिड़काव न करें। खेत में पूरा छिड़काव एक ही दिशा में करें। दोनों दिशाओं में स्प्रे न करें।

14. नोज़ल का रखरखावः

नोज़लों को कभी भी तार या नुकीली वस्तु से साफ न करें। इससे नोजल क्षतिग्रस्त हो जाएंगी और स्प्रे असमान होगा।

15. प्रतिरोधिकता क्षेत्रों में वैकल्पिक शाकनाशियों की सिफारिश की गई है। ऐसे क्षेत्रों में गेहूं में आइसोप्रोटूरान का प्रयोग न करें। ऐसे क्षेत्रों में शाकनाशियों का अदल-बदल कर स्प्रे करें। शाकनाशी की सही मात्रा का प्रयोग करें।

16. शाकनाशियों का मिश्रण बनानाः

सिफारिश के अनुसार की दवाईयों का मिश्रण तैयार करने के बाद ही स्प्रे करें अन्यथा फसल जल सकती है। गेहूं में 2, 4-डी या मैटसल्फयूरान को प्रतिरोधिता वाले क्षेत्रों के लिए सिफारिश शाकनाशियों के साथ मिलाकर स्प्रे ना करें।

17. स्प्रे पम्प की जांचः

स्प्रे करने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि इसमें कोई पहले स्प्रे का अवशेष तो नहीं है व उसे अच्छी तरह साफ ताज़े पानी से धोएं। विशेष शाकनाशियों (राउंडअप, ग्रामोक्सोन व एट्राजीन) के इस्तेमाल करने के बाद स्प्रे पम्प को कई बार धोएं। स्प्रे पम्प को अच्छी तरह से हिलाकर धोएं और कोई भी स्प्रे करने के बाद उसे अवश्य धोएं।

18. उत्तम गुणवत्ता के शाकनाशियों की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए।

19. खरपतवार नाशकों के प्रति संवेदनशील प्रजातियों की जानकारी होनी चाहिए। गेहूं व अन्य फसलों की काफी प्रजातियां विभिन्न शाकनाशियों के प्रति संवेदनशील चिन्हित की गई है। गेहूं की किस्में पी. बी.डब्ल्यू. 550, डब्ल्यू. एच. 542 व डब्ल्यू. एच. 283 अकोर्डप्लस से संवेदनशील हैं। डब्ल्यू. एच. 147, 157, 283, सी. 306, एस. 308, डी. डब्ल्यू. एल. 5023 आइसोप्रोटूरोन के प्रति संवेदनशील हैं। अतः इन किस्मों में सहनशीलता के आधार पर स्प्रे करें।

20. कुछ शाकनाशी जैसे गलाइफोसेट व ग्रामोक्सोन जो सर्वनाशी शाकनाशी की श्रेणी में आते हैं ऐसे शाकनाशियों को भी फसलों में स्प्रे हुड लगाकर स्प्रे कर सकते हैं। इनका उपयोग केवल उन्हीं फसलों में किया जा सकता है जिन्हें लाइनों में लगाया गया है व लाईनों के बीच में काफी जगह होती है। फसल प्रतियोगिता अवधि के दौरान अगर मौसम साफ नहीं हैं और निराई-गोडाई के लिए उपयुक्त नही है तथा खरपतवार की बढवार निधार्रित मापदंड से ज्यादा हो गई है तो ऐसी स्थिति में स्प्रे हुड लगाकर उपरोक्त शाकनाशियों का भी स्प्रे किया जा सकता है।

नोजल क्षमताः समान दबाव,गति होने पर शाकनाशी की मात्रा सही अनुपात में खरपतवार पर पड़ती है। नोजल से निकास होने वाले शाकनाशी की मात्रा इसकी क्षमता के साथ बढ़ती है।

21. स्प्रे पम्प की सफाई

- स्प्रे पम्प को साफ पानी से अच्छी तरह हिलाकर धोएं।
- कोई भी स्प्रे करने के बाद उसे अवश्य धोएं।
- नोजल बूम को स्प्रे के माध्यम से साफ करें।
- स्प्रे करने व नई दवा के प्रयोग करने से पहले सुनिश्चित कर लें कि इसमें कोई पहले स्प्रे का अवशेष तो नहीं है। व उसे अच्छी तरह साफ ताजा पानी से धोएं।

विशेष शाकनाशीयों के इस्तेमाल पर स्प्रे पम्प को कई बार धोएं।

शाकनाशियों से सुरक्षा

- चमड़ी को रसायनों के सम्पर्क में न आने दें, दस्तानों व मास्क का उपयोग करें।
- आँख व मुंह को रसायनों से बचाएं, सम्पर्क होने पर साबुन से धोएं।
- स्प्रे करते वक्त खाना, पीना व ध्रूम्रपान न करें।
- स्प्रे करने से पहले जूते, शरीर को पूर्ण रुप से ढ़कने वाले कपड़े, चश्में व मास्क का उपयोग करें।
- स्प्रे करने के उपरान्त सारे कपड़े बदलने चाहिएं और स्नान करना चाहिए।
- शाकनाशीयों के डिब्बे, पैकेटों व अवशेषों को बच्चों से दूर रखे व जमीन में दबा दें।

इन सावधानियों के साथ-साथ दवा की मात्रा, उचित समय, उपयुक्त तरीकों का सख्ती से पालन करें।

लक्षित उपज हेतु फसल के उत्पादन में उर्वरक अनुशंसा

प्रदीप डे*
अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (मृदा परीक्षण और फसल अनुक्रिया)
भाकृअनुप-भारतीय मृदा अनुसंधान संस्थान, भोपाल - 462038
*संवादी लेखक का ई-मेलः pradip.dey@icar.gov.in

फसल के उत्पादन में उर्वरक का प्रयोग एक मंहगी लागत है। बिना मिट्‌टी जॉच के इसके प्रयोग से उर्वरक, समय एवं श्रम की बर्बादी है। हो सकता है जो उर्वरक प्रयोग किया जा रहा है उसकी जरूरत ही नहीं हो या कम मात्रा में जरूरत हो। किसी विशेष उर्वरक के जरूरत से ज्यादा मात्रा में प्रयोग करने से दूसरे तत्वों की उपलब्धता पर भी दुष्प्रभाव डाल सकता है जिससे उपज में कमी हो सकती है और मिट्‌टी में उपलब्ध पोषक तत्वों में असंतुलन की स्थिति पैदा हो सकती है। यह और भी प्रासंगिक है जब उर्वरक की कीमत आये दिन बढ़ रही है। अतः उर्वरक का प्रयोग सही मात्रा में समयानुसार करके कम खर्च से अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है।

फसल का उत्पादन मुख्यतः मिट्‌टी की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। उर्वरा शक्ति का निर्धारण मिट्‌टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा पर की जाती है। मिट्‌टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की जानकारी मिट्‌टी एवं पौधों की जॉच के द्वारा की जाती है। पौधों और मिट्‌टी के रासायनिक विश्लेषण के द्वारा पोषक तत्वों की मात्रा, ह्रास एवं उनकी कमी एवं अधिकता की जानकारी प्राप्त होती है।

मृदा परीक्षण का उद्देश्य एवं महत्व

फसलों की नवीनतम किस्मों की आवश्यकतानुसार मिट्‌टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बहुत आवश्यक है। अधिकांश किसान इस बात का ध्यान नहीं रखते कि जिन उर्वरकों का वे प्रयोग कर रहे हैं वह फसलों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता के अनुरुप उचति एवं संतुलित मात्रा में है या नहीं। मृदा में पौधों के लिए जो आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं उनमें से पौधों द्वारा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश को अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है। सघन खेती के फलस्वरूप मुख्य पोषक तत्वों के साथ-साथ गौण एवम् सूक्ष्म पोषक तत्व भी अधिक मात्रा में ग्रहण किए जाते है जिससे मृदा में इन तत्वों की उपलब्धता में भी प्रायः कमी आ जाती है जिसकी पूर्ति उर्वरकों, कार्बनिक खादों तथा जैव उर्वरकों के प्रयोग से की जाती है। विभिन्न मृदाओं में मृदा के स्वरूप, फसल चक्र, उर्वरकों एवं खादों के प्रयोग के अनुसार उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है जिसका निर्धारण मृदा परीक्षण द्वारा किया जाता है। मृदा परीक्षण संतुलित, आर्थिक दृष्टि से उपयोगी तथा फसलों की आवश्यकताओं के अनुरूप उर्वरकों एवं खादों की मात्रा एवं अनुपात के निर्धारण के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मिट्‌टी परीक्षण मुख्यतः निम्नलिखित उद्‌देश्यों के लिए किया जाता है।

1. मिट्‌टी में उत्पन्न दोष जैसे अम्लीयता, क्षारीयता, लवणीयता आदि का पता लगाना तथा उनके सही उपचार की सलाह देना।
2. मृदा की उर्वरा शक्ति का पता लगाना तथा मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों के अनुसार विभिन्न फसलों के लिए खादों व उर्वरकों की आवश्यकता तथा उनकी संतुलित मात्रा में प्रयोग की सिफारिश करना।
3. उर्वरकों के प्रयोग से फसलों की अतिरिक्त उपज का आंकलन करना।
4. मिट्‌टी परीक्षण के आधार पर मृदा उर्वरता मानचित्र तैयार करना तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों का समय-समय पर अध्ययन करना।

ऊपर दिए गए उद्‌देश्यों में से पहले दो उद्‌देश्य किसानों से संबंधित है जबकि शेष दो का संबंध नीति-निर्धारकों तथा वैज्ञानिकों से है जो अन्ततः इनके माध्यम से किसानों को लाभप्रद जानकारी दे सकते हैं। सभी खेतों की मृदाओं की उपजाऊ शक्ति एक समान नहीं होती। अतः उर्वराशक्ति के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करने के लिए प्रत्येक खेत की मिट्‌टी का परीक्षण अलग से कराना चाहिए।

वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर मृदा परीक्षण एवं पादप विश्लेषण की नई-नई तकनीक विकसित की जा रही है जिनके द्वारा मृदा एवं पौधों में आवश्यक तत्वों की मात्राएं तथा उनके अनुपात की जानकारी से पौधों के स्वास्थ्य तथा संभावित उपज का आंकलन किया जा सकता है। मिट्‌टी

परीक्षण के आधार पर उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ की संभावना बढ जाती है। बिना मिट्टी परीक्षण उर्वरकों की मात्रा का प्रयोग पौधों की आवश्यकता से कम होने पर फसल उपज कम मिलती है तथा दूसरी संभावना यह भी रहती है कि आवश्यकता से अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग हो जाए जो आर्थिक दृष्टि से कम लाभकारी तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक होता है। दोनों ही परिस्थितियों में पोषक तत्वों की मात्रा का सही-सही प्रयोग नहीं हो पाता है। आवश्यक तत्वों की उचित तथा संतुलित मात्रा का प्रयोग करने पर ही अच्छी गुणवत्ता वाली तथा उत्तम फसल उपज प्राप्त हो सकती है और साथ ही मिट्टी की उर्वराशक्ति भी बनी रहती है।

मिट्टी जाँच के चरण

मिट्टी जाँच के मुख्यत: चार चरण है। मिट्टी का नमूना लेना, मिट्टी की जाँच, जाँच आकड़ों का विश्लेषण एवं उर्वरक अनुशंसा। मिट्टी के नमूना पर ही उर्वरक अनुशंसा निर्भर करती है। अगर मिट्टी का नमूना सही तरह से नहीं लिया गया है तो उर्वरक अनुशंसा भी सही नहीं होगी। अतः मिट्टी का नमूना इस प्रकार हो जो खेत (प्लॉट) का सही प्रतिनिधित्व करता हो। मिट्टी जाँच की विधि तीव्र, ठीक, पुनः मूल्याकंन योग्य एवं फसल उपज से सीधे संबंधित होनी चाहिये। मिट्टी जाँच से प्राप्त आंकड़ों का सही विश्लेषण करना होता है।

अगर मिट्टी किसी प्रकार से अस्वस्थ हो अर्थात अम्लीय, क्षारीय या लवणयुक्त हो तो उसके सुधार हेतु सुधारक की अनुशंसा अवश्य होनी चाहिये क्योंकि जब तक सुधारक के प्रयोग से मिट्टी को सुधार नहीं लिया जाता है तब तक उर्वरक के प्रयोग का भरपूर लाभ नहीं उठाया जा सकता है। अन्त में मिट्टी जॉच के आकंड़ों के अनुसार उर्वरक की अनुशंसा की जाती है। यह सर्वविदित है कि मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की जैसे-जैसे मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उर्वरक की अनुशंसित मात्रा में कमी आती जाती है। मिट्टी जॉच के आधार पर उर्वरक अनुशंसा मुख्यतः दो विधि द्वारा किया जाता है।

- मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों को निम्न, मध्यम एवं उच्च श्रेणी में वर्गीकृत कर श्रेणी के अनुसार अनुशंसा ।
- लक्षित उपज समीकरण के आधार पर लक्षित उपज की प्राप्ति हेतु उर्वरक अनुशंसा ।

मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के स्तर के आधार पर अनुशंसा

इस विधि में उर्वरक अनुशंसा मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के स्तर (रेटिंग चार्ट) के आधार पर की जाती है। मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों को तालिका - 1 में दर्शाये गये रेटिंग चार्ट के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया जाता है :

साधारणत: मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता मध्यम श्रेणी में आने पर उर्वरकों की मात्रा की अनुशंसा की जाती है लेकिन निम्न श्रेणी में आने पर अनुशंसित मात्रा को 25 प्रतिशत बढ़ा दिया जाता है जबकि उच्च श्रेणी में आने पर अनुशंसित मात्रा को 25 प्रतिशत घटा दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप अगर धान के लिये 100 कि.ग्रा./हे0 नत्रजन की मात्रा अनुशंसित है तो निम्न श्रेणी के लिये 125 कि.ग्रा. मध्यम श्रेणी के लिये 100 कि.ग्रा. एवं उच्च श्रेणी के लिये 75 कि.ग्रा./हे0 नत्रजन की अनुशंसा की जाती है।

तालिका 1: मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के आधार पर मिट्टी का वर्गीकरण

तत्व	निम्न	मध्यम	उच्च
जैविक कार्बन (प्रतिशत)	0.50 से कम	0.50-0.75	0.75 से अधिक
उपलब्ध नाइट्रोजन (कि.ग्रा./है.)	280 से कम	280-560	560 से अधिक
उपलब्ध फॉस्फोरस (कि.ग्रा./है.)	10 से कम	10-25	25 से अधिक
उपलब्ध पोटाश (कि.ग्रा./है.)	120 से कम	120-280	280 से अधिक

अधिकतम मिट्टी जाँच प्रयोगशालायें उपर्युक्त रेटिंग चार्ट के आधार पर उर्वरक की अनुशंसा करती हैं। इस विधि से उर्वरक अनुशंसा सभी श्रेणी के किसानों के लिये एक ही होता है जिससे गरीब एवं सीमान्त किसान अनुशंसा से कम एवं सम्पन्न किसान अनुशंसा से अधिक उर्वरक प्रयोग करते हैं। इस तरह के उर्वरक प्रयोग से उन्हें न वांछित लाभ मिलता है न उर्वरक का सही प्रयोग हो पाता है।

लक्षित उपज समीकरण के आधार पर अनुशंसा

लक्षित उपज समीकरण के आधार पर किसी विशेष उपज लक्ष्य हेतु उर्वरक अनुशंसा सबसे अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि समीकरण मुख्यतः चार आकड़ों पर तैयार किया जाता है

- फसल का उत्पादन
- फसल के द्वारा मिट्टी से पोषक तत्वों का ह्रास
- फसल लेने के पूर्व मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा
- उपयोग में लाये गये खाद एवं उर्वरक की मात्रा

उपर्युक्त आकंड़ों के द्वारा चार प्रारम्भिक पैमाने को ज्ञात किया जाता है जिसके उपयोग से लक्षित उपज समीकरण तैयार किया जाता है। ये प्रारम्भिक पैमाने है :

- एक क्विंटल अनाज को पैदा करने के लिये पोषक तत्वों की आवश्यकता
- मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता
- उर्वरक की उपयोग क्षमता
- खाद (जैविक खाद) की उपयोग क्षमता

उदाहरण के तौर पर, बिहार के चूनायुक्त मिट्टी में गेहूँ के लक्षित उपज के लिये प्रक्षेत्र प्रयोग से तैयार किये गये लक्षित उपज समीकरण इस प्रकार है

- उर्वरक नत्रजन (कि.ग्रा./है) = 6.67 x उपज लक्ष्य (क्विं/है)- 0.43 x मिट्टी में उपलब्ध नत्रजन (कि.ग्रा./है) - 0.52 x खाद के द्वारा दी जाने वाली नत्रजन (कि.ग्रा./है)
- उर्वरक फॉस्फोरस (कि.ग्रा./है) = 3.84 x उपज लक्ष्य (कि. ग्रा./है)- 3.43 x मिट्टी में उपलब्ध स्फुर (कि.ग्रा./है) - 0.85 x खाद के द्वारा दी जाने वाली फॉस्फोरस (कि.ग्रा./है)

तालिका 2: उर्वरक पर खर्च करने की क्षमता के आधार पर उर्वरक अनुशंसा एवं अनुमानित उपज की प्राप्ति

उर्वरक पर खर्च (रू.)	उर्वरक की आवश्यकता			अनुमानित उपज (क्विं /हैक.)	शुद्ध लाभ (रू.)	आय-व्यय अनुपात
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश			
0	0	0	0	16	..	..
300	26	0	0	20	2300	8.67
900	57	10	0	25	4950	6.50
1800	93	29	14	30	7300	5.06
2800	126	49	31	35	9550	4.41
3700	159	68	49	40	11900	4.22

- उर्वरक पोटाश (कि.ग्रा./है) = 3.54 x उपज लक्ष्य (कि.ग्रा./है)- 0.74 x मिट्टी में उपलब्ध पोटाश (कि.ग्रा./है) - 0.27 x खाद के द्वारा दी जाने वाली पोटाश (कि.ग्रा./है)

उपर्युक्त लक्षित उपज समीकरण के आधार पर मिट्टी जाँच के अनुसार विभिन्न लक्षित उपज की प्राप्ति हेतु उर्वरक- अनुशंसा तालिका तैयार की जाती है, जिसके आधार पर खाद एवं उर्वरक की अनुशंसा की जाती है। उदाहरणस्वरूप अगर मिट्टी में उपलब्ध नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा क्रमशः 250, 25 एवं 125 कि.ग्रा./है हो तो 30 क्विं/है गेहूँ की उपज लेने के लिये 92 कि.ग्रा. नत्रजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 14 कि.ग्रा.पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है जबकि उसी भूमि में 40 क्विं/है गेहूँ की उपज लेने के लिये 159 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 49 कि.ग्रा. पोटाश /है की आवश्यकता होगी। 5 टन कम्पोस्ट / है के प्रयोग करने पर 40 कुन्टल/है गेहूँ की उपज लेने के लिये सिर्फ 145 कि.ग्रा. नत्रजन, 5 कि. ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टर की आवश्यकता होगी । इस प्रकार 5 टन/है कम्पोस्ट के प्रयोग से 14 कि.ग्रा. नत्रजन, 10 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 9 कि.ग्रा. पोटाश/है की बचत होती है। लक्षित उपज समीकरण के द्वारा कृषक द्वारा उर्वरक पर की जाने वाली खर्च के आधार पर भी उर्वरक की अनुशंसा की जाती है जिसे तालिका - 2 में दर्शाया गया है ।

उपर्युक्त तालिका से यह पता चलता है कि अगर किसान उर्वरक पर सिर्फ 300 रू खर्च करता है तो उसे 20 क्विंटल/है उपज मिलेगी और लाभ 2300 रू होगा लेकिन 1800 रू खर्च करने पर 30 क्विंटल/है उपज होगी तथा शुद्ध लाभ 7300 रू होगा जबकि 3700 रू खर्च करने पर 40 क्विंटल/है उपज होगी तथा शुद्ध लाभ 11900 रू होगा। इस प्रकार लक्षित उपज समीकरण के आधार पर उर्वरक अनुशंसा करने पर अन्य अनुशंसा की तुलना में निम्नलिखित लाभ होते हैं :

- यह अनुशंसा सबसे अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि फसल के द्वारा पोषक तत्वों के ह्रास तथा मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों एवं उर्वरक की क्षमता पर आधारित है।

- कृषक अपनी इच्छानुसार लक्षित उपज को प्राप्त कर सकते है।

- कृषक के आर्थिक स्थिति के अनुरूप उर्वरक की अनुशंसा की जाती है तथा अनुशंसित उर्वरक के प्रयोग से अनुमानित उपज की जानकारी मिल जाती है।

- संतुलित मात्रा में लक्षित उपज के आधार पर अनुशंसित उर्वरक प्रयोग से मिट्टी की उर्वराशक्ति बनी रहती है।

- इस अनुशंसा के आधार पर उर्वरक के प्रयोग से उर्वरक उपयोग क्षमता अन्य अनुशंसा की तुलना में अधिक होती है।

- इस विधि द्वारा अनुशंसित उर्वरक के प्रयोग से अन्य अनुशंसा की तुलना में अधिक शुद्ध लाभ एवं अधिक आय- व्यय अनुपात मिलता है।

अतः कृषक गण को सलाह दी जाती है कि मिट्टी जॉच के उपरान्त आर्थिक स्थिति के अनुसार लक्षित या उपज के लिये अनुशंसित उर्वरक का प्रयोग कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करें और खेत की उर्वराशक्ति बनायें रखें।

फसल अवशेष प्रबंधन

नरेन्द्र सिंह*, मेहर चन्द, धर्मबीर यादव, मेहर चन्द कम्बोज एवं प्रीति शर्मा
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल-132001
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
*संवादी लेखक का ई-मेलः narendersingh.bagri@gmail.com

परिचय

उत्तरी भारत में धान-गेहूँ मुख्य फसल चक्र है। नवंबर में गेहूँ की बुआई सुचारु रूप से करने के लिए किसान धान की पुराल को खेत मे ही आग लगा देते है। इससे देश की राजधानी दिल्ली सहित उत्तरी भारत के सभी राज्यों में गंभीर वायु प्रदूषण की समस्या पैदा हो जाती है। फसल अवशेष जलाने का एक प्रमुख कारण स्वास्थ्य खतरे के रूप में पहचाना गया है। एक टन धान की पुराल जलाने से 3 किलोग्राम कणिका तत्व, 60 किलोग्राम कार्बन मोनो ऑक्साइड, 1460 किलोग्राम कार्बन डाई ऑक्साइड, 199 किलोग्राम राख और 2 किलोग्राम सल्फर डाई ऑक्साइड गैस निकलती है। वायु प्रदूषण के कारण आंख की जलन, ब्रोंकाइटिस, एम्फिसीमा, अस्थमा इत्यादि गंभीर बीमारियां बढ़ती है। इसके अलावा, भूमि में मौजूद नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर और पोटेशियम जैसे महत्वपूर्ण घटकों को भी भारी नुकसान होता है। एक अनुमान के अनुसार एक टन धान की पुराल जलाने से 58 किलो नाइट्रोजन, 0.7-1.2 किलो ग्राम फास्फोरस, 12-17 किलोग्राम पोटाश 0.5-1 किलोग्राम सल्फर, 3-4 किलोग्राम कैल्सियम, 1-3 किलोग्राम मैग्निसियम, 40-70 किलोग्राम सिलिका, 50-70 प्रतिशत भूमि से अवशोषित किये हुए सूक्ष्म पदार्थ और 400 किलोग्राम कार्बन नष्ट हो जाती है । कंबाइन हारवेस्टर जमीन पर अच्छी तरह से फसल को काटता है, जिससे मैदान पर पर्याप्त मात्रा में स्टबल होता है। मशीन इस तरह के एक अवस्था में अवशेष छोड़ देता है कि उन्हें हाथ से इकट्ठा करना बड़ा मुश्किल है। हालांकि, किसानों को गेहूं के अवशेष (भुसा) को इकट्ठा करने के तरीके मिले हैं क्योंकि यह एक बेहद मूल्यवान पशु चारा है और यहां तक कि इसका कारोबार भी किया जाता है। इसके आर्थिक उपयोग को देखते हुए, किसानों को स्ट्रा इकट्ठा करने, अवशेषों को काटने और सीधे पशुओं को खिलाने के लिए या हरी चारा के साथ मिश्रित करने के लिए फसल की कटाई के बाद अवशेष काटने वाला यंत्र चलाते हैं। इसलिए गेहूं अवशेष जला देना किसानों के लिए आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रौद्योगिकी की उपलब्धता और शुष्क चारा के रूप में इसका उच्च आर्थिक मूल्य है।

इसलिए, उन मौलिक समस्याओं का निदान और पता लगाना महत्वपूर्ण है जो कि किसानों को खेत पर धान की पुराल को जलाने के लिए मजबूर करते हैं और किसी भी उत्पादक उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं करते हैं। ऐसा लगता है कि इन राज्यों में किसानों के लिए धान की पुराल का कोई आर्थिक मूल्य नहीं है।

फसल अवशेष जलाने के कारण

उत्तरी भारत के कुछ हिस्सों में धान की कटाई के लिए श्रमिकों का मिलना दुर्लभ व महंगा हो गया और दूसरा धान की कटाई और गेहूं की बिजाई के बीच का समय बहुत ही कम होता है। जिस वजह से धान की कटाई कंबाइन मशीन द्वारा की जाती है जो 6-10 से.मी. धान के डंठल छोड़ देती हैं। जिस वजह से किसानों को गेहूँ के लिए खेत तैयार करने व बिजाई करने में दिक्कत आती है। धान की पुराली, हालांकि, चारा के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि इसमें सिलिका तत्व की मात्रा अधिक होती है जो जानवरों के लिए अच्छा नहीं पाया जाता है। संकुचित मात्रा में पशुओ के फ़ीड और अन्य सामान्य उपयोगों के रूप में एवं छोटे आर्थिक मूल्य के कारण, किसानों को इसे इकट्ठा करने पर एक उच्च लागत के बजाय खेत में ही जलाना ही ठीक समझते है। एक अनुमान के अनुसार, पंजाब लगभग 19-20 मिलियन टन धान की भूसे और लगभग 20 मिलियन टन गेहूं के भूसे का उत्पादन करता है। इस धान के लगभग 85-90 प्रतिशत क्षेत्र में जला दिया जाता है। हरियाणा में धान की फसल का क्षेत्र लगभग 1353.1 हजार हैक्टर व गेहूँ की फसल का लगभग 2575.6 हजार हैक्टर है। कृषित्मक प्रगतिशील राज्य होने के नाते, पंजाब और हरियाणा के लगभग सभी किसान चावल और गेहूं की उच्च पैदावार वाली किस्मों में वृद्धि की हैं। कृषि मंत्रालय के अनुसार, औसत चावल उपज पंजाब में प्रति हेक्टेयर चार टन और हरियाणा में 2-3 टन है। इन राज्यों ने कटाई सहित कृषि संचालन के उच्च स्तर के मशीनीकरण का भी अनुभव किया है। अनाज से स्ट्रा अनुपात के आधार पर एक अनुमानित अनुमान से पता चला है कि 2011-13 के दौरान 11.1 मिलियन टन के औसत चावल उत्पादन के साथ पंजाब में 16.6 मिलियन टन धान की भूसे पैदा हुई थी। इसी तरह, हरियाणा में, औसत

चावल उत्पादन 1.3 लाख टन था और इससे 1.9 लाख टन भूसे का उत्पादन हुआ।

फसल अवशेष प्रबंधन विकल्प : फ़सल अवशेषों को हम निम्नलिखित चार तरीको से प्रबंधन कर सकते है ।

1. खेत में जला कर ।
2. खेत से बहार निकलकर ।
3. खेत में ही मिट्टी में मिला कर ।
4. ज़मीन की ऊपरी सतह पर रख कर, इसमें अवशेष ज़मीन पर ही रहते है कुछ समय बाद विघटित हो जाते है ।

किसानों को पता है कि भूसे को जलाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, उनके पास फसल अवशेषों को प्रभावी ढंग से उपयोग करने के विकल्प नहीं हैं। इसलिए, केवल किसानों को दोषी ठहराते हुए वायु प्रदूषण की समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। इसके निवारण के लिए टिकाऊ तकनीकी समाधान खोजने की आवश्यकता है जो कि किसानों की सहायता कर सकें और साथ ही हम सभी स्वच्छ हवा में सांस ले सकें।

तकनीकी हस्तक्षेप (आधुनिक तकनीकों द्वारा)

- ❖ फसल अवशेष को मल्व के रूप में लेकर भूमि का सूधार।
- ❖ फसल अवशेष का प्रयोग खाद, केंचुआ खाद व खेत की खाद बनाने के काम में लिया जा सकता है।
- ❖ फसल अवशेषों का प्रयोग मशरूम की खेती के लिए किया जा सकता है।
- ❖ फसल अवशेष के बचाव के लिए बेहतर मशीनरी की खरीद को प्रोत्साहित कर सकते है।
- ❖ कस्टम हायरिग व कृषि सेवा केंद्र का प्रचार करके ।
- ❖ यथास्थान प्रबंधन के लिए कंबाइन हारवेस्टर में सुधार ।
- ❖ फसल अवशेष के संग्रह के लिए यथास्थान प्रबंधन और अन्य तंत्र के लिए कंबाइन हारवेस्टर में सुधार।

फसल अवशेष के विविध उपयोग

- ❖ पी पी पी मोड में सेलुलोसिक इथेनॉल का उत्पादन, विद्युत उत्पादन में उपयोग करके।
- ❖ पेपर/बोर्ड /पैनल और पैकिग सामग्री के लिए फसल अवशेष का उपयोग करके।
- ❖ ईंटों के लिए फसल अवशेषों का ईंधन के रूप में प्रयोग करके और चारा की कमी वाले क्षेत्रों में इसका परिवहन करके।

प्रशिक्षण और जागरूकता

- ❖ फसल अवशेषों के प्रबंधन के लिए किसानों के प्रशिक्षण का आयोजन।
- ❖ दूरदर्शन, प्रिंट मीडिया व समाज द्वारा अकेन्द्रित ढंग से संचालित माध्यम (मीडिया) - जैसे फेसबुक, ट्विटर आदि के माध्यम से जागरूकता ।
- ❖ आर्थिक मदद (सब्सिडी) प्रदान करके बेरोजगार युवाओं के स्व सहायता समूह के माध्यम से कस्टम भर्ती केंद्रों की स्थापना ।
- ❖ फसल अवशेष प्रबंधन प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन।

धान की भूसे का खेत से बाहर निकलने के बाद उपयोग

बिजली उत्पादन के लिए उपयोग

क) बायोमास आधारित बिजली संयंत्र: उपलब्ध धान की पुराली का प्रभावी ढंग से बिजली उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है, जो इस क्षेत्र में फसल अवशेषों और बिजली घाटे के निपटान की समस्या पर काबू पाने की दिशा में एक लंबा सफर तय करेगा। नई और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक, उत्तर भारत ने महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे राज्यों की तुलना में बायोमास आधारित बिजली उत्पादन संयंत्र बनाने में कोई प्रगति नहीं की है। इस प्रकार, धान के भूसे-आधारित बिजली संयंत्रों में निवेश करने की बड़ी संभावना है जो बड़ी मात्रा में जलाने से बचाने में मदद कर सकती है और रोजगार के अवसर भी पैदा कर सकती है। हालांकि, बिजली संयंत्र प्रमोटर किसानों को पेश किए जाने वाले कटर, रेकर्स, बेलर इत्यादि जैसे कृषि उपकरणों पर सब्सिडी के रूप में अधिक प्रोत्साहन चाहते हैं। यह बिजली उत्पादन, गैसीफिकेशन/पायरोलाइसिस, तरल पदार्थ (थर्मो-रासायनिक प्रक्रिया), पाचन, किण्वन, इथेनॉल उत्पादन, जैव-मेथनेशन (जैविक प्रक्रिया) इत्यादि में इस संसाधन के संग्रह, हटाने, परिवहन और उपयोग की सुविधा प्रदान करेगा।

ख) जैव ईंधन के उत्पादन के लिए उपयोग: जैव ईंधन के उत्पादन के लिए धान की भूसे को पायरोलिज्ड (उच्च तापमान के लिए हीटिंग के माध्यम से विघटित) किया जा सकता है जिसका उपयोग

बिजली उत्पादन के लिए किया जा सकता है और चार उत्पादन का अतिरिक्त लाभ भी हो सकता है जिसका उपयोग मिट्टी के निषेचन के लिए या ऊर्जा उत्पादन के लिए दहन के लिए किया जा सकता है।

जैव-तेल, बायोचर और गैस जैसे बहुत स्थिर उत्पाद। इन उत्पादों का उपयोग ऊर्जा उत्पादन के लिए किया जा सकता है और बायोचर का एक संभावित उपयोग इसे मिट्टी में वापस लाने के लिए होगा ताकि फसल द्वारा निकाले गए पोषक तत्वों को बहाल किया जा सके। यह कार्बन अनुक्रमण का एक सही तरीका भी है।

ग) बायोमीथेन का उत्पादन: धान की पुराल में से 200-300 घन मीटर प्रति टन बायोमीथेन गैस का उत्पादन किया जा सकता है। हालांकि धान की पुराल में लिग्निन और सिलिका होती है, जो माइक्रोबियल और / या एंजाइमेटिक प्रक्रिया को रोकती है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए, सिलिका को हटाना आवश्यक है। हालांकि, 50 टन प्रति दिन क्षमता का उपयोग कर बिजली उत्पन्न करने के लिए एक पूर्ण पैमाने पर बायोमीथेनेशन संयंत्र अप्रैल, 2014 से फाजिल्का में मैसर्स सम्पूरन कृषि वेंचर्स द्वारा संचालित किया जा रहा है। सूक्ष्म पोषक तत्वों और सिलिका में समृद्ध होने वाले इस संयंत्र से तैयार उत्पाद एक अच्छा प्राकृतिक उर्वरक/खाद है।

ज़मीन की घटती उपजाऊ शक्ति को फसल अवशेषों के जरिये, पोषक तत्वों को खेत से बाहर निकाल कर अन्य उत्पादों को ध्यान में रखते हुए, हमे खेत के अवशेष उसी खेत में मिलाने व रखने पर ज्यादा ध्यान रखना चाहिए। अवशेषों को जलाना व खेत से बाहर निकलना दोनों ही भूमि की उपजाऊ शक्ति को घटाते है ।

फसल अवशेषों को भूमि में मिलाकर : मिट्टी में फसल अवशेषों का समावेश मिट्टी की नमी में सुधार कर सकता है और बेहतर पौधों के विकास के लिए मिट्टी-सूक्ष्मजीवों के विकास को सक्रिय करने में मदद कर सकता है। हालांकि, संग्रह, काटने और पुराल को जमीन में मिलने के लिए उपयुक्त मशीनरी की आवश्यकता है। इसके अलावा, हटाए गए अवशेषों को कंपोस्टिग के माध्यम से समृद्ध जैविक खाद में परिवर्तित करने के लिए भी पहल की जा सकती है। इसके लिये हम विभिन मशीनो का प्रयोग कर सकते है।

स्ट्रा-रीपर :

यह मशीन कंबाइन द्वारा कटे गए फसल अवशेषों को बारीक़ काट कर भूसे में बदल देती है और इस भूसे को जाली युक्त ट्राली में डालती रहती है।

लाभ

- ❖ कंबाइन द्वारा काटे गए गेहूं के भूसे को पुनर्प्राप्त करती है।
- ❖ गेहूं के भूसे के रूप में पुनर्प्राप्त गेहूं के भूसे का उपयोग किया जाता है।
- ❖ औसतन मशीन की क्षमता 0-4 हैक्टर प्रति घण्टे है और भूसा रिकवरी लगभग 55-60 प्रतिशत है।
- ❖ भूसे की गुणवत्ता पारम्परिक थ्रेशर के भूसे के बराबर होती है।
- ❖ इसके अतिरिक्त 50-100 किलो प्रति हैक्टर अनाज लिया जा सकता है।

धान अवशेष कटाई मशीन (पैडी स्ट्रा चोपर)

- ❖ गेहूं, धान, मक्का, ज्वार, सूरजमुखी आदि जैसे सभी प्रकार के फसल अवशेष/भूसे को काटने के लिए यह एक आदर्श मशीन है।

- यह एक समय में बचे हुए फसल अवशेषों को बारीक़ काटता है और खेत में बराबर फैलाता रहता है ।
- कटा हुआ और फैला हुआ फसल अवशेष आसानी से मिट्टी में रोटैवेटर या डिस्क हैरो के द्वारा एक बार में ही भूमि में मिलाया जा सकता है।
- इसके बाद, गेहूं की बिजाई सामान्य रूप से ड्रिल या पारंपरिक ड्रिल/अन्य उपकरणों के उपयोग से की जा सकती है ।
- मशीन में एक रोटरी शाफ्ट होती है जिसमे ब्लेड होते है जो फसल अवशेषों को काटने का काम करते है।

लाभ

- वायु प्रदूषण को कम करता है।
- ईंधन और श्रम लागत को कम करता है।

फसल अवशेषों को ज़मीन की ऊपरी सतह पर रख कर:

शून्य जुताई मशीन (जीरो टिलेज मशीन): शून्य जुताई खेती गेहूँ व अन्य फसल को बिना भूमि की अतिरिक्त दोहन करके फसल बोना का तरीका है।

लाभ

- यह मशीन श्रम, समय और ईंधन बचाती है।
- मशीनी टूट-फूट कम होती है।
- भूमि की जुताई में सुधार व जैविक कार्बन बढ़ता है।
- भूमि में नमी संरक्षण होता है और भूमि का दोहन कम होता है।

हैप्पी सीडर

हैप्पी सीडर अद्वितीय तकनीकों में से एक है जिसमे गेहूँ की बिजाई फसल अवशेषों को बिना जलाये की जाती है इस मशीन में रोटर इकाई बीजाई इकाई के सामने संलग्न होती है जो पंक्तियों के बीच में स्ट्रा को काटती है और फैलाती है। अवशेष के अधिकांश हिस्सों को बिना छेड़े गेहू की बिजाई एक बार में ही हो जाती है। यह तकनीक मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए व पर्यावरण के अनुकूल है और साथ ही यह पानी भी बचाती है।

लाभ

- गेहूँ लगाने से पहले चावल के स्टबल को जलाने की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए वायु प्रदूषण को कम होता है।
- सीधी बुवाई भी भूमि की छेड़खानी को कम कर देती है, जिससे इसे अधिक पोषक तत्व, नमी और जैविक सामग्री को बनाए रखने में मदद मिलती है।

- बुवाई के लिए कम समय की आवश्यकता होती है, जिससे बदले में ईंधन और श्रम लागत कम हो जाती है।

मल्चर मशीन

यह मशीन धान, मक्का, सूरजमुखी और तम्बाकू के फसल अवशेषों को बारीकी से काटती है। रोलर पर जो चाकू लगाए जाते हैं, वे लंबवत घूमते हैं। यह मशीन बागानों में खरपतवार और फसल डंठलों को तोड़ देती है। काटने की ऊचाई मशीन के पीछे दो पहियों द्वारा समायोज्य है।

हे-रैक

- इस मशीन का उपयोग फसल अवशेषों के कतारों को इकठा करने के काम आता है, जिसे बेलर द्वारा बाद में उठा लिया जाता है।
- यह मशीन घास को फैलाने के काम भी आती है, इस घास को सुखाया जा सकता है।
- यह बेलर के काम को कम कर देती है।

बेलर

यह मशीन धान, गेहूँ, ईख के अवशेषों को संकुचित करके इनकी गांठ बना देती है। जिन्हे उठाने, परिवहन व संग्रह करने में आसानी होती है। दो अलग-अलग प्रकार के बेल - आयताकार या लेनाकार, विभिन्न आकारों, जुड़वां, स्ट्रैपिंग, नेटिंग या तार से बंधे होते है।

लाभ

- फसल अवशेषों को गांठ में बदल दिया जाता है जिसका प्रयोग जानवरों के भोजन के साथ-साथ जैव ईंधन के लिए किया जाता है।
- किसानों के लिए बिजली संयंत्रों में गांठ बेचने के लिए वैकल्पिक व्यवसाय बन सकता है।
- पर्यावरण को वायु प्रदूषण से बचाता है।

सुपर स्ट्रा मैनेजमेंट सिस्टम (सुपर एस एम एस):

सुपर एसएमएस छोटे टुकड़ों में फसल अवशेषों को काटता है और कंबाइन के पीछे इसे फैला देता है । इसके अतिरिक्त कंबाइन हार्वेस्टर में सेल्फ -प्रोपेल्ड अवशेष इकाई लगाई जा सकती है।

लाभ

- गेहूँ की सीधी बिजाई आसानी से हो जाती है।
- भूसे को सामान रूप से फैलाने पर भूमि की नमी संरक्षण होता है।
- फसल अवशेषों को न निकालने व जलने से रोकता है।

कागज़ उद्योग लगा कर : वर्तमान में कार्डबोर्ड बनाने और पैकिंग उद्योगों और पेपर मिलों के लिए धान की स्ट्रा की सीमित मात्रा का उपयोग किया जाता है। हालांकि औद्योगिक उपयोग के लिए नए अवसर - जैसे खमीर प्रोटीन के निष्कर्षण - वैज्ञानिक अनुसंधान के माध्यम से खोजा जा सकता है।

नई किस्मों का इजाद करके : चावल की किस्मों को विकसित करने की भी आवश्यकता है जो अनाज उपज में समृद्ध और भूसे की गुणवत्ता में उच्च दोनों हैं। ऐसी दोहरी प्रयोजन वाली चावल की किस्मों का उपयोग खाद्य सुरक्षा, कृषि आय को बनाए रखने और पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार करने में मदद करेगा।

बदलते जलवायु परिवेश में एकाधिक वातावरण परीक्षण (एमईटी) का महत्व

मुकेश चौधरी*, जीतराम चौधरी, बहादुर सिंह जाट, अभिजीत कुमार दास, प्रदीप कुमार, दीप मोहन महला एवं विशाल सिंह
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, प.कृ.वि. परिसर, लुधियाना-141004
*संवादी लेखक का ई-मेलः mukesh.agri08@gmail.com

एकाधिक वातावरण परीक्षण (एमईटी) विभिन्न वातावरणों में किये गये परीक्षण या प्रयोग होते हैं जो वातावरण के एक सेट में पुनरावृत्ति योग्य कारको के साथ-साथ गैर- पुनरावृत्ति योग्य कारको और वातावरण के साथ परस्पर क्रिया के कारणों और तंत्र को समझने में सहायता के लिए एक प्रणाली के रूप में कार्य करते हैं । एमईटी विभिन्न मृदाओं में फसल किस्मों के सापेक्ष प्रदर्शन की जांच करने या नई फसल लाइनों में विभिन्न लक्षणों जैसे- सूखा या लवणता सहनशीलता की जांच करने में बहुत मददगार हैं। चूंकि जीनोटाइप अलग –अलग वातावरणों में अलग-अलग प्रतिक्रिया देते हैं अतः विभिन्न परिवेशों के तहत जीनोटाइप के प्रदर्शन के आधार पर जीनोटाइप की सारणी (एरे) के वर्गीकरण के लिए एमईटी का बहुत अधिक उपयोग किया जा सकता है। एक वातावरण में बेहतर प्रदर्शन करने वाली किस्म किसी अन्य वातावरण में खराब प्रदर्शन कर सकती है। कुछ किस्मे, जो विभिन्न वातावरणों में समान रूप से बेहतर प्रदर्शन कर सकती है, को मेगा किस्मों के रूप में जाना जाता है।

एमईटी के घटक

एमईटी में दो मुख्य घटक हैं-

1) विकल्प- प्रजनन कार्यक्रम में उपयोग में लिए जाने वाले जीनोटाइप विकल्प के रूप में कार्य करते हैं जैसे- प्रजनन लाइनें या जर्मप्लाज्म (जननद्रव्य)।

2) संदर्भ- सामान्यतः वातावरण संदर्भ के रूप में कार्य करते हैं जैसे- स्थान, मौसम, प्रबंधन आदि

एमईटी के सिद्धांत

यह विकल्प × संदर्भ अंतर्संबंध (जीनोटाइप × वातावरण अंतर्संबंध) के सिद्धांत पर आधारित है तथा इसके साथ ही यह कृषि-पारिस्थितिकीय तीव्रता (एईआई) की अवधारणा पर भी निर्भर करता है, जिसके अंतर्गत किस्मों का एक सेट जिसको बढने की जरूरत है, को सर्वोत्तम परिस्थितिकी प्रदान करना है। जैसे एईआई के तहत दिल्ली में सेब की खेती की अनुमति नहीं है क्योंकि इसे समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है अतः सेब के लिए हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर उचित वातावरण वाले क्षेत्र है।

एमईटी के उद्देश्य

पर्यावरण संदर्भ को छोटे स्तर पर यानी सूक्ष्म-वातावरण या बड़े स्तर पर यानी बृहद-वातावरण पर देखा जा सकता है। माइक्रो-वातावरण विशेष स्थान तक ही सीमित होता है जैसेः एक किस्म लाल मिट्टी या काली मिट्टी के लिए उपयुक्त है। मेगा- वातावरण कई सूक्ष्म वातावरणों को मिलाकर बनाया जाता है।

एमईटी का मुख्य उद्देश्य मेगा किस्मों की पहचान करना है जो मेगा-वातावरण के लिए उपयुक्त हो, क्योंकि मेगा किस्में माइक्रो-वातावरण में तो लगातार अच्छा प्रदर्शन करती ही हैं। उदाहरण के लिए यदि हम 10 उपयुक्त स्थानों यानी 10 माइक्रो-वातावरण की पहचान करते हैं और यदि ये पहचान किये गए 10 स्थान उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र (एनडब्ल्यूपीजेड) जैसे विशिष्ट क्षेत्र के द्योतक हैं तो पहचान किये गए 10 स्थानों को मेगा वातावरण / उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के लिये लक्षित जनसंख्या पर्यावरण (टीपीई) के रूप में माना जा सकता है। इसलिए एमईटी के तहत, मेगा किस्मों की पहचान के मुख्य मानदंडों पर जोर दिया जाना चाहिए जो कि विभिन्न माइक्रो-वातावरण में समान रूप से बेहतर प्रदर्शन कर सकती है।

एमईटी केंद्रित या विकल्प × संदर्भ अंतर्संबंध पर आधारित हैं इसलिए यह निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने में काफी मदद करता हैः

1. संदर्भों /वातावरणों की विस्तृत श्रृंखला पर स्थिर होने वाले विकल्पों को पहचानने के लिए।
2. स्थानीय रूप से अनुकूलित या अत्यधिक संदर्भ विशिष्ट विकल्पों को खोजने के लिये। इसे विशिष्ट क्षेत्र मिलान कहा जाता है।
3. किसी विशेष विकल्प के लिए संदर्भ की एक श्रृंखला को परिभाषित करने के लिए यानी प्रजनकों की मेगा-वातावरण अवधारणा।
4. अध्ययन में शामिल स्थानों पर किये गये परीक्षणों के परिणामों या जानकारी का नये क्षेत्रों में आंकलन करना ।
5. जीनोटाइप × वातावरण अंतर्संबंध की अवधारणा को समझने और नए विकल्पों को नए संदर्भों में लाने के लिए।

एमईटी के प्रकार

उपलब्ध विकल्पों और लक्ष्य संदर्भों के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने के आधार पर एमईटी को कई प्रकारों में वर्गित किया जा सकता है।

एमईटी के प्रकार	उद्देश्य	विकल्प	संदर्भ
1. जर्मप्लाज्म मूल्यांकन परीक्षण (जीईटी)	प्रजनन कार्यक्रमों में परिनियोजन के लिए जर्मप्लाज्म संग्रह को चिहित करना	विशेष फसलों के लिए आनुवंशिक रूप से विविध संग्रह	प्ररूपी या विशिष्ट वातावरण
2. प्रजनक मूल्यांकन परीक्षण (बीईटी)	प्रजनन उद्देश्य के लिए उपयुक्त प्रजनन लाइनों को निर्धारित करने हेतु जैसे- किस्म स्थिरता	प्रजनन (वंश-सुधार) लाइनें	प्रजनन उद्देश्य के आधार पर यानी कृषि पारिस्थितिक क्षेत्र
3. सहभागिता किस्म मूल्यांकन (पीवीई)	किसान के पसंदीदा लक्षणों में भौगोलिक विविधता को समझने के लिए विकसित किस्मों का मूल्यांकन	पहले से ही विकसित फसल की किस्में	लक्ष्य क्षेत्र के भीतर पारिस्थितिकीय पनाह या समुदाय
4. स्थानीय अनुकूलन परीक्षण (एलएटी)	कृषि-पारिस्थितिकीय वातावरण के लिए फसल किस्मों की विशिष्ट आवश्यकताओं जैसे- मिट्टी और पानी को जानने के लिए	उच्च संदर्भ विशिष्ट जैसे- लघु अवधि किस्म	मिट्टी, पानी या अन्य कृषि-पारिस्थितिकीय वातावरण की एक विस्तृत श्रृंखला का स्थानों का नमूनाचयन
5. क्षेत्र विशिष्ट मिलान परीक्षण (एनएमटी)	विशिष्ट पारिस्थितिकीय क्षेत्र, जैसे- उच्च ऊंचाई के लिए उपलब्ध विकल्पों का परीक्षण करने के लिए	वैकल्पिक फसलें और प्रबंध विकल्प	पीवीई आधारित सामाजिक- पारिस्थितिक क्षेत्र खोजे गए

एमईटीएस आयोजित करने के लिए महत्वपूर्ण निर्देश

1. पूर्व उपलब्ध तथ्यों और परिणामों के आधार पर उद्देश्यों को ठीक से निर्दिष्ट करें।
2. व्यक्तिगत या संगठन जैसे प्रतिभागियों के साथ एक बैठक आयोजित करें।
3. अध्ययन में शामिल करने के लिए उपलब्ध विकल्पों और संदर्भों का निर्धारण करें। उदाहरण के लिए- जीनोटाइप, डिजाइन, स्थान, बुवाई की तारीख आदि।
4. इसके उपरांत प्रतिभागियों को पर्याप्त राशि में इनपुट वितरित करें।
5. परीक्षण क्षेत्र में अवलोकनों की संख्या, प्रकार तथा अवलोकन समय की योजना बनाएं।
6. प्रत्येक प्रतिभागी को जिम्मेदारी सौंपें और उन्हें डेटा संग्रह के बारे में विस्तृत रिपोर्ट (प्रोटोकॉल) प्रदान करें और फिर इसके लिए कार्यप्रणाली का पालन किया जाना चाहिए।
7. अब परीक्षण शुरू करके परियोजना को लागू करें।
8. गुणवत्ता जांच नियमित रूप से की जानी चाहिए जैसे - प्रत्येक स्थान से नियमित प्रतिपुष्टि, प्रत्येक स्थान से बाधाओं का निष्कासन, प्रतिभागियों में सुनिश्चित संचार, गतिविधियों के नियमित दस्तावेजीकरण, नियमित विश्लेषण के बाद नियमित अवलोकन रिकॉर्डिंग सुनिश्चित करना आदि।
9. कुशल गुणवत्ता जांच उचित डेटा प्रदान करता है।
10. उचित डेटा का समय पर विश्लेषण करें।
11. व्याख्या और परिणाम।

एमईटी के लाभ

1. यह विशेष स्थान पर किसी विशिष्ट किस्म के प्रदर्शन द्वारा किसानों को होने वाले जोखिमों से बचाने में मददगार है।
2. यह सीमित संसाधनों के बेहतर उपयोग में मदद करता है क्योंकि संसाधन विशिष्ट संदर्भ प्रजनन के माध्यम से संरक्षित किये जाते हैं।
3. यह एक प्रासंगिक या लक्षित उन्मुख दृष्टिकोण है जो करके देखना वाले दृष्टिकोण को नहीं मानता हैं।
4. यह किसानों के लिए अत्यधिक स्थिर या मेगा-किस्मों को पहचानने में मदद करता है।

भण्डारण फफूंद का बीजों पर प्रभाव व उनका प्रबन्धन

सतबीर सिंह जाखड़[1], प्रीति[2], सौरभ[1] एवं निर्मल सिंह[1]
[1]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा
[2]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
*संवादी लेखक का ई-मेलः bahadursinghnanda@gmail.com

बीज को भण्डारगृहों में नुकसान से बचाना व इसकी गुणवत्ता को बनाये रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है । बीज अच्छा तो फसल अच्छी । प्रायः सभी फसलों में बीजों को कुछ समय भण्डारण के पश्चात् ही बोया जाता है। भण्डारण के दौरान बीज में उगने वाली फफूंदियाँ, बिना मुक्त पानी तथा उच्च ओसमेटिक (Osmotic) दबाव वाले माध्यमों पर उगने की क्षमता रखती है तथा विशेषतया फसल कटने से पहले आक्रमण नहीं करती ।

बीज में भण्डारण फफूंद (कवक) के पनपने को निर्धारित करने में, नमी की मात्रा तथा तापक्रम, दोनों प्राथमिक कारक है । लेकिन इस बात को मद्वेनजर रखना बहुत जरूरी है कि यदि दानों पर थोड़ा सा भी फफूंद का संक्रमण है तो फफूंद भण्डारगृह में निम्न तापक्रप, यहाँ तक कि बर्फ जमने या इससे भी निम्न तापक्रम पर, धीरे-धीरे उग सकती है । यह बात बीज में सामान्यतः पाई जाने वाली पैनीसिलियम की कुछ प्रजातियों पर खरी उतरती है बशर्ते आपेक्षिक आर्द्रता उच्च हो ।

पैनीसिलियम का आक्रमण

भण्डारण फफूंद के बीज पर हानिकारक प्रभाव

1. भण्डारण में बीज की अंकुरण क्षमता घटने के अनेक कारण हैं। इनमें से एक कारण भण्डारण फफूंदियों द्वारा बीज के भ्रूण भाग पर आक्रमण करना है ।
2. भण्डारण फफूंद पूरे बीज के भ्रूण भाग को बदरंग बना देती है ।
3. वसा अम्लों पर प्रभावः बीजों में वसा अम्लों में बढ़ोतरी भण्डारण फफूंद के द्वारा होती है जो कि भण्डारित बीज की गुणवत्ता को बुरी तरह से प्रभावित करती है ।
4. भण्डार फफूंदियाँ बीज के भीतर पहुँच कर बिना कोई बाहरी लक्षण के, बीज को भारी हानि पहुँचाती है ।
5. बहुत सारी फफूंदियाँ ऐसे जीवविष पदार्थ पैदा करती है जो कि मनुष्य व पशुओं के लिए बहुत हानिकारक होते है। भण्डारण फफूंदियों द्वारा उत्पादित जीवविष मनुष्यों में एलर्जी पैदा करते हैं । उदाहरण के लिए स्मट फफूंदियाँ श्वसन एलर्जी करती हैं जिनमें प्रमुख रूप से *अस्टिलागो मेडिस, टिलेशिया कैरीज* और *टिलेशिया फोईटिडा* शामिल हैं। इसी तरह क्लेवीसेपस परपूरिया नामक फफूंद के जहरीले चेपा/अरगट पिण्ड से ग्रस्त आटे का प्रयोग करने पर इरगोटिज्म (Ergotism) नामक बिमारी पाई गई । मनुष्यों में इसके कुप्रभाव उल्टियाँ, दस्त, हाथ व पैरों पर फटने के निशान तथा मानसिक खराबी के रूप में देखने को मिले । गाय, भैंस, भेड़, मुर्गियाँ और सुअरों पर भी इस जहर का प्रभाव गर्भाश्य व रक्त संचार पर पाया गया। इसी फफूंद की एक और प्रजाति क्लेवीसेपस पासपली के जीवविष से पशुओं में नाड़ी सम्बन्धी तन्त्र पर बुरा प्रभाव देखा गया ।
6. *ऐस्परजिलस फ्लेवस* फफूंद प्राय भूमि में सड़े हुए मूंगफली के बीजों में या फिर स्वस्थ बीजों पर भी पाई जाती है लेकिन इस फफूंद की कुछ ही प्रजातियाँ अफलाटोक्सीन पैदा करती है । ऐसे संक्रमित बीज का प्रयोग, मनुष्यों एवं जानवरों, दोनों के लिए बहुत हानिकारक है क्योंकि इस फफूंद द्वारा उत्पन्न किये गए अफलाटोक्सीन खाने पर कैंसर रोग उत्पन्न हो सकता है । यह फफूंद भण्डारण में उपयुक्त तापमान एवं आर्द्रता मिलने पर मूंगफली में अफलाटोक्सीन पैदा करती है । ताजा निकाली गई मूंगफली इस अफलाटोक्सीन से मुक्त होती हैं मगर निकालते समय उनमें किसी प्रकार की क्षति होने से या पकने से पहले उपयुक्त तापमान एवं आर्द्रता मिलने पर यह उत्पन्न हो जाता है । बीज में अगर 9 प्रतिशत से अधिक नमी हो तो यह फफूंद अत्यधिक वृद्धि करके अफलाटोक्सीन पैदा करती है। मूंगफली का धीरे-धीरे सूखना भी इस रोग को फैलाने में सहायक है। मूंगफली के अतिरिक्त, अफलाटोक्सीन गेहूँ, धान, सोयाबीन, कपास और मक्का में भी पैदा होता है।

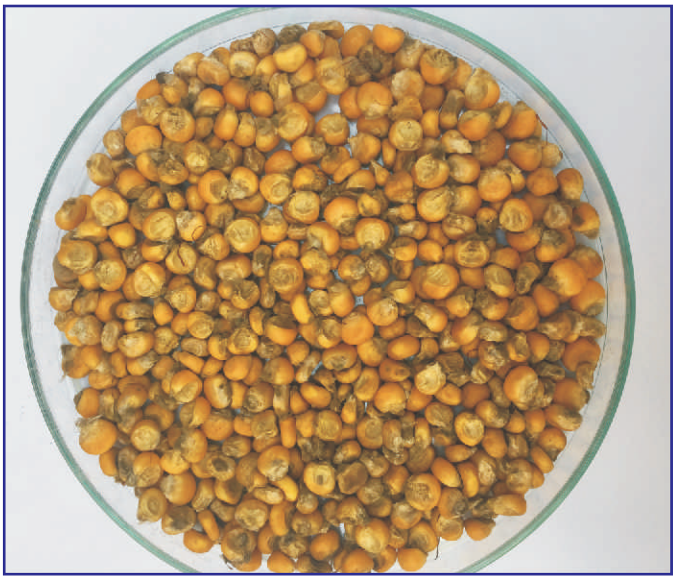

सावधानियाँ

(क) भण्डारण से पहले

1. बीज में नमी का स्तर 10-12 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए।
2. अफलाटोक्सीन को समाप्त करना तो मुश्किल है मगर इसकी मात्रा कम की जा सकती है। म्लानियुक्त एवं मरे हुए पौधें से ली गई मूंगफली इस रोग को उत्पन्न करने वाली फफूंद द्वारा संक्रमित हो सकती है। इसलिए इनको अलग करके नष्ट कर दें। बीज को निकालने के तुरन्त बाद सुखाकर उनकी नमी 8 प्रतिशत से कम करके संग्रह करें ।
3. इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि भण्डारगृह खलिहान से पर्याप्त दूरी पर होना चाहिए। भण्डारगृह की दीवारों, फर्श और छत में जहाँ भी दरारे हों, पलस्तर उखड़ा हो, उसे पलस्तर कर सतह को चिकनी बनाना चाहिए । चूहों के बिल हों तो उन्हें सीमेंट में कांच क्राकरी के टुकड़े मिलाकर पलस्तर कर देना चाहिए । दरवाजे, खिड़कियाँ बाहर की ओर खुलने वाली हो और खिड़कियों और रोशनदानों पर महीन जाली लगी होनी चाहिए, जिनमें से होकर कीट आ जा न सके ।
4. जहाँ तक सम्भव हो पुरानी बोरियों को नया बीज भरने के काम में नहीं लाना चाहिए । यदि उपयोग में लाना है तो 15 मिनट तक उबलते पानी में रखकर और बाद में तेज धूप में सुखाकर काम में लेना चाहिए ।
5. बीज में पड़े कुड़े-कर्कट को साफ कर देना चाहिए क्योंकि यह कीड़ों एवं फफूंदी की बढ़ोतरी में सहायता करते हैं ।
6. बीज प्रसंस्करण के समय बीज में नमी 12 प्रतिशत या इससे कम होनी चाहिए ताकि बीज को मशीन से होने वाली क्षति कम से कम हो ।
7. कीटनाशक दवाओं का एक छिड़काव (1 हिस्सा मैलाथियान 50 ई. सी. 25 हिस्सा पानी) साफ किए हुए भण्डार में करें ।

(ख) भण्डारण के दौरान

1. बीज के निरीक्षण तथा भण्डारण में हवा के संचार हेतु, दीवार एवं बोरी के ढ़ेर अथवा दो बोरी के ढ़ेरों के बीच में कम से कम 30 से. मी. का अन्तर अवश्य रखना चाहिए ।
2. बीज वाली बोरियों के ढ़ेर की ऊपरी सतह तथा छत के बीच में कम-से-कम 60 से. मी. का अन्तर अवश्य रखना चाहिए ।
3. उचित प्रबन्ध के लिए बोरियों के ढ़ेर का आकार 9 मीटर × 6 मीटर से अधिक नहीं होना चाहिए ।
4. बोरियों के ढ़ेर की ऊंचाई 3 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा भार व दबाव के कारण बीज को क्षति होने का डर रहता है।
5. रोशनदानों को तभी खोले, जब भण्डार के बाहर हवा की नमी और तापमान, अन्दर की नमी व तापमान से कम हो ।
6. बीज के भण्डारों को शुष्क एवं ठण्डा रखने से कीड़े एवं फफूंदी के प्रकोप को कम किया जा सकता है ।
7. बीज की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए बीज की नमी 9 प्रतिशत व भण्डार का तापमान 25 डिग्री सैल्सियस लाभकारी होता है ।
8. भण्डार एवं बीज का निरीक्षण नियमित रूप से करना चाहिए ।
9. दवाइयों, पशुओं के दानों, तेल एवं खाद आदि को बीज के साथ भण्डार न करें।
10. बीज भण्डारों में एथीलीन डाइब्रोमाइड (ई.डी.बी.) का प्रयोग कभी न करें क्योंकि इससे बीज की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।
11. यदि बचाव के उपायों के उपरान्त भी कीड़ों का प्रकोप होता है तो भण्डार का प्रद्युमण एल्मूनियम फास्फाइड से (7 टिक्की प्रति 1000 घन फुट स्थान) करना चाहिए । प्रद्युमण से पहले इस बात को निश्चित कर लें कि भण्डार हवा बन्द है ।

बीजोपचार का महत्त्व व उपयुक्त रसायन

प्रीति[1*], सौरभ[2] एवं निर्मल सिंह[2]
[1]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
*संवादी लेखक का ई-मेलः bahadursinghnanda@gmail.com

फसल उत्पादन मुख्यतः तीन घटकों पर निर्भर करता है - जलवायु, मिट्टी व बीज, इनमें से जलवायु पर मानवीय नियंत्रण शून्य है और भूमि को भी बदला नहीं जा सकता है लेकिन उसमें खाद, उर्वरक डालकर उर्वरा क्षमता में सुधार किया जा सकता है। परंतु बीज एक ऐसा आदान (इनपुट) है जिसका सही चयन कर उपज बढ़ाई जा सकती है तथा बीज जनित बीमारियों से फसलों में होने वाली हानि को 10 से 15 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। बीज उपचार एक शब्द है जो उत्पादों और प्रक्रियाओं दोनों का वर्णन करता है। बीज उपचार निम्नलिखित तरीकों में से किसी एक प्रकार से किया जा सकता है।

बीज ड्रेसिंगः यह बीज उपचार का सबसे आम तरीका है जिसमें बीज को या तो एक सूखे मिश्रण या लुग्दी अथवा तरल घोल से गीले रूप में उपचारित किया जाता है। ड्रेसिंग, खेत और उद्यान दोनों में लागू की जा सकती है। कम लागत के मिट्टी के बर्तन बीज को दवा के साथ मिश्रण करने के लिए इस्तेमाल किये जा सकते है या बीजों को एक प्लास्टिक चादर पर फैलाकर आवश्यक मात्रा में उस पर दवा छिड़क कर किसानों द्वारा यांत्रिक रूप से मिलाया जा सकता है।

बीज कोटिंग (लेप)

बीज पर अच्छे तरीके से चिपकने के लिए मिश्रण के साथ एक विशेष बाइंडर का उपयोग किया जाता है। कोटिंग के लिए उन्नत उपचार प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है।

उपचारित बीज

बीज पैलेटिंगः यह सर्वाधिक परिष्कृत बीज उपचार प्रौद्योगिकी है जिससे बीज की पैलेटिबिलिटी तथा हैंडलिंग बेहतर करने के लिए बीज का शारीरिक आकार बदला जाता है। पैलेटिंग के लिए विशेष अनुप्रयोग मशीनरी तथा तकनीको की आवश्यकता होती है और यह सबसे महंगा अनुप्रयोग है।

बीजोपचार का महत्त्व

1. बीज जनित बीमारियों एवं कीटों से फसल के बचाव के लिए बीजोपचार जरूरी है। छोटे दाने की फसलों, सब्जियों व कपास के अधिकांश बीज जनित रोगों के लिए बीज निसंक्रमण व बीज विग्रसन बहुत प्रभावकारी होता है।
2. बीजोपचार से बीज अंकुरण शीघ्र, समान और बेहतर होता है। बीजों को उचित कवकनाशी से उपचारित करने से बीज की सतह कवकों के आक्रमण से सुरक्षित रहती है, जिससे उनकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है। यदि बीज पर कवकों का प्रभाव बहुत अधिक होता है तो भंडारण के दौरान भी उपचारित सतह के कारण उनकी अंकुरण क्षमता बनी रहती है।
3. बीजोपचार भंडारण के दौरान कीटों से सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भंडार में रखने से पूर्व बीज को किसी उपयुक्त कीटनाशी से उपचारित कर देने से वह भंडारण के दौरान सुरक्षित रहता हैं कीटनाशी का चयन संबधित फसल, बीज के प्रकार और भंडारण अवधि के आधार पर किया जाता है।
4. बीजों की सुषुप्त अवस्था समाप्त करने के लिए बीजोपचार आवश्यक है।
5. बीजों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने के लिए बीजोपचार जरूरी है।

बीजोपचार के निम्नलिखित लाभ होते हुए भी काफी संख्या में ऐसे किसान अब भी हैं जो अब भी अनुपचारित बीज की बुवाई करते हैं। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में 80 प्रतिशत बीज की बुवाई बिना उपचार के की जाती है जबकि विकसित देशों में बीज की बुवाई शत-प्रतिशत उपचारित बीज से होती है। हमारे देश में ज्यादातर किसान न तो बीज उपचार से परिचित हैं और न ही बीज उपचार की विधि को अपनाते हैं। हालांकि बीज उपचार की विधि समेकित कीट प्रबन्धन में भी उचित रहती है। इसलिए उपचारित बीजों के लाभों का प्रचार प्रसार करना अतिआवश्यक है।

बीजोपचार हेतु रसायनों का चयन

1. अदैहिक औषधियां/रसायन (कान्टैक्ट): इन दवाइयों से बीज की ऊपरी सतह पर पाई जाने वाली फफूंद नष्ट की जा सकती है।

इसमें प्रमुख है फिनायल मरक्यूरी ऐसिटेट, मिथोक्सी इथाइल मरक्यूरी क्लोराईड, मैंकोजेब, थाईरम, कैप्टान आदि।

2. दैहिक औषधियां/रसायन (सिस्टैमिक): इन दवाइयों से बीज के अंदर पाई जाने वाली फफूंद को नष्ट किया जा सकता है। इनमें प्रमुख हैं - बेनलेट, वीटावैक्स, कार्बेन्डाजिम, बाविस्टिन तथा जीवाणुनाशक स्ट्रेप्टोसाईक्लीन आदि।

जीवाणु खाद से बीजोपचार

दलहनी एवं धान्य फसलों का राईजोबिया, एजोटोबैक्टर व पी.एस.बी. संवर्ध (कल्चर) से बीज उपचारण अधिक पैदावार में सहायता करता है। इसके लिए 50 ग्राम गुड़ का 250 मि.ली. पानी में घोल बनाकर बीजों पर डालें और बीजों को चिपचिपा कर लें। फिर सिफारिश की गई मात्रा में जीवाणु खाद से बीजों को इस प्रकार उपचारित करें कि सभी बीजों पर इसकी एक समान परत चढ़ जाए तत्पश्चात् इन बीजों को छाया में सुखाकर बिजाई कर दें।

सामान्यतया उपयोग में आने वाले जीवाणु कल्चर निम्न हैं

1. राइजोबियम जीवाणु: इन जीवाणुओं का दलहनी फसलों के साथ प्राकृतिक सहजीवता का सम्बन्ध होता है। ये दलहनी फसलों की जडों में रहकर ग्रंथियां बनाते है एवं नत्रजन स्थिर करते हैं। इनके द्वारा स्थिर की गयी नत्रजन की मात्रा जीवाणु विभेद, पौधों की किस्में, मृदा गुणों, वातावरण, सस्य क्रियाओं आदि पर निर्भर करती है। राइजोबियम - दलहन सहजीवता से 100-200 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष स्थिर होती है।

2. ऐजोटोबेक्टर जीवाणु: ये जीवाणु गैर दलहनी फसलों जैसे गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, आदि के लिये उपयुक्त है। ये 20-30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर तक स्थिर करते है।

3. फास्फोरस विलयकारी जीवाणु (पी.एस.बी.): ये जीवाणु मृदा में उपस्थित अविलेय, स्थिर तथा अप्राप्त फास्फोरस की विलेयता को बढ़ाकर पौधों को उपलब्ध कराने में सहायक होते है। इसका उपयोग लगभग सभी फसलों में हो सकता है। अलग-अलग दलहनी फसलों की जड़ों में राइजोबियम नामक जीवाणु की अलग-अलग प्रजाति होती है, इसलिये अलग-अलग जीवाणु या कल्चर की जरूरत पड़ती है।

बीज उपचार करते समय सबसे पहले दीमक की रोकथाम के लिए

क्लोरोपायरीफोस से उपचारित बीज की बुआई

कीटनाशी दवा का उपयोग बुवाई से पहले दिन करना चाहिए ताकि कीटनाशी दवा का घोल बीज में अच्छी तरह से समा जाये। अगले दिन कवकनाशी और अन्त में जीवाणु खाद के टीके बीज में मिला दें।

बीजोपचार करते समय सावधाानियां

1. बीजोपचार हेतु खरीदे गए रसायन की अंतिम तिथि अवश्य देख लें।
2. रोग के अनुसार ही सम्बंधित रसायन का चयन करें।
3. जितने बीज की बुवाई करनी है उतना बीज ही उपचारित करें।
4. उपचारित बीज को गीली जगह पर न रखें।
5. दवा के खाली पैकेट्स या डिब्बे नष्ट कर दें।
6. बचे हुए उपचारित बीज को खाने के काम न लेवें और न ही जानवरों को खिलाएं।

वर्मीकम्पोस्टः मृदा उर्वरता के लिए उपयोगी

पूनम यादव[1], दिनेश कुमार यादव[2], बृजेश यादव[2] अनिल कुमार वर्मा[2] नीलम यादव[3] एवं दीप मोहन महला[4*]
[1]पशुधन और उत्पादन प्रबंधन विभाग, एस.के.एन.कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर-303321
[2]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली-110012
[3]आनंद कृषि विश्वविद्यालय, आनंद-355110
[4]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना, पंजाब-141004
*संवादी लेखक का ई-मेलः deepmohan@outlook.com

हमारे देश का एक बड़ा भाग कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है। भारतवर्ष में 1960 के दशक में हरित क्रांति के प्रारंभ होने के साथ ही खाद्यान्नों के उत्पादन में वृध्दि हुई है। लेकिन अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरको का अधिक एव अनियमित प्रयोग किया जाता रहा है। रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों के अत्याधिक प्रयोग से भूमि के भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुणों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है तथा पर्यावरण संबंधी समस्याएं भी उत्पन्न हो रही है। मृदा को स्वस्थ बनाए रखने, उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पर्यावरण और स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जैविक खादों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

मृदा उर्वरता और फसल उत्पादन में जैविक खादों का महत्व

जैविक खादों के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थों का स्तर बढ़ता है जिसके परिणामस्वरुप मृदा में जैविक क्रियाएँ एवं जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है और उपजाऊ शक्ति बनी रहती है। पर्यावरण सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, भूमि की उर्वरा शक्ति बनाए रखने अथवा बढाने के लिए कार्बनिक/प्राकृतिक खादों का प्रयोग बढ़ाना चाहिए। जैविक खादों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट व हरी खाद प्रमुख है जो पौधों के लिए आवश्यक खनिज प्रदान करते हैं और फसलों के उत्पादन को बढाते है। जैविक खाद के प्रयोग से बढ़ी हुई हयूमस की मात्रा से न केवल मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है अपितु रासायनिक दशा भी सुधरती है। जैविक खाद के सड़ने पर निकलने वाले कार्बनिक अम्ल मृदा की पी.एच. को 7 से कम कर देते है जिससे पोषक तत्व पौधों को काफी समय तक मिलते रहते है तथा अगली ऋतु की फसलों को भी लाभ मिलता है। कीट, बीमारियों तथा खरपतवारों का नियन्त्रण भी जैव उत्पादो द्वारा किया जा सकता है।

जैविक खादों के प्रकार

जैविक खादो में फार्म यार्ड खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, वर्मी कम्पोस्ट इत्यादि शामिल हैं इसके अलावा जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पारिल्म, नील हरित शैवाल इत्यादि मुख्य है। केंचुए के प्रयोग द्वारा तैयार की गयी खाद की विधि को वर्मी कम्पोस्टिंग या केंचुए द्वारा कम्पोस्ट बनाना कहा जाता है तथा तैयार कम्पोस्ट को वर्मी कम्पोस्ट कहते है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए केंचुए का चयन

भूमि में मुख्यतः तीन प्रकार के केंचुए पाएं जाते है।

- एपीजेइक (उपरी सतह पर)
- एनीसिक (उपरी सतह के नीचे)
- इन्डोजेइक (गहरी सतह पर)

केंचुए की दो प्रजातियाँः ऐसिनिया फीटिडा एवं एंसिनिया होरटन्सिस मुख्य है। इनमें से ऐसिनिया फीटिडा का उपयोग अत्यधिक होता है इसे लाल केचुआ भी कहा जाता है। ये $0^{o}c$ से $35^{o}c$ तक के तापमान को सहन कर सकते है। ये प्रजाति कम समय में अधिक कम्पोस्ट बनाती है तथा इनकी प्रजनन क्षमता भी ज्यादा होती है।

ऐसिनिया होरटन्सिस का आकार ऐसिनिया फीटिडा से बडा होता है, परन्तु इनकी प्रजनन क्षमता कम होती है तथा कम्पोस्ट बनाने की क्षमता भी कम होती है।

केचुओ के मुख्य गुण

- केंचुए सड़ने, गलने व तोड़ने की प्रक्रिया को बढ़ाने में सहायक होते है।
- मृदा में वायु संचार के प्रवाह को बढ़ाने में सहायक है।
- जैव क्षतिशील व्यर्थ कार्बनिक पदार्थों का विखंडन व विघटन कर उन्हें कम्पोस्ट में बदलने मे सहायक है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ऊँचे, छायादार स्थान पर जमीन की सतह से ऊपर मिट्टी डालकर बेड बनाते है जिससे सूर्य की किरणें, गर्मी व बरसात से बचा जा सके। बेड में सबसे नीचे एक-दो इंच बालू/रेतीली मिट्टी बिछाते है। इसके ऊपर 3-4 इंच सरसों या गेहूं के भूसे की परत बिछाते हैं एवम् उस पर पानी छिड़क कर नम कर देते है। इसके बाद 8-10 इंच कार्बनिक पदार्थ जैसे गोबर की परत, पत्ते, बची हुई शाक सब्जियां आदि की परत डालते है। इसके बाद एक हजार केंचुए प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से छोड देते है। बेड के ऊपर ताजा गोबर का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि ताजा गोबर का तापमान अधिक होने के कारण केंचुए मर सकते है। केंचुए नम एवं अँधेरी जगह में रहना पसन्द करते है। इसलिए जब कम्पोस्ट की उपरी सतह सूखती है तो केंचुए नीचे की नम सतह पर चले जाते है। बेड में नमी बनाये रखने के लिए गर्मी में प्रति 2-3 दिन बाद एवं सर्दी में 1 बार पानी का छिड़काव करना चाहिए तथा बेड को बोरी/पत्तो से ढ़ककर रखना चाहिए। केंचुए ऊपर की सतह से खाते हुए नीचे की तरफ जाते हुए खाद में परिवर्तित कर देते है। 2-3 महीने में वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है। एक हजार केंचुए प्रतिदिन एक कि.ग्रा. वर्मी कम्पोस्ट तैयार करते है। खाद तैयार होने के बाद इसमें पानी छिडकना बन्द कर देते है और कम्पोस्ट को एकत्रित कर लेते है।

वर्मीकम्पोस्ट की विषेषताएं

- ❖ वर्मी कम्पोस्ट खाद प्राकृतिक और सस्ती होती है।
- ❖ मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते है।
- ❖ भूमि में उपयोगी जीवाणुओं की संख्या में वृध्दि होती है।
- ❖ रासायनिक खाद का उपयोग कम होने से कास्त लागत कम आती है।
- ❖ भूमि में वाष्पीकरण कम होता है अतः सिंचाई जल की बचत होती है।
- ❖ लगातार वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करने से ऊसर भूमि को सुधारा जा सकता है।
- ❖ फलों, सब्जियों एवं अनाजों का उत्पादन बढ़ जाता है और स्वाद, रंग व आकार अच्छा हो जाता है।
- ❖ पौधों में रोगरोधी क्षमता बढ़ती है एवं खेतों में खरपतवार भी कम होती है।
- ❖ पौधों को पोषक तत्वों की उपयुक्त मात्रा उपलब्ध कराता है।
- ❖ पौधों की जडो का आकार व वृध्दि बढाने में सहायक होता है।
- ❖ ग्रीन हाउस गैस के उत्पादन को रोकता है अतः पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहायक है।
- ❖ रोज़गार के अवसर बढ़ाने में सहायक है।

वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग

- ❖ खाद्यान्न फसलों में 5-6 टन प्रति हैक्टर की दर से डालना चाहिए।
- ❖ सब्जियों में 3-5 टन प्रति हैक्टर की दर से उपयोग करना चाहिए।
- ❖ बगीचों में 20 कि.ग्रा. प्रति पौधों के हिसाब से डालना चाहिए।
- ❖ वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग मल्च के रूप में भी किया जा सकता है।
- ❖ मृदा को सुधारने के लिए 1½-2 इंच मोटी परत फैलाकर एवं मिट्टी के मिलाने के बाद बागों में पौधों को लगाना चाहिए।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड का किसान हित में महत्त्व

पूनम यादव[1*], दिनेश कुमार यादव[2] एवं बृजेश यादव[2]
[1]पशुधन और उत्पादन प्रबंधन विभाग, एस.के.एन.कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर
[2]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
*संवादी लेखक का ई-मेलः deepmohan@outlook.com

कृषि और इससे संबंधित गतिविधियां भारत में कुल सकल घरेलू उत्पाद में 17 फीसदी का योगदान करती है। कृषि सीधे तौर पर मिट्टी से जुड़ी है और यदि मृदा की गुणवत्ता उत्तम नहीं होगी तो फसल भी अच्छा नहीं होगी इसलिए भारत सरकार द्वारा मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना फरवरी 2015 में चलाई गई। इसका कार्यन्वयन राज्य तथा केन्द्र सरकार के कृषि विभागों के माध्यम से किया जाता है। योजना पर होने वाले खर्च की 75 प्रतिशत राशि केन्द्र सरकार वहन करती है। राष्ट्रीय मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का उद्देश्य, अगले तीन सालों में 1345 रासायनिक प्रयोगशालाओं की मदद से, 14.5 करोड़ किसानों के खेतों की मिट्टी की जाँच करना है। इस योजना के तहत किसानो को एक हेल्थ कार्ड दिया जाएगा जिसमे किसानो की मृदा की गुणवता का परिक्षण किया जायेगा तथा साथ में उनको बताया जाएगा कि उसके खेत की मिट्टी को किस चीज की आवश्यकता है तथा उनके खेत में किस प्रकार की फसल लग सकती है ।इससे मृदा में सन्तुलित मात्रा और फसल की आवश्यकता के आधार पर रासायनिक खाद डाली जाएगी। वैज्ञानिकों का मानना है कि इससे खेतों में अधिक खाद डालने की प्रवृत्ति पर रोक लगेगी और मृदा की गुणवता खराब नहीं होगी। 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' के लिए उसका घोष वाक्य है- ''स्वस्थ धरा, खेत हरा''। अगर धरा स्वस्थ नहीं होती तो खेत हरा नहीं हो सकता है। किसान कितना ही उत्तम से उत्तम खाद और बीज डाल दें, धरती को पानी में डूबो करके रखें, लेकिन अगर धरती ठीक नहीं है, तो फसल पैदा नहीं होगी।

'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' क्या है ?

'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' एक रिपोर्ट है जो मृदा के गुणवता के बारे में जानकारी देता है। यह किसानो को अपने खेत के लिए 3 वर्षो में एक बार दी जाएगी। इसमें 12 मृदा मानकों का परीक्षण किया जाता है जो इस प्रकार है –नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, सल्फर, ज़िंक, आयरन, कॉपर, मैग्नीशियम, बोरोन, जैविक कार्बन, पीएच तथा इ. सी. ।

'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' कैसे बनाये जाते है ?

किसानो के खेतो से मिट्टी के नमूने लेकर देश के विभिन्न मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में भेजा जाता है। वहाँ उनका विभिन्न रसायनों द्वारा परीक्षण किया जाता है इसके लिए हर राज्य में सरकारी तथा प्राइवेट मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं का गठन किया गया है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड इस प्रकार बनाये जाते है –

(1) सबसे पहले मिट्टी के नमूनों को इकट्ठा करना।

(2) नमूनों को परीक्षण के लिए प्रयोगशाला में भेजना।

(3) विशेषज्ञ द्वारा मिट्टी की जाँच।

(4) जाँच के बाद परिणाम का विश्लेषण तथा व्याख्या।

(5) मृदा विशेषज्ञों द्वारा मृदा की गुणवत्ता तथा कमियों का आकलन।

निम्नलिखित स्थानों पर 12 मृदा मानको की जांच की जाती है -

- कृषि विभाग के स्वामित्व में मृदा परीक्षण प्रयोगशाला (एसटीएल) द्वारा या उनके कर्मचारी द्वारा।
- कृषि विभाग के स्वामित्व में मृदा परीक्षण प्रयोगशाला (एसटीएल) द्वारा परन्तु बाहरी स्त्रोत एजेंसी द्वारा।
- बाहरी स्त्रोत एजेंसी के एसटीएल द्वारा या उनके कर्मचारी द्वारा।
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्र और राज्य कृषि विश्वविद्यालय द्वारा।
- विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर/वैज्ञानिक/विद्यार्थी द्वारा।

इसका प्रयोग किसान कैसे कर सकता है?

कार्ड में किसान के खेत की मृदा पोषक तत्व स्थिति के आधार पर सूचना दी हुई रहती है। मृदा में निहित तत्वों की मात्रा के आधार पर उर्वरक प्रकार तथा उसकी मात्रा के बारे में सिफारिश दी जाती है। इसके अलावा मृदा अम्लता तथा क्षारीयता के आधार पर किसानो को मृदा सुधारको की जानकारी दी जाती है, ताकि किसान मूल्यवान फसलो का कम लागत पर उत्पादन कर सके।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड का किसानो को फायदा

किसानो के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत में ऐसे बहुत से अशिक्षित किसान भाई है जो मृदा की गुणवता तथा कमियों के बारे में नही जानते है। वो ये भी नही जानते की ज्यादा लाभ पाने के लिए कौन

सी फसल किस मृदा में लगाएं। वे सिर्फ अपने अनुभव से फसलो को उगाते है। ऐसे में 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' अपनी अहम भूमिका निभाता है। 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' से किसानो को होने वाले फायदे निम्नलिखित है-

(1) किसानो के मिट्टी की अच्छी तरह से जांच की जाती है जिससे वो उगाई जाने वाली फसल का सरलता से निर्धारण कर सकते है।

(2) मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा नियमित रूप से मृदा की जांच की जाती है हर 3 सालो में एक रिपोर्ट दी जा रही है यदि इस दौरान कुछ मानको में बदलाव आता है तो वो अपडेट कर दिए जाते है ।

(3) किसान लम्बे समय तक अपनी मृदा के स्वास्थ्य का रिकॉर्ड रख सकते है।

(4) यह कार्ड लोगो के लिए ज्यादा सहायक साबित हो सकता है जब समय की अवधि में एक ही व्यक्ति द्वारा नियमित रूप से करवाया जाये।

(5) मृदा कार्ड किसानो की फसल तथा क्षेत्र के अनुसार उर्वरक की सही मात्रा उपयोग सिफारिश में सहायक है।

(6) कुछ मृदाओं में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हुए भी किसान उर्वरक का उपयोग करता है जिससे उर्वरक तथा पैसे दोनों की हानि होती हैं मृदा कार्ड से इन हानियों को रोका जा सकता है।

(7) अंततः मृदा स्वास्थ्य कार्ड ऊपर दिखाए गए कारणों से फसल की पैदावार व किसान की आय बढ़ाने में मदद कर सकते हैं।

भारत के किसान लोग पूर्ण रूप से खेती पर निर्भर करते है। आने वाले समय में उनकी जरूरतों को देखते हुए मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का दायरा बढ़ाया जाए। उसे राष्ट्रीय समग्र स्वास्थ्य कार्ड का नाम दिया जाए। उसके अन्तर्गत निम्न जानकारियाँ भी दी जानी चाहिए-

1. रासायनिक फसल उत्पादों के सेवन से कौन-कौन सी बीमारियों का खतरा है?

2. सन्तुलित खाद और कीटनाशकों के कारण प्रदूषित हुए भू-जल में कौन-कौन सी बीमारियों की सम्भावना का खतरा बढ़ गया है? समग्र स्वास्थ्य कार्ड में उन रसायनों और प्रभावित भू-जल के उपयोग से होने वाली बीमारियों से बचने के लिये सावधानियों का उल्लेख हो।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल

मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल का उद्देश्य राज्य सरकारों द्वारा प्रदत्त उर्वरक सिफारिशों अथवा आईसीएआर के द्वारा विकसित मृदा परीक्षण-फसल प्रतिक्रिया (एसटीसीआर) फॉर्मूले के आधार पर मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनाना और जारी करना है। किसान मिट्टी के नमूने और परीक्षण प्रयोगशाला की रिपोर्ट के विवरण के साथ-साथ वेब पोर्टल www.soilhealth.dac.gov.in पर रजिस्टर कर सकते है। एक बार पंजीकरण होने के बाद किसान पोर्टल में मृदा गुणवता परीक्षण परिणाम, उर्वरक और पोषक तत्वों की सिफारिश तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड का लम्बे समय तक रिकॉर्ड देख सकते है।

नील हरित शैवाल का उत्पादन एवं प्रयोग

दिनेश यादव[1], बृजेश यादव[1], पूनम यादव[2], अनिल कुमार वर्मा[1] एवं दीप मोहन महला[3*]

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली-110012

[2]पशुधन और उत्पादन प्रबंधन विभाग, एस.के.एन. कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर-303329

[3]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना, पंजाब-14004

*संवादी लेखक का ई-मेलः deepmohan@outlook.com

पौधों के समुचित विकास के लिए आवश्यक 17 पोषक तत्वों में नत्रजन (नाइट्रोजन) एक प्रमुख तत्व है। वर्तमान में फसलों एवं पौधों को नाइट्रोजन की आपूर्ति मुख्यतया रासायनिक उर्वरकों के द्वारा की जाती है। रासायनिक उर्वरकों के अलावा शैवाल तथा जीवाणु की कुछ प्रजातियां वायुमंडलीय नाइट्रोजन (78.9 प्रतिशत) को स्थिरींत कर मृदा तथा पौधों को प्रदान करते है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले इन सूक्ष्म जीवाणुओं को जैव उर्वरक कहते हैं एवं इस क्रिया को जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। नील-हरित शैवाल एक विशेष प्रकार की काई होती है जो प्रकाश संश्लेषण से ऊर्जा उत्पादन करती हैं एवं आंशिक मात्रा में धान के फसल की नाइट्रोजन पूर्ति करती है।

नील-हरित शैवाल की प्रजातियां

धान के खेत का वातावरण नील-हरित शैवाल की वृद्धि के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। जलाक्रान्त दशा, जिसमें धान उगाया जाता है, के लिए नील-हरित शैवाल की औलोसिरा, ऐनाबिना, कैलोथ्रिक्स, प्लेक्टोनेमा, हैप्लोसीफान, साइक्रोकीटे, नोस्टॉक और टोलीपोथ्रिक्स नामक प्रजातियों के लिए सर्वथा उपयुक्त रहती हैं। इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक तापमान, प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों की मात्रा धान के खेत में विद्यमान रहती है।

नील-हरित शैवाल की उत्पादन विधि

5-10 मीटर लम्बा, 1-1.5 मीटर चौड़ा तथा 10 से 15 सेमी गहरा पक्का टैंक बना लें। टैंक की लम्बाई आवश्यकतानुसार घटाई बढ़ायी जा सकती है। टैंक उंचे व खुले स्थान पर होना चाहिए, जहाँ पर पानी की उपलब्धता अच्छी हो। टैंक के स्थान पर लगभग 12 से 15 सेमी गहरा, 1 मीटर चौड़ा और आवश्यकतानुसार लम्बा कच्चा गड्ढा बना सकते हैं। कच्चे गड्ढे में 400-500 गेज मोटी पालीथीन बिछा लें।

टैंक व गड्ढे में 5 से 6 इंच तक पानी भर लें तथा प्रति मीटर लम्बाई के हिसाब से 1-1.5 किलोग्राम खेत की साफ-सुथरी भुरभुरी मिट्टी, 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट एवं 10 ग्राम कार्बोफयुरान डाल कर अच्छी तरह मिला लें तथा दो-तीन घण्टे के लिए छोड़ दें।

मिट्टी बैठ जाने पर 100 ग्राम प्रति मीटर लम्बाई के हिसाब से, शैवाल स्टार्टर कल्चर पानी के उपर समान रूप से बिखेर दें।

लगभग 2-3 सप्ताह में पानी की सतह पर शैवाल की मोटी परत बन जाती है। साथ ही साथ पानी भी सूख जाता है। यदि तेज धूप के कारण परत बनने से पहले ही पानी सूख जाये तब टैंक में और पानी डाल दें, पानी सावधानीपूर्वक किनारें से धीरे-धीरे डालें ।

शैवाल की मोटी परत बनने के एक हफ्ते बाद भी यदि गड्ढे व टैंक में पानी भरा हो, तो उसे डिब्बे इत्यादि से सावधानीपूर्वक बाहर निकाल दें।

शैवाल की परत बनने के पश्चात टैंक को धूप में सूखने के लिए छोड दें। पूर्णतया सूख जाने पर शैवाल को इकट्ठा करके पालीथीन बैग में भरकर ठंडी एवं सुखी जगह पर रख दें। बिना गुणवता क्षति हुए नील हरित शैवाल का अधिकतम 3 वर्ष तक भंडारण किया जा सकता है।

पुनः उपरोक्त विधि से उत्पादन शुरू करें तथा स्टार्टर कल्चर के स्थान पर उत्पादित कल्चर का प्रयोग करें। एक बार में 5 मीटर टैंक या गड्ढे से लगभग 6.50-7.00 किलोग्राम जैव उर्वरक प्राप्त होता है।

नील-हरित का जैव उर्वरक के उत्पादन के लिए बलुई दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। अप्रैल, मई, जून माह उत्पादन के लिए उपयुक्त होते हैं।

नील-हरित शैवाल के उत्पादन में सावधानियां

- नील-हरित शैवाल उत्पादन के प्रयोग में लायी जाने वाली मिट्टी साफ- सुथरी एवं भुरभुरी होनी चाहिए।
- उत्पादन में प्रयोग की जा रही मिट्टी ऊसर भूमि की नहीं होनी चाहिए।
- मिट्टी में कंकड़ पत्थर एवं घास को छननी से छान लें।
- जैव उर्वरक उत्पादन हेतु प्रयोगशाला द्वारा जांच किये गये अच्छे गुणवार वाले स्टार्टर कल्चर का ही प्रयोग करें।
- कृषक अपने यहां उत्पादित जैव उर्वरक के गुणवत्ता की जांच वैज्ञानिकों द्वारा अवश्य करा लें।
- शैवाल जैव उर्वरक की पपड़ियों को नाइट्रोजन उर्वरकों के साथ प्रयोग करें

नील-हरित शैवाल के उपयोग

सामान्यतया नील हरित शैवाल का उपयोग जलाक्रांत दशा वाले धान में किया जाता है । धान के पौधों को रोपने के 6 से 10 दिन के भीतर, नील हरित शैवाल के 10 किलोग्राम सुखे पाउडर को पूरे खेत में छिड़क कर उपचारित करने की सलाह दी जाती है। नील हरित शैवाल के उपयोग से धान की उपज में 34 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है एवं 30 प्रतिशत तक नाइट्रोजन उर्वरक की बचत की जा सकती है।

वर्षा सम्बन्धित कहावतें

कृपाशंकर सिंह[1] एवं हेम राज भण्डारी[2*]
[1]भाकृअनुप-सनई सनुसंधान केन्द्र, प्रतापगढ़-230001
[2]भाकृअनुप-केन्द्रीय पाट एवं समवर्गीय रेशा बीज अनुसंधान केन्द्र, बुदबुद (बर्द्धमान)-713403
*संवादी लेखक का ई-मेलः hempbg@gmail.com

''खेती एक जुआ है'' यह कथन दर्शाता है कि खेती कई मौसमी घटनाक्रमों पर निर्भर करती है जो स्वयं अनिश्चित हैं। फलतः कृषि की सफलता बहुत ही अनिश्चित होती है। विगत कुछ वर्षों में जलवायु परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से हुआ है। इसके फलस्वरूप मौसमी घटनाक्रमों में उग्र परिवर्तन देखे गए हैं। मौसमी घटनाओं के पूर्वानुमान के लिए नई तकनीकियों का विकास हुआ है एवं इन पूर्वानुमानों को संचार माध्यमों के द्वारा कृषकों तक पहुंचाया जाता है। किन्तु गाँवों तक संचार माध्यमों की पहुँच अभी भी कम है। साथ ही निरक्षरता के कारण किसानों तक यह सूचनाएँ नहीं पहुँच पाती।

इस परिप्रेक्ष्य में गाँवों में चलित कहावतें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। गाँवों में कृषि सम्बन्धित एवं मौसम सम्बन्धित कई कहावतें प्रचलित है। इनमें से कई कहावतें सटीक होने के साथ-साथ किसानों के लिए सुगम्य हैं। ये कहावतें किसानों के लिए गुरूमंत्र का काम करती हैं (लता एवं उपाध्याय, 2015)। अतः समय पर इन कहावतों को संकलन किया गया है जिसमें त्रिपाठी (1931) को संकलन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

बढ़ते हुए शहरीकरण एवं बदलते शिक्षा के स्वरूप के मद्देनजर स्थानीय कहावतों का चलन कम हो गया है। इसके फलस्वरूप ये कहावतें ज्ञानप्रद होने के बावजूद विलुप्तप्राय होती जा रही है। घाघ एवं भड्डरी कृषि एवं मौसम सम्बन्धित कहावतों के लिए प्रख्यात रहे हैं। उनके द्वारा रचित कहावतें आज भी सस्य विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान आदि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है (भूषण, 2011)। उनके द्वारा रचित कहावतों का वर्णन लता एवं उपाध्याय (2015) ने किया है।

प्रस्तुत लेख में मौसम एवं कृषि सम्बन्धित कुछ और कहावतें पेश की गई हैं। ये कहावतें लेखकों के व्यक्तिगत अनुभव हैं एवं मुख्य रूप से वर्षा के पुर्वानुमान को इंगित करती है। इनकी रचना मुख्य रूप से प्रतापगढ़ (उ0प्र0) के मौसमी घटनाओं को देखते हुए की गई है फिर भी यह कहावतें पूरे उत्तर प्रदेश के लिए सटीक है।

मानसून की परिभाषा (पहचान)

मानसून उस वायु को कहते हैं जो निश्चित समय पर निश्चित दिशा में निश्चित स्थान की ओर चलता है। कभी-कभी हवाओं के प्रभाव से कुछ परिवर्तन भी हो जाता है। विशेषकर उ0प्र0 में बंगाल की खाड़ी से चलने वाली वायु द्वारा मानसून आता है। इसका समय 20 जून से 5 जुलाई के मध्य होता है। पहचान के लिए वायुमंडल में आर्द्रता बढ़ जाती है एवं छिटपुट वर्षा हो जाती है।

(1) जेठ मास पछुआ बहे, दिन आषाढ़ पूर्वाई।
सावन में पछुआ बहे, भादों में पूर्वाई।।
कहे कृपा वर्षा सुफल, यह सुख कहाँ समाई।
बैठ किसान निज मेड़ पर लेवेगा अँगड़ाई।।

अर्थात् जब ज्येष्ठ के महीने में पछुआ हवा चले और आषाढ़ मास में पूर्वा हवा चले, फिर सावन मास में पछुआ और भाद्रपद मास में पूर्वा हवा चले तो वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होती है एवं किसानों के लिए खुशियाँ लाती है।

(2) भुँइयां लोर बहे पूर्वाई।
तब समझो वर्षा ऋतु आई।।

पिछले कथन को निरंतरता देते हुए कहा गया कि जब आषाढ़ एवं भाद्रपद मास में पूर्वा हवा जमीन को छूते हुए बहती है तो वर्षा ऋतु को आगमन समझ लेना चाहिए।

(3) आवत आदर न दियो ।
जाते दियो न हस्त ।।
ये दोनों वृथा गए ।
पहुन और गृहस्थ।।

जिस प्रकार अतिथि को आते वक्त आदर एवं जाते वक्त हस्त (उपहार) न देने से अतिथि दुखी हो जाता है उसी प्रकार अदरा नक्षत्र एवं हस्त नक्षत्र में वर्षा न हो तो कृषि और कृषक (गृहस्थ) के लिए दुख का समय आता है अर्थात् वर्षा अच्छी नहीं होती है एवं खेती अच्छी नहीं हो पाती है।

(4) उल्टा चले बादरी ।
विधवा करें श्रृंगार ।।
कहें कृपा हे सुनो किसानों ।
है एक ही आधार।।

जब वायु की गतिदिशा बादल की विपरीत दिशा में हो अर्थात् बादल एवं वायु की विपरीत चलन से वर्षा की संभावना बढ़ जाती है। यदि बादल और वायु समान दिशा में गतिमान हो तो वर्षा नहीं होगी।

(5) सावन बहे पूर्वइया ।
भादों पछुआ जोर ।।
हल बल छोड़कर सजना ।
चलो शहर की ओर ।।

अर्थात् यदि श्रावण मास में पूर्वा हवा एवं भाद्रपद मास में पछुआ हवा चले तब वर्षा की सम्भावना नहीं होती एवं किसानों को कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों की तरफ लग जाना चाहिए। जब भी एक दिशा को हवा चलती जाएगी, तो बादल उसी दिशा में चलते जाएंगे एवं अन्यत्र प्रान्त में वर्षा होगी। जिस प्रान्त से हवा चली है वहाँ वर्षा नहीं होगी अधिकतर वर्षा उन स्थानों की जलवायु पर निर्भर करती है। कभी-कभी हवा के प्रभाव से इसमें परिवर्तन हो जाता है।

संदर्भ

1. भूषण, शशि (2011) ''भारतीय मौसम पूर्वानुमान तकनीक की प्रासंगिकता'' कुरूक्षेत्र अक्टूबर।
2. त्रिपाठी, रामनरेश (1931) ''घघ और भड्डरी'' हिंदुस्तान अकाडमी।
3. लता, बृजेश एवं उपाध्याय ज्योति (2015) ''कृषि एवं वर्षा सम्बन्धित कहावतें- एक अध्ययन'' भारतीय कृषि अनुसंधान पत्रिका 30(4) 253-256।

'बेहोशियाँ'

मंद मंद बेहोशियाँ सी है,
सब पे चढ़ा जहर क्यूँ है।।
मासूम परिंदों की उड़ानों पे,
रंगीन पतंगों का कहर क्यूँ है।।
तब्दीलियाँ सारी इनके हक में थी,
बर्बाद फिर भी ये शहर क्यूँ है।।
हरकतें लोगों की इश्क जैसी है,
दरमियाँ नफरतों की लहर क्यूँ है।।
कहते है, प्रेम में ताकत बहुत है,
फिर ये धमाके हर पहर क्यूँ है।।
हकदार सब बराबर के थे यहाँ,
फिर भी कुछ लोग बेघर क्यूँ है।।
सुना है, इंसानियत जिंदा है अभी,
फिर रोज ये मुर्दा-मुर्दा खबर क्यूँ है।।
शिकारी का जाल छोटा पड़ गया तो,
परिंदों! तुम्हारे हक में हमेशा पर क्यूँ है।।

-मनेश चन्द्र डागला 'मनु'

सोयाबीन एक सुनहरी बीनः उत्पादन एवं उपयोग

आर. के. वर्मा*, एन. खांडेकर, एस. डी. बिल्लौरे, ए. रमेश, एस. नागर, शिवाकुमार एम., राघवेन्द्र एम. एवं सुभाष चंद्रा
भाकृअनुप-भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर (मध्यप्रदेश)-452001
*संवादी लेखक का ई-मेलः sherawat90rakesh@gmail.com

परिचय

सोयाबीन प्रोटीन और वसा का सबसे सर्वोत्तम एवं सस्ता स्रोत है तथा भोजन एवं औद्योगिक उत्पादों के रूप में भी बहुत उपयोग किया जाता है इसलिए इसको आश्चर्यजनक फसल कहा जाता है । सोयाबीन दुनिया में सबसे ज्यादा उगाई जाने वाली तेल बीज फसलों में से एक है। इसका उत्पादन प्रमुख रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, चीन एवं अर्जेंटीना में होता है, लेकिन यह कुछ एशियाई देशों में भी उगाई जाती है। सोयाबीन एक उपोष्णकटिबंधीय फसल है और इसे दुनिया के मध्य अक्षांशों में भी उगाया जा सकता है। यह एक वर्षीय फसल है। वर्तमान समय में भारत में सोयाबीन का उत्पादन मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, तेलंगाना एवं गुजरात में होता है। हालांकि यह हिमाचल प्रदेश एवं उत्तरपूर्वीय क्षेत्रों में भी उगाई जाती है। सोयाबीन दुनिया में तिलहन के कुल उत्पादन में लगभग 50 प्रतिशत हिस्सेदारी रखती है। इसके बीज, जिसमें लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन और 20 प्रतिशत तेल पाया जाता हैं, वनस्पति प्रोटीन की लगभग 60 प्रतिशत तथा तेल के लगभग 30 प्रतिशत हिस्से की आपूर्ति प्रदान करती है। सोयाबीन समाचार, भा. कृ. अनु. प.-भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान के अनुसार वर्ष 2016-17 के दौरान, भारत में सोयाबीन का कुल क्षेत्र फल 11.4 मिलियन हेक्टेयर था तथा उत्पादन 13.8 मिलियन टन एवं उत्पादकता 1210 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी। अन्य देशों की तुलना में भारत में प्रति हेक्टेयर सोयाबीन की उत्पादकता काफी कम है यहाँ तक कि भारत में अलग-अलग राज्यों एवं राज्यों के अंदर अलग-अलग जिलो में भी उत्पादकता में बहुत विविधता देखने को मिलती है। अतः सोयाबीन की खेती के लिए उत्कृष्ट पद्धतियाँ अपना कर इसके उत्पादन एवं उत्पादकता को बढाया जा सकता है।

उत्पादन

मिटी एवं भूमि की तैयारीः उपजाऊ लोम मिट्टी जिस का पी.एच. मान 6.0 से 7.5 के बीच हो सोयाबीन की खेती के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। क्षारीय, लवणीय तथा जल भराव वाली मिट्टी, बीज के अंकुरण को रोकती है, तथा सोयाबीन की फसल के लिए उपयुक्त नही हैं। खेत की तैयारी के लिए एक गहरी जुताई मोल्ड बोर्ड हल के साथ एवं दो कल्टीवेटर या स्थानीय हल के साथ पर्याप्त है। बुवाई के समय खेत में इष्टतम नमी होनी चाहिए।

बुवाई का समय, बीज दर व पौध ज्यामितिः बुवाई जून के आखिरी सप्ताह में करने पर सोयाबीन की अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है। सोयाबीन की बीज दर अंकुरण प्रतिशत, बीज के आकार और बुवाई के समय पर निर्भर करती है। यदि बीज 70 प्रतिशत अंकुरण क्षमता वाला हो तो प्रति हेक्टेयर में 65-70 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। सोयाबीन की बुवाई, पंक्ति से पंक्ति दूरी 45 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 4-5 से.मी. पर करने पर उपयुक्त रहती है साथ ही बुवाई के समय बीज की गहराई का भी विशेष ध्यान रखे । ध्यान रहे की बीज की बोवाई 3-4 से.मी. से अधिक गहराई पर ना करे।

अन्तर्वर्ती फसलः बारानी क्षेत्रों में सोयाबीन के साथ अरहर की खेती तथा सिंचित क्षेत्रों में सोयाबीन के साथ मक्का/ज्वार/ कपास इत्यादि की खेती कर सकते हैं। इसके लिए 4:2 के अनुपात में सोयाबीन व अन्तर्वर्ती फसल को 30 से.मी. की कतारों पर बवाई करें। फल बागों के बीच की खाली जगह में भी सोयाबीन की खेती की जा सकती है।

चित्र 1 -सोयाबीन मक्का अन्तर्वती फसल

ब्रॉड बेड फरो (बीबीएफ) एवं रिज फरो पद्धतियाँः जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण वर्षा की अनियमितता एवं अधिक अन्तराल के सूखे की समस्या को देखते हुए यह अनुशंसा की जाती है कि सोयाबीन फसल की बुवाई बीबीएफ या रिज फरो पद्धति से ही करें। इन पद्धतियाँ से सोयाबीन की बुवाई करने से फसल को जल भराव से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। इसके साथ-साथ अधिक अन्तराल तक सूखा पड़ने पर साधारण बुवाई की तुलना में, इन पद्धतियाँ से की गई बुवाई वाली मृदा में नमी की उपयुक्त मात्रा बनी रहती है।

चित्र 2 -रिज फरो पद्धति से सोयाबीन की खेती

चित्र 3 -ब्रॉड बेडफरो (बीबीएफ)पद्धति से सोयाबीन की खेती

खाद एवं उर्वरकः सोयाबीन एक दलहनी फसल है जो वायुमंडलीय नत्रजन को अपनी जड़ो में एकत्रित करती है अतः इसको नत्रजन की कम आवश्यकता होती है। बुवाई के समय प्रारंभिक खुराक के रूप में 20-30 किलो नत्रजन प्रति हेक्टेयर का इस्तेमाल कम कार्बनिक पदार्थ वाली, कम उर्वरता वाली मिट्टी में नत्रजन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त होती है। सोयाबीन को अन्य फसलों की तुलना में फॉस्फोरस की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। अतः 60-100 किलो फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर के दर से बुवाई के समय खेत में डालना चाहिए। यदि मृदा में पोटेशियम की कमी हो तो 20-40 किलो पोटेशियम प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालना चाहिए। इसके अलावा 25 किलो सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालनी चाहिए क्योंकि सोयाबीन एक तिलहन फसल है, और तिलहन फसलों के लिए सल्फर बहुत जरुरी होती है, जो कि तेल की गुणवत्ता व मात्रा बढ़ाने में सहायक होती है। खेत की मृदा का समय-समय पर मृदा परीक्षण करवाते रहना चाहिए, यदि अन्य सूक्ष्म तत्वों जैसे ज़िंक एवं आयरन आदि की कमी हो तो इन को भी खेत में डालना चाहिए। ध्यान रहे कि मिट्टी परीक्षण करवाकर ही खाद एवं उर्वरक की उचित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।

जल प्रबंधनः खरीफ के दौरान सोयाबीन फसल को आमतौर पर किसी भी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। हालांकि, यदि दाना भरने के समय लम्बे समय तक सूखा पड़े, तो एक सिंचाई वांछनीय होगी।

खरपतवार प्रबंधनः सोयाबीन में शुरुआती समय के दौरान खरपतवार प्रतियोगिता से बचने के लिए बुवाई से लेकर आने वाले 30-40 दिनों तक खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। सोयाबीन के खेत में 20 और 40-45 दिन की बुवाई के बाद दो बार हाथ से खरपतवार निकालने पर खरपतवार प्रबंधन आर्थिक उपज प्रदान करने के लिए पर्याप्त होता है। बुवाई के पूर्व खरपतवारनाशक जैसे फ्लूक्लोरेलिन (2.22 लीटर/हेक्टेयर) का छिडकाव करें तथा बुवाई के तुरंत बाद डाईक्लोसुलम (26 ग्राम/हेक्टेयर), या मेटालोक्लोर (2.0 लीटर/हेक्टेयर) या पेंडीमेथालिन (3.25 लीटर/हेक्टेयर) का छिडकाव करें। बुवाई के 20 दिन बाद खरपतवारों को हाथ से निराई-गुड़ाई करके निकाले । बुवाई के 15-20 दिन बाद इमाझेथापायर (1.0 लीटर/ हेक्टेयर) या क्विजालोफाप (1.0 लीटर/ हेक्टेयर) का छिडकाव करें । ध्यान रहे कि इन में से किसी भी एक खरपतवारनाशक का चयन कर 500 लीटर पानी के साथ फ्लड जेट या फ्लैट फेन नोज़ल का उपयोग कर समान रूप से छिडकाव करें।

कीट एवं रोग प्रबंधनः यदि फसल पर प्रारंभिक अवस्था में ही तना मक्खी या पीला मोज़ेक का प्रकोप होता है तो उन स्थानों पर बीज को थायमिथोक्सम 30 एफ. एस. से 10 ग्राम प्रति किलोग्राम या इमिडाक्लोपरीड 18 एफ. एस. 1.25 मिलीलीटर/किलोग्राम बीज की

दर से उपचारित कर बुवाई करें। ब्लू बीटल के नियंत्रण के लिए क़्विनालफ़ास 25 ई. सी. का 1.5 लीटर/हेक्टेयर की दर से छिडकाव करें। तम्बाकू की इल्ली एवं रोयेदार इल्ली का प्रकोप होने पर प्रभावित पौधों को नष्ट करके बचाया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर कीटनाशक जैसे ट्राईजोफ़ॉस 40 ई. सी. (0.8 लीटर/हेक्टेयर) या क़्विनालफ़ॉस 25 ई. सी. या इंडोक्साकार्ब 15.8 ई. सी. (333 मिलीलीटर/हेक्टेयर) का छिडकाव करेँ छिडकाव करने के लिए प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी का इस्तेमाल करो। पत्ती खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण हेतु जैविक कीटनाशकों का प्रयोग किया जा_सकता है । जैसे बायोबिट/डायपेल/हाल्ट/बायोरिन/ बायोसोफ्ट 1 किलोग्राम या 1 लीटर प्रति हेक्टेयर के दर से फूल आने या इल्लियो का प्रकोप शुरू होने पर छिडकाव करें। पत्तियों पर लगने वाले रोगों (जैसे पत्ती धब्बा एवं ब्लाइट) के प्रबंधन के लिए बुवाई के 35 व 50 दिन बाद कार्बेन्डाजिम अथवा थायफीनेट (250 ग्राम/500 लीटर_पानी/हेक्टेयर) का छिडकाव करें। बैक्टीरीयल पशचूल रोग के प्रबंधन के लिए प्रतिरोधी किस्में जैसे ब्रेग, पीके 416 एनआरसी 37 आदि की बुवाई करें। खडी फसल में रोग के लक्षण दिखने पर कासूगामाईसिन का (100 ग्राम/500 लीटर पानी/हेक्टेयर) का छिडकाव करें।

कटाई एवं गहाईः सामान्यतौर पर विभिन्न किस्मों की परिपक्वता अवधि 80 से 110 दिन की होती है। ध्यान रहे की फलियों का रंग पीला या भूरा काला होने पर वो परिपक्व हो चुकी है इस अवस्था में दानों में नमी की मात्रा लगभग 14-15 प्रतिशत होती है इस समय सोयाबीन की कटाई कर लेनी चाहिए ताकि फलियों के चटकने पर दाने बिखरने से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकें। काटने के पश्चात् फसल को 2-3 दिन धूप में सुखाकर थ्रेशर से धीमी गति (350-400 आर. पी. एम.) पर गहाई करनी चाहिए। इस के पश्चात् बीज को 3-4 दिन तक धूप में सुखाकर भंडारण करना चाहिए। ध्यान रहे कि भंडारण के समय बीजों में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

उपयोग

सोयाबीन भारत की एक महत्वपूर्ण तिलहन फसल है, इसके साथ_-साथ दुनियाँ में भी सबसे बड़े पैमाने पर खाए जाने वाले खाद्य पदार्थों में प्रमुख है। सोयाबीन कुपोषण को कम करने के लिए प्रोटीन का सस्ता एवं सर्वोत्तम स्रोत हैं क्योंकि इसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है जो कि शाहाकारी आबादी वाले देशों में प्रोटीन की पूर्ती करती है सोयाबीन का सेवन मानव स्वास्थ्य के लिए भी फायदेमंद हैं, और साथ ही साथ इसकी खेती करना भी आसान होता है। इसकी व्यापक रूप से खेती के लिए एक प्राथमिक कारण यह भी है की इससे प्रति एकड़ जमीन से अधिक प्रोटीन का उत्पादन होता है। इसके बीज से निकाले जाने वाले तेल से खाना पकाने, सलाद, मार्जरीन बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। तेल को निकाले के बाद बचा हुआ उत्पाद पशुओं को खिलाने के रूप में उपयोग किया जाता है। लेकिन अधिकांश सोयाबीन मानव खाद्य के लिए इस्तेमाल की जाती है इसका प्रसंस्करण करके विभिन्न उत्पाद बनाये जा सकते है। सोयाबीन की फलियों से सब्जी भी बनाई जा सकती है। अधिकांश अनाजो में एमिनो एसिड लाइसिन की कमी होती है लेकिन सोयाबीन एक ऐसी फसल है जिस मे एमिनो एसिड लाइसिन (5%) अच्छी मात्रा में होता है। इसके साथ-साथ इसमें आठ और आवश्यक अमीनो एसिड भी होते हैं। इस के अलावा, इस में खनिज, लवण एवं विटामिन (थाइमिन और राइबोफ्लैविन) की अच्छी मात्रा होती है इस के अंकुरित बीज में विटामिन सी काफी मात्रा में पाया जाता है। तथा विटामिन ए कैरोटीन के रूप में मौजूद होता है जो की आंत में जा कर विटामिन ए में बदल जाता है जो की स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद है।

भारतीय एवं पश्चिमी व्यंजनों जैसे चपाती, दूध, टोफू, मिठाई, ब्रेड, कुकीज़, पेस्ट्री इत्यादि सोयाबीन से तैयार किये जा सकते है। गेहूं के आटे के साथ सोयाबीन का थोड़ा आटा मिलाकर आटे की गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है जिससे अधिक पौष्टिक चपाती बनती है। इसके अलावा पकाया हुआ सोयाबीन सूप्स, स्टॉज, सॉस आदि में एक घटक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसका इस्तेमाल वनस्पति घी एवं अन्य एंटीबायोटिक दवाओं के औद्योगिक उत्पादन के लिए भी किया जाता है। इसके अलावा सोयाबीन रूट नोडल्स के जरिये बड़ी मात्रा में वायु मंडलीय नत्रजन को एकत्रित करके तथा परिपक्व होने पर जमीन पर पत्तियों के गिरने से मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है। यह चारे के रूप में भी साईलेज बनाकर इस्तेमाल किया जा सकता है इस का चारा पशुधन और मुर्गीपालन के लिए बहुत पौष्टिक एवं उत्कृष्ट भोजन हैं।

निष्कर्ष

अतः सोयाबीन एक आश्चर्यजनक फसल कहलाती है, जो कि मानव खाद्य पदार्थों के साथ पशुधन एवं मुर्गीपालन के लिए भी उपयोग में ली जाती हैं। इसके साथ-साथ भारत की कृषि अर्थव्यवस्था में भी बहुत बड़ा योगदान है तथा भारत में प्रोटीन एवं तेल का सस्ता और सर्वोत्तम स्रोत है।

गेहूं में प्रतिरोधी मंडूसी के प्रबंधन हेतु उचित छिड़काव विधि

नरेन्द्र सिंह*, मेहरचन्द, धर्मबीर यादव एवं समर सिंह
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
*संवादी लेखक का ई-मेलः narendersingh.bagri@gmail.com

मंडूसी में आइसोप्रोटूरान से प्रतिरोधिता

सन् 1978 में आइसोप्रोटूरान व अन्य यूरिया शाकनाशियों की सिफारिश गेहूं में खरपतवार नियन्त्रण हेतु की गई। लेकिन धान-गेहूं फसल चक्र में आइसोप्रोटूरान के लगातार प्रयोग व उचित उपयोग-विधि न अपनाने की वजह से 1990 के दशक की शुरुआत में मंडूसी में इसके प्रति प्रतिरोधिता उत्पन्न हो गई। शाकनाशी-प्रतिरोध का यह विश्व भर में सर्वाधिक गंभीर मामला है। उत्तर-पश्चिमी भारत मुख्यतया हरियाणा-पंजाब में लगभग 8-10 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में मंडूसी में शाकनाशी प्रतिरोधिता उत्पन्न हुई।

वैकल्पिक शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोधिता

सन् 1997-98 में प्रतिरोधी मंडूसी के नियन्त्रण हेतु वैकल्पिक खरपतवानाशकों (क्लोडिनोफोप, सल्फोसल्फयूरान, फिनोक्साप्रोप) की सिफारिश की गई। वैज्ञानिकों ने पूर्व आगाह कर दिया था कि अगर नए शाकनाशियों का उपयोग उचित तरीके से नहीं किया गया तथा समन्वित खरपतवार प्रबन्धन विधियाँ नहीं अपनाई गई तो इन शाकनाशियों के प्रति मंडूसी में प्रतिरोधिता शीघ्र ही उत्पन्न हो जाएगी। आंकलन था कि पूर्व 1990 की कहानी 2007 तक दोहराई जाएगी। अब इन वैकल्पिक शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोधिता के लक्षण किसानों के खेतों पर आमतौर पर उभरने लगे हैं।

प्रबन्धन विधियाँ

खरपतवार-मुक्त बीज, प्रमाणित बीज, बीज बनने से पूर्व खरपतवारों को निकालना, प्रतिरोधिता-ग्रस्त क्षेत्र से गेहूं का बीज अन्य क्षेत्रों में जाने पर रोक, प्रतिस्पर्धा किस्में, अगेती बिजाई, जीरो-टिलेज विधि से बिजाई, फसल-चक्र में बदलाव, अवशेष आच्छादन, यांत्रिक खरपतवार नियन्त्रण,रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण इत्यादि। गेहूं की कुछ किस्में एकार्ड प्लस से संवेदनशील हैं अतः प्रयोग किस्मों की सहनशीलता के आधार पर करें।

मुख्य बिन्दु

1. प्रतिरोधिता-ग्रस्त क्षेत्र में आइसोप्रोटूरान का प्रयोग न करें।
2. शाकनाशियों के प्रयोग के समय भूमि में उचित नमी होनी चाहिए।
3. 2, 4-डी या मैटसल्फूरान को वैकल्पिक शाकनाशियों के साथ मिलाकर छिड़काव न करें।

क्रास- प्रतिरोधिता प्रबंधन हेतु महत्वपूर्ण बिन्दु

1. शाकनाशियों का अदल-बदल कर प्रयोग करें।
2. शाकनाशियों की सही मात्रा का प्रयोग करें। कम या ज्यादा मात्रा डालने से समस्या और गम्भीर होगी।

गेहूं में मंडूसी के नियन्त्रण हेतु षाकनाषी

शाकनाशी	मात्रा (ग्राम, मि.ली./एकड़)	सर्फक्टैंट (मि.ली./एकड़)
क्लोडिनोफोप 15 डबल्यू. पी.	160	-
फिनोक्साप्रोप 10 ई.सी.	400	200
सल्फोसल्फयूरान 75 डबल्यू. जी.	13.5	500
एटलांटिस 3.6 डबल्यू. जी.	160	200
टोटल 80 डबल्यू. जी.	16	500
एक्सियल 5 ई.सी.	400	-
एकार्ड प्लस 22 ई.सी.	500	-

चित्र 1. नोजल के विभिन्न प्रकार

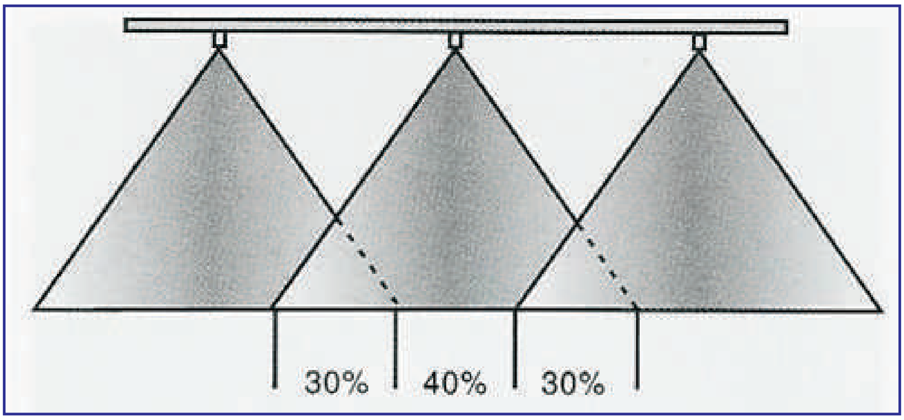

चित्र 2. नोजल द्वारा फवारा आच्छादन

3. बीज बनने से पूर्व मंडूसी के पौधों को खेत से निकालें।
4. उत्तमगुणवत्ता के शाकनाशियों की उपलब्धता सुनिशचित होनी चाहिए।

प्रतिरोधिता मंडूसी के प्रबंधन हेतु उचित स्प्रे तकनीक

1. फलैट-फैन नोजल का प्रयोग करें (चित्र.1)।
2. बहुनोजल युक्त बूम का प्रयोग करें।
3. बूम पर नोजलों को इस प्रकार लगाएं कि उनका फव्वारा एक दूसरे नोजल के फव्वारे का 30 प्रतिषत क्षेत्र कवर करे (चित्र.2)।
4. बूम पर दो नोज़लों के बीच 50 सै.मी. का फासला रखें यदि नोजल 800 कोण वाला हो। 1100 कोण-नोज़लों में फासला 75 सै.मी. रखें।
5. नोजल-बूम को स्प्रे के समय सतह से 45-50 सै.मी. ऊंचाई (घुटने की ऊंचाई) पर रखें।
6. नोजलों को कभी भी तार या नुकीली वस्तु से साफ न करें। इससे नोजल क्षतिग्रस्त हो जाएंगे और स्प्रे असमान होगा।
7. समान बहाव के साथ स्प्रे हेतु पम्प पर सम-दाब वाल्व लगाएं।
8. सीधी दिशा से एकसार स्प्रे करें। आड़ा-तिरछा छिड़काव न करें।
9. खेत में पूरा छिड़काव एक ही दिशा में करें। दोनों दिशाओं में स्प्रे न करें।
10. उचित मात्रा मे पानी का प्रयोग करें (200 लीटर/एकड़)।
11. उचित अवस्था पर (बिजाई के 30-35 दिन बाद) स्प्रे करें। देरी से स्प्रे करने से प्रतिरोधिता उत्पन्न होने का खतरा बढ़ता है।

स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन (एसएसएनएम): कंद फसलों में उत्पादन वृद्धि की प्रभावी तकनीक

संकेत जी. मोरे* एवं जी. बैजू
भाकृअनुप- केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान, तिरुवनंतपुरम, केरल-695 017
*संवादी लेखक का ई-मेल: sanketmore1818@gmail.com

प्रस्तावना

पोषक तत्वों पर न्यूनतम निवेश के साथ अधिकतम उत्पादन पाना कंद फसलों के उत्पादन में बड़ी बुनियादी चुनौती हैं। इसे पाने के लिए,पोषक तत्व और पानी की उपयोगिता बढ़ानी चाहिए, जिससे पर्यावरण प्रदुषण को कम करने में मदद मिलेगी। इसे ध्यान में रखते हुए, न केवल कसावा की पैदावार में वृद्धि करने हेतु एक पद्धति विकसित की गई हैं जो पोषक तत्वों की क्षमता को अधिकतम करने के साथ साथ पर्यावरण में प्रदूषण का कारण बनने वाले कुछ पोषक तत्वों का अनावश्यक इस्तेमाल रोकने में भी कारगर हैं।

एसएसएनएम तकनीक

भाकृअनुप- केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान ने पोषक तत्वों के आवेदकों को ध्यान में रखते हुए स्थानिक मृदा उत्पादकता व लक्षित उपज पर आधारित स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन (एसएसएनएम) तकनीक विकसित की है। कसावा, सूरन, रतालू और शकरकंद के लिए एसएसएनएम मॉडल विकसित किया गया हैं। 94 सत्यापन प्रयोगों द्वारा ऑन-स्टेशन कैलिब्रेटेड तकनीक का इस्तेमाल करके क्वांटिटेटिव इवैल्यूएशन ऑफ फर्टिलिटी ऑफ ट्रॉपिकल सॉइल्स (QUEFTS) मॉडल का प्रयोग सफलतापूर्वक भारत के प्रमुख कसावा क्षेत्रों में किया गया हैं। इसी तरह सूरन और शकरकंद के लिए भी भारत में क्रमशः 11 और 8 स्थानों पर सत्यापन प्रयोग किये गए हैं। यह पाया गया हैं कि एसएसएनएम का इस्तेमाल करके फसल की पोषक तत्वों की आवश्यकता तथा स्थानीय मृदा की उत्पादकता और जलवायु परिस्थितियों की जरुरत के अनुसार सावधानीपूर्वक समायोजन से पैदावार में वृद्धि हुई हैं, जिससे घाटे (हानि) को कम किया जा सके और किसानों की आय में वृद्धि हो सके।

विभिन्न क्षेत्रों के लिए कसावा की एसएसएनएम सिफारिशें

१. केरल

कृषि पारिस्थितिकीय क्षेत्र	लक्षित उपज (ट. प्र. हे.)	कृषि प्रणाली	ना.	फो.	पो.	कै.	मैं.	जिं.	बो.
1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 15, 20, 21, 22, 23	30	वर्षा पोषित	100	20	100	40	20	2.5	1
1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 15, 20, 21, 22, 23	40	सिंचित	160	30	160	40	20	2.5	1
17	30	वर्षा पोषित	100	20	50	40	20	2.5	1
17	40	सिंचित	160	30	80	40	20	2.5	1
4, 14	30	वर्षा पोषित	50	20	100	40	20	2.5	1
4, 14	40	सिंचित	80	30	160	40	20	2.5	1
16	30	वर्षा पोषित	50	20	50	40	20	2.5	1
16	40	सिंचित	80	30	80	40	20	2.5	1
18, 19	30	वर्षा पोषित	200	20	50	40	20	2.5	1
18, 19	40	सिंचित	240	30	80	40	20	2.5	1

२. तामिलनाडु

जिला	लक्षित उपज (ट. प्र. हे.)	कृषि प्रणाली	ना.	फो.	पो.	कै.	मैं.	जिं.	बो.
सेलम, नमक्कल, धरमपुरी	30	वर्षा पोषित	100	50	100	5	2.5	2.5	1
सेलम, नमक्कल, धरमपुरी	40	सिंचित	160	60	160	5	2.5	2.5	1
सेलम, नमक्कल	40	वर्षा पोषित	150	50	100	5	2.5	2.5	1
सेलम, नमक्कल	50	सिंचित	200	60	160	5	2.5	2.5	1
धरमपुरी	40	वर्षा पोषित	150	50	50	5	2.5	2.5	1
धरमपुरी	50	सिंचित	200	60	80	5	2.5	2.5	1
सेलम, नमक्कल	50	वर्षा पोषित	240	80	160	5	2.5	2.5	1
धरमपुरी	50	सिंचित	240	80	240	5	2.5	2.5	1

३. आंध्र प्रदेश

जिला	लक्षित उपज (ट. प्र. हे.)	कृषि प्रणाली	ना.	फो.	पो.	कै.	मैं.	जिं.	बो.
पूर्व गोदावरी, पश्चिम गोदावरी	30	वर्षा पोषित	100	50	100	40	20	2.5	1
श्रीकाकुलम, विजयनगर, विशाखापट्टनम	30	वर्षा पोषित	100	25	100	40	20	2.5	1
पूर्व गोदावरी, पश्चिम गोदावरी	40	वर्षा पोषित	200	75	200	40	20	2.5	1

विभिन्न क्षेत्रों के लिए सूरन की एसएसएनएम सिफारिशें

राज्य	क्षेत्र	लक्षित उपज (ट. प्र. हे.)	कृषि प्रणाली	ना.	फो.	पो.	कै.	मैं.	जिं.
		ना.	फो.	पो.	कै.	मैं.	जिं.		
केरल	सभी जिले	40	80	30	120	40	20	2.5	1
तमिलनाडु	तिरुनेलवेली	40	100	50	100	40	20	2.5	1
तमिलनाडु, बिहार	इरोड, समस्तीपुर, वैशाली, बेगुसराई	50	80	50	100	40	20	2.5	1
बिहार	मुजफ्फरपुर	50	80	75	100	40	20	2.5	1
पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश	दक्षिण 24 परगानास, नडिया	50	100	50	80	5	2.5	2.5	1
आंध्र प्रदेश	पश्चिम गोदावरी, गुंटूर	50	100	75	80	5	2.5	2.5	1
आंध्र प्रदेश	कृष्णा	50	80	50	100	5	2.5	2.5	1
गुजरात	नवसारी	40	100	50	80	5	2.5	2.5	1

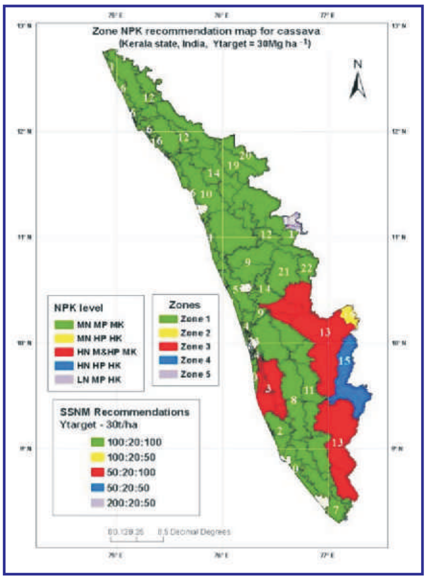

क्षेत्रानुसार एनपीके सिफारिश नक्शा

पोषक निर्णय समर्थन प्रणाली

अनुकूलित फॉर्मूलेशन

श्री पोशिनी –पोषक प्रबंधन हेतु मोबाइल ऐपः भाकृअनुप-सी.टी.सी.आर.आई ने कंद फसलों के स्थान विशिष्ट पोषक प्रबंधन के लिए एक श्री पोशिनी नामक मोबाइल ऐप विकसित किया है।

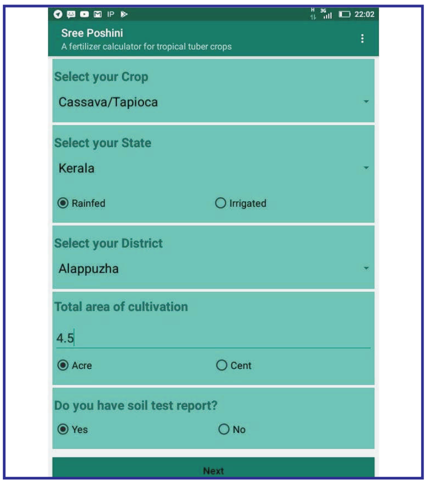

श्री पोशिनी मोबाइल ऐप

कंद फसलों के लिए फोलियर तरल सूक्ष्म पोषक तत्व

एसएसएनएम तकनीक का प्रभाव

एसएसएनएम के लिए भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) आधारित एक पोषक निर्णय समर्थन प्रणाली (कसावा के लिए "कासनम"संस्करण 1.1) और उर्वरक गणना सारणी विकसित की गई हैं। क्वांटिटेटिव इवैल्यूएशन ऑफ फर्टिलिटी ऑफ ट्रॉपिकल सॉइल्स (QUEFTS) मॉडल को कसावा, सूरन, रतालू और शकरकंद में एसएसएनएम के लिए जाँचा गया है। विकसित क्षेत्र विशिष्ट, उभरते कंद फसलों के लिए एनपीके सिफारिशो के आधार पर भारत भर में आयोजित ऑन-सटेशन और ऑन-फार्म प्रयोगों पर आधारित एनपीके सिफारिशें दी गई हैं। उपज लक्ष्य पर आधारित स्थान विशिष्ट एनपीके सिफारिश नक्शा विकसित किया गया हैं और उसे अलग अलग क्षेत्रो में जाँचा व परखा गया हैं। एसएसएनएम तकनीक द्वारा दिए गए उर्वरक सिफारिशों से फसल की उपज में किसानों की पारम्परिक तत्व प्रबंधन से 24 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी पाई गई हैं। यह तकनीक इस संस्थान द्वारा जाँची व परखी गई हैं और धीरे धीरे इसका इस्तेमाल बढ़ता जां रहा हैं। किसानों के खेतो में इस तकनीक की उपयोगिता को किसानों द्वारा काफी सराहना मिलीं हैं। इस तकनीक के उपयोग द्वारा उत्तम पोषक तत्व प्रबंधन किया जा सकता हैं जों किसानो की आमदनी को बढ़ाने में मददगार साबित होगा।

सब्जी की फसलों में खरपतवार नियन्त्रण

नरेन्द्र सिंह*, मेहरचन्द, सतबीर सिंह पूनिया, धर्मबीर यादव एवं समर सिंह
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
*संवादी लेखक का ई-मेलः narendersingh.bagri@gmail.com

शहरी इलाकों या उनके साथ लगते गांवो में काफी मात्रा में सब्जियाँ उगाई जाती हैं। प्रान्त में मुख्यतः आलु, प्याज, लहसुन, मटर, भिण्डी, टमाटर, हल्दी, बैंगन, पत्ता गोभी, मेथी व फूलगोभी की काश्त ज्यादा की जाती है। ये फसलें शुरू की अवस्था में कम बढ़वार लेती हैं और अगर वातावरण अनुकूल हो तो खरपतवारों की समस्या और बढ़ जाती है। सब्जी की फसल बोने से पहले आमतौर पर खेत में गोबर की खाद डाली जाती है जिस की वजह से भी खरपतवार ज्यादा उगते है। इस के अलावा, सब्जी की फसलों में ज्यादा सिंचाई की जरूरत पड़ती है जिस की वजह से खेत में नमी होने की वजह से खरपतवारों की बढ़वार भी जल्दी होती है व खरपतवार को फलने फूलने के लिए अच्छा मौका मिल जाता है। इन सभी कारणों की वजह से कई बार खरपतवार सब्जी की फसल को शुरू की अवस्था में ही ढ़क लेते हैं। अगर खरपतवारों को समय पर न निकाला जाये तो पैदावार में औसतन 25-55 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। प्रयोगों द्वारा पता चला है कि खरपतवारों द्वारा गाजर की फसल में 28-78, मूली में 86, आलू में 62-82, मटर में 70, पत्तागोभी में 66, टमाटर में 60 प्रतिशत तक नुकसान आंका गया है। इस के अलावा खरपतवार फसलों में कई बीमारियों व कीड़ों को भी आश्रय देते हैं। इसलिए जरूरी है कि फसलो में खरपतवारों का उचित समय पर नियंत्रण किया जाये।

खरपतवार निकालने का उचित समयः यह समय पौधे की पूर्ण उम्र में वह समय है जिस समय खेत में खरपतवार नहीं होने चाहिये और पैदावार में कमी न हो। अगर इस समय में फसल में खरपतवार नहीं होगे तो पैदावार में कोई कमी नहीं आयेगी। इस समय के बाद उगे हुए खरपतवार फसल में ज्यादा नुकसान नहीं करते परन्तु इस समय के बाद खेत में अगर खरपतवार नियंत्रण करते है तो कटाई आसानी से हो जाती है व अगले साल के लिए खरपतवारों का बीज नहीं बन पाता। खरपतवार नियंत्रण का यह नाजुक समय सीधी बीज द्वारा लगाई गई फसलों में रोपाई की फसलों की बजाय/अपेक्षा ज्यादा होता है। आमतौर पर खरपतवारों की संख्या व मौसम के हालात पर इस समय की लम्बाई निर्भर करती है। विभिन्न फसलों को खरपतवार रहित रखने का नाजुक समय सारणी 1 में नीचे दिया गया है।

सारिणी १: विभिन्न फसलों को खरपतवार रहित रखने का समय

फसल	खरपतवार रहित रखने का समय
गाजर	जमाव के 3-6 सप्ताह बाद तक
पालक	लगाने के 3 सप्ताह बाद तक
प्याज	सारी अवधि
आलू	लगाने के बाद 15-45 दिन तक
टमाटर	रोपाई के 6 सप्ताह बाद तक
मिर्च	रोपाई के बाद 30-45 दिन तक
मटर	लगाने के बाद 30-60 दिन तक
हल्दी	लगाने के बाद 60-150 दिन तक

आमतौर पर सब्जी की फसल में ऋतु के अनुसार एक वर्षीय, दो वर्षीय व बहु वर्षीय डीला जाति वाले खरपतवार आते है। इस के इलावा कई जगह बैंगन व टमाटर की फसल में पर जीवी खरपतवार मरगोजा का प्रकोप भी देखने को मिलता है। प्याज की फसल में अमर वेल भी काफी नुकसान करती है।

इसलिए खरपतवारों को समय पर निकालना बहुत जरूरी है। इन फसलों में खुरपे से गोडाई द्वारा या हाथ द्वारा खरपतवार नियन्त्रण काफी प्रचलित है परन्तु कई बार मजदूर समय पर न मिलने या ज्यादा बारिश के कारण निराई-गुडाई समय पर सम्भव नहीं हो पाती अतः ऐसे हालात में खरपतवार नाशियों का प्रयोग करके भी खरपतवारों पर काबू पाया जा सकता है। खरपतवार नाशी का प्रयोग करके निम्नलिखित फसलों में समय पर व अच्छी तरह खरपतवार नियन्त्रण मिल सकता है।

प्याजः प्याज की फसल में खरपतवार की समस्या बहुत ज्यादा होती है व 67 प्रतिशत तक उपज को नुकसान पहुंचा सकते हैं क्योंकि इस में दो तरह के खरपतवार आते हैं। पहले सर्द ऋतु वाले खरपतवार जैसे कि मैणा, कृष्णनील, बायु, खड़बायु, गुल्लीडण्डा, जंगलीपालक, मालवा

इत्यादि। फरवरी के महीने में उचित तापमान आने पर बसन्त ऋतु व गर्म ऋतु वाले खरपतवार जैसे कि चौलाई, सांठी, डीला, हिरणखुरी, कोंधरा, नूणिया, चिड़ियो का दाना इत्यादि काफी मात्रा में उगते है। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टाम्प 30 ई.सी. (पैडीमिथेलिन) 1.3 1.7 लीटर प्रति एकड़ का छिड़काव रोपाई के 7-8 दिन बाद जब पौधे व्यवस्थित हों जाते है और खरपतवार निकलने शुरू हो जाते हैं, करना चाहिए। इस दवाई का घोल तैयार करने के लिए एक एकड़ फसल में छिड़काव करने हेतू 250 लीटर पानी की मात्रा प्रयोग करे। यदि 50-60 दिन बाद खरपतवार पुनः निकलते है तो एक निराई करना लाभप्रद है। प्याज में गोल का छिड़काव करने पर पत्तियों की नोक पर थोड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है परन्तु 20 दिन बाद ठीक हो जाती है व पैदावार में कोई कमी नहीं आती। अगर स्टाम्प का प्रयोग न करें तो छिड़काव तर बतर जमीन में एक सार होना जरूरी है। यह खरपतवार रोपाई के पहले या रोपाई के 10 दिन के अन्दर राफ्ट 667 मि.ली. या गोल नामक रसायन 340 मि. ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करने या रेत में मिलाकर डालने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण पाया जा सकता है तथा एक गुडाई रोपाई के 45 दिन बाद अवश्य करें। गोल व स्टाम्प खरपतवारनाशी छिड़काव के 90 दिन के अन्दर-2 इस फसल में गल जाते है व हरी प्याज में उनका कोई अंश नहीं मिलता। ये खरपतवार नाशक मोथे या डीले के प्रति प्रभावशाली नहीं है।

लहसुनः इस फसल में आमतौर पर सर्दी ऋतु वाले खरपतवार जैसे बायु, कृष्णनील, मैणा, जंगलीपालक, खड़बायु, पोआ, गुल्लीडण्डा, व लोम्बड़ घास उगते है। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमीथलिन) या बासालिन 45 ई.सी. (फ्लूय -क्लोरालिन) का प्रयोग किया जा सकता है। ये खरपतवारनाशक इस फसल के मोथे (डीले) को छोड़कर सारे खरपतवारों का नाश कर देते हैं। स्टाम्प (1.3-1.7 लीटर प्रति एकड़) का फसल बिजाई के 48 घण्टे के अन्दर-2 (लहसुन उगने से पहले) 250 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए। जब कि बासालीन या ट्रैफलान (1.0 लीटरध्एकड़) का खेत अच्छी तरह तैयार करके लहसुन बुआई से पहले छिड़काव करना चाहिए। बृासालीन व ट्रैफलान का छिड़काव करने के बाद कसोले या करसी से अच्छी तरह मिट्टी में मिलाना जरूरी है। इस के बाद लहसुन की कलिया खेत में लगाकर हल्का पानी दे दें। इसके इलावा राफ्ट 9 ई.सी. 667 मि.ली. या गोल 23.5 ई.सी. 340 मि.ली. को 250 लीटर पानी में घोल कर लहसुन के बाद 10 दिन के अन्दर-अन्दर छिड़काव कर सकते है। इसके बाद भी अगर खरपतवार उगते है तो 50-60 दिन बाद एक निराई-गुड़ाई अवश्य है। फसल पकने से डेढ़ महीने पहले हिरणखुरी खरपतवार पुन उग जाता है। इस अवस्था में राफ्ट नामक रसायन का 667 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। उपरोक्त दवाईयों का कच्ची व पकी हुई कलियों में कोई असर नहीं आता।

आलूः इस फसल में पतझड़, सर्दी व बहार ऋतु वाले तीनों तरह के खरपतवार पाये जाते है। अगर आलू की बिजाई सितम्बर माह में की जाती है तो फसल उगने में तीन सप्ताह का समय ले लेती है व कई बार सांठी (ईटसिट) फसल को पूरी तरह ढ़क लेती है। अक्तूबर माह में बोई गई फसल में सांठी, बायु, खड़बायु, मैणा, घुई, कृष्णनील, जंगलीपालक, आदि खरपतवार पाये जाते है। नवम्बर दिसम्बर महीने में गुल्ली डण्डा (कनकी) खरपतवार धान के बाद बोई गई जमीन में पाया जाता है। अगर गोबर की खाद डालकर आलू की बिजाई की जाती है तो मालवा खरपतवार भी काफी मात्रा में दिखाई पड़ता है। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम सारणी-2 में दी गई जानकारी अनुसर करें।

सारणी २: आलू की फसल में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न खरपतवारनाशी

खरपतवारनाशक	मात्रा/एकड़	छिड़काव का समय
स्टोम्प 30 ई.सी.	1.6-2.0 लीटर	पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
आइसोप्रोट्रान 75 डब्ल्यू. पी.	500 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
मैनकोर 70 डब्ल्यू. पी.	200 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
लासो 50 ई.सी.	2.0-2.4 लीटर	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
एट्राजीन 50 डब्ल्यू.पी.	200 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
लासो. एट्राजीन	1.0 लीटर. 100 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
ग्रमैक्सोन 24 डब्ल्यू.एस.सी.	1.0-1.20 लीटर	जब आलू के 5-10 प्रतिशत पौधे उग जायें।

जब खरपतवार छोटे हो तो ग्रमैक्सोन की 1.0 लीटर मात्रा व जब खरपतवार बडे हो जाये तो 1.20 लीटर मात्रा प्रति एकड़ का प्रयोग करें। अगर आलू के खेत में पोआ (फुई) का प्रकोप है तो ग्रेमक्सोन का प्रयोग न करें जब कि दूसरी खरपतवारनाशक दवाईयाँ इस खरपतवार को मारती हैं। अगर आलू की फसल के बाद कद्दू जाति वाली फसल की बिजाई करनी है तो आलू की फसल में स्टाम्प या ग्रैमोक्सोन का ही प्रयोग करें। गोल दवाई का आलू की फसल में दुष्प्रभाव पड़ता है अतः इसका इस्तेमाल आलू में ना करें।

टमाटरः टमाटर की फसल हरियाणा प्रदेश में ज्यादातर अक्तूबर-नवम्बर महीने में लगाई जाती है। इस फसल में भी गर्मी, सर्दी व पतझड़ व बहार ऋतु वाले खरपतवार पाये जाते है। ज्यादातर टमाटर की काष्त करनाल, कुरूक्षेत्र व मेवात के इलाकों में की जाती है। मेवात व दादरी (भिवानी) इलाकों में एक नया परजीवी खरपतवार (मरगोजा) जिसे

गुल्ला, मरगोजी आदि नाम से जाना जाता है वह इस फसल में काफी नुकसान करता है। टमाटर में साधारणतया दो निराई गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली पौध रोपण के लगभग 20-25 दिन बाद व दूसरी पौध रोपण के 40-45 दिन बाद। इसी समय मिट्टी चढ़ाने का भी काम करना चाहिए। टमाटर की फसल में रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण भी सम्भव है। इस के लिए स्टाम्प 30 ई.सी. (पैडीमिथीलीन) नामक दवाई की 1.3 लीटर मात्रा 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ के हिसाब से पौध रोपण के लगभग 4-5 दिन बाद छिड़के। स्टोम्प या 300 ग्राम सैकोंर/एकड़ को 200 लीटर पानी में घोल कर, खेत तैयार करने के बाद टमाटर की पनीरी लगाने से 3-4 दिन पहले छिड़काव कर सकते हैं। इसके खेत को तैयार करके पनीरी लगानी चाहिए। अगर टमाटर में मरगोजा का प्रकोप हो तो रोपाई के 45 व 90 दिन बाद लीडर (सल्फोसल्फयूरान) की 66 ग्राम मात्रा/एकड़ या सनराईस 100 ग्राम मात्रा/एकड़ 150 लीटर पानी में मिलाकर दो बार छिड़काव करें।

फूलगोभी व पत्ता गोभीः ये फसलें हरियाणा प्रान्त में जून से अप्रैल तक उगाई जाती हैं। अगेती फसल में सांठी (ईटसिट), मकड़ा, मधाना, कोंधरा, चौलाई व मोथा आदि ज्यादा उगते हैं जबकि सर्दी ऋतु की जो मुख्य फसल है में मेथा, बायु, घुई, खड़बायु, मैणा, जंगली पालक व कई बार कनकी (गुल्लीडण्डा) भी उग जाता है। इस फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु स्टोम्प 30 ई.सी. 1.3 लीटर या बासालिन 45

प्रतिशत 1.0-1.3 लीटर या लासो 50 प्रतिशत 2.5 लीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें। बासालिन का छिड़काव गोभी लगाने से पहले करना चाहिए। अगर खरपतवारनाशी का छिड़काव करने के 7-8 सप्ताह बाद खरपतवार उग जायें तो एक गुड़ाई करना बहुत जरूरी है। इन दवाईयों का गोभी की उगी हुई पनीरी पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। अगर बाद में गुल्लीडण्डा या जंगली जई का जमाव हो जाये तो क्लोडीनाफोफ नामक रसायन का 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

गाजर: हरियाणा प्रान्त में गाजर की काश्त सितम्बर से नवम्बर माह तक प्रदेश के सभी इलाकों में की जाती है। सितम्बर में बोई गई फसल में गर्मी वाले खरपतवार साठी, मकड़ा, कोंधरा, चौलाई व मोथा ज्यादा उगते है। अक्तूबर-नवम्बर में बीजी गई फसल में बायु, खडबायु मैथा, मैणा, कृष्णनील, जंगलीपालक व कनकी खरपतवार ज्यादा पाये जाते है। गाजर की फसल थोड़ा धीरे बढ़ने की वजह से भी खास कर सांठी जैसे खरपतवार इसे शुरू में ही ढ़क लेते है। इसलिए बिजाई से पहले या तुरन्त बाद में खरपतवारनाशी का छिड़काव करने से काफी फायदा होता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि बिजाई करने के बाद हल्का पानी लगा दें व जब खेत बत्तर आ जाये तो गीले बत्तर में स्टाम्प 30 ई.सी. की 1.3 लीटर मात्रा या गोल 23.5 ई.सी. की 150-200 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ का छिड़काव करने से बिजाई के 50 दिन तक 80 प्रतिशत खरपतवारों का नियंत्रण मिलता है। अगर उक्त खरपतवारनाशी का प्रयोग न करे तो ट्रैफलान 48 ई.सी. की 800-1000 मि.ली. मात्रा/एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई से पहले छिड़काव करें और अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें।

मूली शलगम में भी उपरोक्त तरीके से ही छिड़काव करे। तर्जुबो द्वारा सिद्ध हुआ कि खरपतवार नियंत्रण हेतु गोल, स्टाम्प व ट्रैफलान दवाईयां जब गाजर कट जाती है तो उसमें इनके अंश नहीं पाये जाते।

मटर: इस फसल में सर्दी वाले खरपतवार जैसे कि बायु, खड़बायु, मैणा, मैणी, कृष्णनील, जंगली पालक, लोम्बड़घास, पोआ, जंगली जई व गुल्लीडण्डा इत्यादि पाये जाते है। अगर मटर की फसल धान के बाद उगाई जाती है तो फसल में गुल्ली डण्डे का प्रकोप ज्यादा होता है। मटर की फसल में बिजाई के बाद (2-3 दिन के अन्दर-2) तर बतर जमीन पर 1.3-1.7 लीटर स्टाम्प 30 ई.सी. प्रति एकड़ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें। प्रयोगों से पाया गया है कि इमे-जेथापायर 10 ई.सी. की 250 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के 45-50 दिन बाद प्रयोग उगे हुए खरपतवारों पर काफी प्रभावी है। अगर फसल कमजोर है तो 6-7 सप्ताह पर एक गुड़ाई जरूर कर दें। अगर मटर में गुल्लीडण्डा, जंगली जई व लोम्बड़ घास उग जाये तो एक्सियल 5 ई.सी. नामक खरपतवारनाशी की 400 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ का पहले पानी के बाद उगे हुए खरपतवारों पर छिड़काव करना चाहिए। मटर की काश्त ज्यादातर देसी खाद डाल कर की जाती है इस लिए इस फसल में मालवा (चौड़ी पत्ती वाला खरपतवार) की समस्या भी देखने को मिलती है। इस हालात में मटर की निराई गुडाई ही करें।

हल्दी: हल्दी हरियाणा प्रदेश में अम्बाला, यमुनानगर, पंचकुला, करनाल व कुरूक्षेत्र इलाकों की मुख्य फसल है। हल्दी की फसल में गर्म ऋतु वाले सारे खरपतवार जैसे कि सांठी, सांवक, डीला, मकड़ा, पैराघास, चौलाई, कोंधरा इत्यादि बहुतायत में पाये जाते है क्योंकि इसको लगाने के बाद जमाव से पहले भी 2-3 पानी लगाने पड़ते हैं। हल्दी में खरपतवार नियन्त्रण के लिए स्टाम्प 30 ई.सी. 1.3 लीटर या एट्राजीन 600 ग्राम या संकोर 500-600 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से हल्दी लगाने के बाद तर बतर में छिड़काव करे व 4 टन धान की पराली से ढ़क दे। इसके बावजूद भी 66-90 दिन अगर कुछ खरपतवार बाहर निकल आये तो हाथ से निराई करें। जिन खेतों में बिजाई के बाद खरपतवारनाशी का प्रयोग नहीं कर सके तो सांवक, लैपटोक्लोआ व मकड़ा के नियंत्रण के लिए राईस स्टार व ई.सी. की 400 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करे।

भिण्डी: प्रदेश में भिण्डी की बिजाई मार्च से जुलाई तक की जाती है व भिण्डी की फसल में गर्मी ऋतु वाले सभी खरपतवार सांवक, सांठी, मकडा, डीला, तादला आदि बहुतायत में पाये जाते है। बसन्त ऋतु में उगाई गई भिण्डी में सांठी व चिड़ियों का दाना खरपतवार कम ही उगते हैं।

इस फसल में भी खरपतवारों की रोकथाम हेतु स्टोम्प 30 ई.सी. की 1.3-1.7 लीटर मात्रा या 900 मि.ली. वासालिन प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। बिजाई के बाद 2-3 दिन तक लासो 2.0 प्रति एकड़ का प्रयोग करने से भी खरपतवारों का सफाया हो जाता है।

अपने दोष हम देखना नहीं चाहते, दूसरों के दुख देखने में हमें मजा आता है। बहुत सारे दुख तो इसी आदत से पैदा होते हैं। - महात्मा गांधी

हिन्दी दिवस एवं चेतना पखवाड़ा

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के लुधियाना में स्थित भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान में 14-28 सितम्बर 2018 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। पखवाड़े का शुभारम्भ 14 सितम्बर को हिंदी दिवस मना कर किया गया। पखवाड़े के दौरान कुल छ प्रतियोगिताए जैसे निबंध लेखन, भाषा प्रवीणता, हिंदी भाषा में सर्वाधिक कार्य करना, शब्द ज्ञान, आशु-भाषण और सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्री को शामिल किया गया। संस्थान के सभी कर्मचारियों ने इन प्रतियोगिताओ में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। पखवाड़े के प्रथम दिन हिंदी दिवस मनाया गया। इस दिन निदेशक महोदय ने प्रशासनिक वर्ग के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से अपील की कि वें राजभाषा की धारा 3(3) का अनिवार्य रूप से पालन करें। निदेशक ने यह भी कहा की चूँकि हमारा संस्थान राजभाषा नियम 10 (4) के अधीन अधिसूचित है इसलिए संस्थान के सभी कर्मचारी और अधिकारीगण अपना सर्वाधिक कार्य हिंदी में ही करे। निदेशक महोदय ने कार्यालय में हिंदी में प्राप्त होने पत्रों का उत्तर अनिवार्य रूप से हिंदी में ही देने का आदेश दिया। संस्थान के "ख" क्षेत्र में होने के कारण यहाँ हिंदी का चलन स्थानीय भाषा से कम है। इसको ध्यान में रखते हुए निदेशक महोदय ने पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के विद्यार्थियों को भी पखवाड़े में भाग लेने के लिए आमंत्रण पत्र भिजवाये गये थे।

14 सितम्बर को हिंदी दिवस का आयोजन

हिंदी पखवाड़े के दौरान परीक्षा कक्ष में प्रतिभागी

28 सितम्बर 2018 को राजभाषा पखवाड़ा समापन समारोह का आयोजन

इस पखवाड़े का समापन समारोह 28 सितम्बर को पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के समिति कक्ष में मनाया गया जिसमें मुख्य अतिथि डॉ सौरभ कुमार (प्रोफेसर, हिंदी विषय) और संस्थान राजभाषा कार्यन्वन समिति के अध्यक्ष डॉ सुजय रक्षित (निदेशक, भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान) ने शिरकत की। प्रतियोगिताओ में निर्णायक मंडल द्वारा चुने गये विजेताओ को निदेशक महोदय और मुख्य अतिथि कर कमलों से प्रमाण-पत्र प्रदान किये गए। मुख्य अतिथि ने उपस्थित संस्थान के अधिकारियों से अपील की वो हिंदी भाषा को केवल संपर्क भाषा ही न समझें अपितु राजभाषा को अपनी जीवन शैली में ढाल ले। निदेशक महोदय ने कहा कि 'ख' और 'ग' क्षेत्र से संबंध होने के बावजूद संस्थान के अधिकारी और कर्मचारी हिंदी भाषा का प्रयोग करने की कोशिश करते है। यह अत्यंत ही प्रशंशनीय है।

हिंदी कार्यशाला

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के लुधियाना में स्थित भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान में 21 दिसम्बर 2018 को राजभाषा के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए हिंदी कार्यशाला का आयोजन पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के समिति कक्ष में किया गया। कार्यशाला में सभी वैज्ञानिकों, प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। इस कार्यशाला में प्रशिक्षण देने हेतु नराकास, लुधियाना की सदस्य सचिव एवं सहायक निदेशक (राजभाषा) श्रीमती किरण साहनी जी को आमंत्रित किया गया। इस अवसर पर अतिथि सह-निदेशक (राजभाषा, आयकर विभाग) एवं निदेशक (भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान) की गरिमामयी मौजूदगी प्रेरणादायी रही। सदस्य सचिव (राजभाषा, भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान) ने वक्ता एवं प्रतिभागियों का हार्दिक अभिनन्दन एवं स्वागत करते हुए कार्यशाला का शुभारम्भ किया। इस कार्यशाला में वक्ता ने पारिभाषिक शब्दावली पर उन्होंने दो व्यक्तव्य दिए और उसके तुरंत बाद उनका अभ्यास करवाया। इस प्रशिक्षण में कुल 08 वैज्ञानिकों और 03 प्रशासनिक और कर्मचारियों ने भाग लिया। सभी प्रशिक्षनार्थियो ने बड़ी सरलता से पारिभाषिक शब्दावली से जुड़े सभी वाक्यों को ठीक किया और सही उत्तर भी दिया। निदेशक (राजभाषा) इस पर सभी की बहुत प्रशंसा की। निदेशक (भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान) ने भी सहायक निदेशक (राजभाषा) श्रीमती किरण साहनी जी का धन्यवाद किया।

चित्रः हिंदी कार्यशाला का आयोजन

चित्रः कार्यशाला में अभ्यास करते हुए संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी

वर्ष 2018 के दौरान संस्थान की प्रमुख उपलब्धियां

हिंदी पत्रिका प्रकाशित करने पर नराकास द्वारा सम्मानित

''छोटे कार्यालय'' की श्रेणी में सर्वाधिक कार्य का निष्पादन हिंदी में करने पर नराकास द्वारा तीसरा स्थान पुरस्कार

झलकियाँ 2018

अनुसन्धान सलाहकार समिति की बैठक में परियोजनाओ पर विचार-विमर्श करते हुए अध्यक्ष महोदय

संस्थान में आई.एस.ओ. प्रमाणपत्र का नवीनीकरण हेतु जांच टीम से चर्चा करते हुए संस्थान के अधिकारी-गण

संस्थान शोध परिषद् की बैठक में परियोजनाओ का मूल्यांकन करते हुए अध्यक्ष महोदय

61वी वार्षिक मक्का कार्यशाला कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) में आयोजित की गयी

स्वच्छता अभियान हेतु बैठक

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस पर योग करते हुए संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी

13वीं एशियाई मक्का सम्मेलन की झलकियाँ

सतर्कता जागरूकता की शपथ लेते हुए संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी

सतर्कता जागरूकता के दौरान आयोजित प्रतियोगिता के विजेताओं को सम्मानित किया गया

दिंसबर 2018 में स्वच्छ भारत अभियान के तहत सफाई अभियान दिल्ली में चलाया गया

दिंसबर 2018 में स्वच्छ भारत अभियान के तहत सफाई अभियान बिहार में चलाया गया

बाँसवाड़ा कृषि अनुसंधान केन्द्र में वैज्ञानिकों को संबोधित करते हुए डॉ सुजय रक्षित

13वीं एशियाई मक्का सम्मेलन लुधियाना (भारत) में संस्थान के वैज्ञानिकों ने भाग लिया

''पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेखकों के लिए दिशा-निर्देश''

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) द्वारा हिंदी भाषा में वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है जिसमें सभी रचनाएँ जैसे आलेख, कहानियां, कवितायेँ इत्यादि प्रकाशित की जाती है।

1. पत्रिका में प्रकाशन के लिये लेखकगण कृषि एवं कृषि सम्बंधित -आर्थिक, -सामाजिक, विषयों पर आलेख भेज सकते है।
2. आलेख के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देश हैः

क. आलेख में सामग्री को इस क्रम में व्यस्थित करेंः शीर्षक, लेखकों के नाम व पते, संवादी लेखक का ई-मेल, परिचय, परिचर्चा, निष्कर्ष/सारांश, आभार (यदि आवश्यक हो तो), एवं सन्दर्भ।

ख. परिचयः परिचय में लगभग 250-300 शब्द होने चाहिये तथा इसमें विषय की सामान्य जानकारी के साथ इसके महत्त्व तथा उपयोग के बारे में लिखें।

ग. परिचर्चाः इस भाग में लगभग 1500-2000 शब्द होने चाहिये, जिसमें सारणी, ग्राफ इत्यादि सम्मिलित है।

घ. निष्कर्षः इस भाग में लगभग 100-150 शब्द होने चाहिए, तथा साथ ही विषय-वस्तु का भावी परिपेक्ष भी सम्मिलित हो।

ङ. सन्दर्भः इस सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके ना लिखें, अर्थात संदर्भो को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओँ के हो तो पहले हिंदी वाले सन्दर्भ लिखें तथा इन्हें हिंदी वर्णमाला के अनुसार, तथा बाद में अंग्रेजी वाले सन्दर्भ अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सूचीबद्ध करें।

च. सारणी तथा चित्रः सारणियों तथा चित्रों को उनके शीर्षक के साथ आलेख में क्रमांकित करके यथास्थान पर सम्मिलित करें तथा पाठय में उल्लिखित करें।

3. आलेख किसी अन्य स्रोत द्वारा पहले प्रकाशित नहीं होना चाहिए तथा ना ही अन्य भाषा में प्रकाशित आलेख का अनुवाद होना चाहिये।
4. इस पत्रिका में प्रकाशन के लिए लघु नोट, कवितायेँ तथा कहानियां भी भेज सकते है, बशर्ते ये रचनायें स्वयं द्वारा रचित होनी चाहिये।
5. आपकी रचनायें यूनिकोड फान्ट या कुण्डली फान्ट में टाइप करके भेजें, ताकि वो आसानी से किसी भी कंप्यूटर में पढी जा सके व सम्पादित की जा सके।
6. संपादन व सुधार का अंतिम अधिकार संपादकगण के पास सुरक्षित है।
7. प्रकाशन के लिए भेजी गयी रचनाओं पर अंतिम निर्णय प्रकाशक यानी निदेशक, भाकृअनुप- भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) का रहेगा।
8. आलेखों में चित्र, ग्राफ, तथ्यों की सत्यता या नकल/असल, एवं कहानियों व कविताओं इत्यादि रचनाओं के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे।
9. लेखकगण अपनी रचनाएँ, krishichetna.iimr@gmail.com पर ईमेल द्वारा भेज सकते है।
10. पत्र व्यवहार के लिए पता।

निदेशक

भाकृनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय परिसर

लुधियाना- 141004 (पंजाब)

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch